वाल्मीकि के ऐतिहासिक राम

विश्वनाथ लिमये

सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

संस्करण १९८७

प्रकाशक सत्साहित्य प्रकाशन
२०५-बी चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

मुद्रक संजय प्रिंटर्स, मानसरोवर पार्क,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

पुनर्मुद्रण ग्राफिक वर्ल्ड आफसैट प्रैस
/९८६ कूचा दखिनीराय, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२

मूल्य पुस्तकालय संस्करण रु० ३५.००
पेपरबैक ~~रु० २५.००~~

VALMIKI KE AITIHASIK RAM SATYAGRAHI RAM

by Vishwanath Limaye

Price Library edition Rs. 35.00
Paper-back edition ~~Rs. 25.00~~

ॐ

श्री रामाय तस्मै नमः

इक्ष्वाकु वंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुत ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान धृतिमान वशी ॥१।१।६
धर्मज्ञ सत्यसंधश्च प्रजानाच हितेरत ।
यशस्वी ज्ञानसपन्न शुचिर्वश्य समाधिमान् ॥१।१।१३
रक्षिता स्वस्यधर्मस्य स्वजनस्यच रक्षिता ।
वेदवेदाग तत्वज्ञो धनुर्वेदश्च निष्ठित ॥१।१।१४

इक्ष्वाकु वश मे उत्पन्न एक ऐसे पुरुष हैं जो लोगो मे राम के नाम से विख्यात हैं। वे मन को वश मे रखनेवाले, महाबलवान, कातिमान, धैर्यवान और जितेंद्रिय हैं वे धर्म के ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजा के हित साधन मे रत, यशस्वी, पवित्र, ज्ञानी और मन को एकाग्र रखनेवाले हैं। वे वेदवेदाग तथा तत्व के जानकार तथा धनुर्वेद मे निपुण हैं। वे स्वय के धर्म की रक्षा करते हैं और स्वजनो के धर्म की भी रक्षा करने वाले हैं।

अनेन कर्मण, भगवान परमेश्वरः प्रीयताम न मम
पुस्तक रूपी यह कर्म एवं प्रेरणा परमेश्वर की है।
मेरा कुछ नहीं।

जिनकी अखण्ड-कृपा तथा अनवरत स्नेह के कारण
मेरा जीवन सार्थक होने की संभावना बनी है
उन
स्व० पूज्यश्री डॉ० हेडगेवार
एवम्
स्व० पूज्यश्री गुरुजी
के पावन चरणों में
यह
पुष्पांजलि

॥ श्री ॥

(अर्पण, रामार्पणमस्तु, अनुक्रमणिका)

स्वगत

फोडिले भाडार। धन्या चा हा माल। मी तो केवल हमाल। भारवाही

अखण्ड लीलामय परमात्मस्वरूप दशरथनन्दन श्रीराम की जीवन गाथा का जो रसपूर्ण अद्भुत, अद्वितीय, अत्युत्तम अमर, अथाह रत्न भण्डार महर्षि वाल्मीकि ने अपनी दिव्य वाणी मे लुटाया है, उसे अपनी अत्यन्त अल्प ग्रहण-शक्ति के अनुसार मैंने भारवाही कुली के रूप मे जन साधारण तक पहुचाने के प्रयत्न मे स्वय को केवल अधिक पवित्र करने का ही प्रयास किया है। इसी प्रयास के अग के नाते सन् ७४-७५ मे ज्येष्ठो की कृपा से मुझे प्रत्यक्ष विवेकानन्द शिला पर ही डेढ-दो वर्ष निवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन दिनो परम वन्दनीया मौसी (स्व० लक्ष्मीबाई केलकर, सस्थापक-सचालिका, राष्ट्रसेविका समिति) द्वारा दिये गये 'रामायण प्रवचन' को पढने का सौभाग्य मिला। उस अध्ययन रूपी बीज का ही यह नवीन वृक्ष पाठको के सामने उभर कर आया है।

स्व० मौसी जी का आग्रह था कि जिन्हे राम को जानना हो वे वाल्मीकिकृत रामायण अवश्य पढें। उनके अनुसार मूल रामायण केवल एक बार पढने से ही उनकी बात पूर्णतया सही प्रतीत हुई। काची कामकोटि शकराचार्य पूज्यपाद जयेन्द्र सरस्वती के साथ तमिलनाडु की पदयात्रा करते-करते रामायण के अधिक अध्ययन का विचार दृढ होता गया। यात्रा से लौटने पर पू० पिताजी की अस्वस्थता मे उनकी सेवा करते-करते रामायण का २-३ बार अध्ययन सभव हो सका। उन दिनो कुछ उद्धरण भी लिख पाया था। बाद मे वनवासी बन्धुओं मे काम करते-करते रामायण कालीन कुछ सूत्रो का पता चलता गया। राची के 'सस्कृति विहार' के सस्थापक-सचालक श्री ओबेराय की कृपा से डा० बुल्के, पूज्य करपात्री जी, गुरु गोविन्दसिंह, नानाभाई भट्ट आदि के अनेक प्रसिद्ध तथा विस्तृत ग्रन्थ भी अध्ययन के लिए उपलब्ध हो सके। श्री राजगोपालाचार्य, वी० वी० एस० अय्यर की कब रामायण तथा श्री निवास शास्त्री आदि के ग्रन्थ पहले ही पढ चुका था, अत ऋषिकेश मे शिवानन्द आश्रम मे गायत्री पुरश्चरण के साथ पतितपावनी गगा के तट पर यह पवित्रतम मर्यादा पुरुषोत्तम-रामस्मरण तैयार होता गया।

राम नाम की प्रभावकारी शक्ति के बारे में कई कथाए प्रचलित हैं। यहा तक कहा जाता है कि केवल एक बार राम नाम लेने से कोटि जन्म के पाप नष्ट हो जाते

हैं। दूसरी ओर स्वयं वाल्मीकिजी को या देवी अहिल्या को कितना भीषण तप करना पड़ा है। उस स्थिति से मुझ जैसा अल्पज्ञ यदि इतने प्रयास के बाद भी आवश्यक मात्रा में पावित्र्य का अर्जन न कर सका हो तो केवल तप करना और शेष है, इतना ही मैंने अर्थ निकाला है। जहा तक जप का सम्बन्ध है, 'राम' शब्द, ॐ का प्रतिरूप माना जाता है। ॐ के उच्चारण के लिए विशेष वैज्ञानिक विधि की आवश्यकता होती है। राम शब्द का अपढ़ से अपढ़ व्यक्ति भी सरलता से उच्चारण कर सकता है, इसीलिये राम नाम जप सर्वाधिक लोकप्रिय तथा प्रभावी बनता गया है।

इस ग्रन्थ-लेखन के समय पर अन्य विचार भी बल पकड़ता गया। ऋषि वाल्मीकि ने जिस मर्यादा पुरुषोत्तम मानव राम का सर्वसाधारण के आचरण के लिये मार्गदर्शक चरित्र गाया है, वही आज रामभक्तों के लिये पुन आवश्यक प्रतीत होता है। अन्य रामायणो के भक्तिपरक वर्णनों के कारण वाल्मीकि के राम ढक से गये है, इसलिए उनका अप्रतिम मानवी चरित्र यथासम्भव सक्षेप में सामने लाने का यह प्रयास है। जैसा कि वाल्मीकिजी ने नारद से स्वयं पूछा था और नारदजी ने उन्हें उत्तर दिया था, वैसा ही लोक-शिक्षण के लिये केवल वाल्मीकिजी को ही आधार बनाकर मुख्यत राम और सीता का चरित्र पुनर्लिखित करने का प्रयत्न किया है। अन्य ग्रन्थों का उल्लेख केवल वाल्मीकिजी के निष्कर्षों को पुष्ट करने मात्र के लिये किया है। वैसे भ्रम कैसे उत्पन्न होते है, यह दिखाने के लिये भी कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थो की सामग्री का भी उल्लेख किया गया है।

रामायण में कौन सा भाग प्रक्षिप्त है तथा कौन सा मूल वाल्मीकि का है, यह निर्णय करने का अधिकार विद्वानों को ही हो सकता है, मैं इसका अधिकारी नहीं। परन्तु पूज्य करपात्रीजी की रामायण-मीमांसा का तर्क पर्याप्त महत्वपूर्ण है जिसे सरलता से काटा नहीं जा सकता। अयोध्याकाण्ड का प्रारम्भ निम्नलिखित श्लोक से होता है—

गच्छता मातुल कुल भरतेन तदानघ (२।१।१)

इस प्रकार के श्लोक या घटना से किसी भी महानतम ग्रन्थ का प्रारम्भ नहीं हो सकता। न केवल वह पूर्णत सदसंदिग्ध हो जावेगा, अपितु वह वाल्मीकिजी की प्रतिभा का अपमान करना होगा। वैसे ही उत्तरकाण्ड की अधिकांश जानकारी के बिना रामजीवन का महत्त्व एव उनका त्याग-कठोर, आत्मक्लेशकारी परन्तु जन-रंजक चरित्र अधूरा रह जावेगा। यह सभव है कि राम को अवतार न मानने वाले इन दो काण्डो को केवल इसलिये प्रक्षिप्त कहे, परन्तु इन काण्डो का अवतार-समर्थक भाग छोडकर भी शेष भाग रामकथा की पूर्ण जानकारी के लिये तथा काव्य की पूर्णता के लिये आवश्यक ही है।

वाल्मीकिजी के ग्रन्थ का बारीकी से अध्ययन करने से अनुभव होगा कि

त्रिविष्टप-वासी देवलोक भी विशिष्ट स्तरीय जीवन बिताने वाले मानवों का लोक होगा, जिनके मुखिया 'इन्द्र' कहलाते थे तथा कुबेर आदि सामंत एवं ब्रह्मा आदि इनके मार्गदर्शक कहलाते थे। अलौकिकता न माननी हो तो ये सभी नरलोक के राजा दशरथ के अश्वमेध में उपस्थित हुए, जहां रामजन्म के लिये एक सामूहिक चाह उत्पन्न की गयी। दक्षिणापथ 'वानरलोक' तथा मुख्यतया लंका 'राक्षसलोक' था। उत्तरी भारत सत्व-प्रधान, दक्षिण भारत रजस्-प्रधान तथा राक्षस लोक तमस्-प्रधान लगते हैं। इसी आधार पर लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि राम-रावण-संघर्ष दो राज्यों, दो देशों, दो दिशाओं, दो जातियों, दो संस्कृतियों, दो पंथों अथवा दो व्यक्तियों के बीच का युद्ध न होकर दो प्रकृतियों, दो जीवन-मूल्यों के बीच का युद्ध था। इसे धर्म का अधर्म से, सत्य का असत्य से, न्याय का अन्याय से, सदाचार का कदाचार (दुराचारी) से युद्ध कहा गया है।

रामायण में राम दो रूपों में दिखाई देते हैं। एक सत्याग्रही राम, दूसरे शस्त्राग्रही राम। स्वयं कष्ट उठाकर मूलतः सात्विक प्रकृति के लोगों के हृदय जीतनेवाले सत्याग्रही राम बहुत सम्भव है पूज्य गांधीजी के आदर्श रहे हों। पर मूलतः दुष्ट प्रवृत्ति वालों को जड़ से नष्ट करने वाले राम की भारत के साधु-क्षेत्र में अवहेलना होती है। वर्तमान भारत के एक अत्यन्त ज्येष्ठ सन्त ने सुन्दरकाण्ड में हनुमान द्वारा किया पराक्रम भी प्रक्षिप्त मानकर प्रवचन में उसका वर्णन करना टाल दिया। इतना ही नहीं, पूरा युद्धकाण्ड भी टाल दिया और उसमें रामायण को सुखान्त बनाने का बहाना बनाकर रामराज्याभिषेक पर रामायण-प्रवचन समाप्त किये।

भारतीय जनता की भ्रांति का लाभ उठाकर ये आधुनिक सन्त चाहे जितना राम, कृष्ण आदि को अहिंसक बनाने का प्रयत्न करें, पर उनके दुर्भाग्य से भारत के अधिकांश देवता शस्त्रधारी हैं। केवल एक शस्त्र में सन्तोष न होने से चतुर्भुज, अष्टभुज बनाकर उन्हें शस्त्रों से लाद दिया गया है। भारतीय मान्यता में सृष्टि, स्थिति और लय तीनों का सन्तुलन है। संहार-शक्ति का नाम ही शिव (कल्याणकारी) है। जीवन की इस वास्तविकता को भारत के धार्मिक क्षेत्र के लोग जब तक टालते रहेंगे, तब तक राम-द्रोहियों की संख्या में, बल में, प्रभाव में वृद्धि कभी भी रोकी नहीं जा सकती। आज केवल आधे से अधिक का भारत रामद्रोही बना है। राम भक्ति का यही स्वरूप बना रहा तो आगामी १-२ शताब्दी में रामायण ग्रन्थ, संग्रहालयों की मात्र शोभा बढ़ाने वाले रह जायेंगे। इस पृष्ठभूमि में मानवों के लिये सर्वांगत अनुकरणीय मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की गाथा पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

द्वितीय व तृतीय आलोक में दोनों परम्पराओं का संक्षेप में राम की ऐतिहासिकता स्पष्ट हो, इसी दृष्टि से संक्षेप में वर्णन किया गया है। वामन के पूर्व अवतारों की अलौकिकता में भी ऐतिहासिकता हो सकती है, यह संकेत भी पाठकों को

महज ही समझ मे आ सकेगा। स्थानाभाव के कारण लौकिक परम्परा का भी बहुत ही संक्षिप्त वर्णन करना पड़ा है, जिसका उद्देश्य यही है कि राम का अनेकांगी चरित्र उभर कर सामने आए। जैसे भागवत, वायुपुराण आदि मे भी जो वंशावलिया दी है वे भी उन्होंने संक्षिप्त ही दी है। वंशे प्राधाना एतस्मिन् प्राधान्ये प्रकीर्तित। (३।२६।२१२ वायुपुराण)। भागवत में कहा है 'श्रूयता मानवो वंश प्राचुर्येण परतप'। इस सन्दर्भ मे मेरी धृष्टता क्षम्य मानी जावेगी, यह विश्वास है।

शेष आलोको के अन्त मे, उपसहारो मे लेखक दृष्टि से उन आलोको की विशेषताओ का विश्लेषण किया गया है, जिनमे वानर आदि की उत्पत्ति, अयोध्याकाण्ड मे ही राम-राज्याभिषेक, देवलोक व नरलोक की रावण-वध-सम्बन्धी मिली-जुली योजना तथा उसका क्रमबद्ध क्रियान्वयन, वालीवध का विशेष महत्व, हनुमान की अद्वितीयता, विभीषण का सत्याग्रह, युद्ध का उद्देश्य, सीता का पुनर्त्याग, शम्बूक-वध, राम का आत्मोत्सर्ग आदि विवादास्पद अंग बनाये गये विषयो पर प्रकाश डाला गया है, जो आज के सन्दर्भ मे बुद्धिग्राह्य माना जावेगा। परिशिष्ट मे भारतीय मान्यताओ सम्बन्धी विविध जानकारी दी गयी है जो भारतीय मनीषियो की तत्कालीन चिन्तनशक्ति तथा ज्ञान का द्योतक है। साथ ही सम्पूर्ण रामायण मे घटित प्रमुख घटनाओ की तिथियो की उपलब्धि 'रामजीवन' ऐतिहासिक होने की पुष्टि करती है। मानव काल-गणना के एक विद्वान 'देवकीनन्दन खेडवाल' द्वारा किया गया अनुसन्धान भी विचार-प्रवर्तक है। इन्हीं दिनों पूना के डा० वर्तक ने वाल्मीकि को आधार बनाकर ज्योतिष शास्त्र के गणित के अनुसार अग्रेजी तिथिया भी देने का प्रयास किया है। जिज्ञासु पाठक उसे पढ सकते है।

ससार के लिये शाश्वत काल तक मार्गदर्शक करने वाला अध्यात्म-प्रधान लोकोत्तर रामजीवन श्रुत सहरति पापानि के नाम पर केवल उपयोग का साधन न बनकर लौकिक जीवन का शुद्धिकरण करने वाला अमोघ शस्त्र बन सके, यही लेखक की आकाक्षा रही है। लेखक के अनुसार वाल्मीकि ने भगवान राम का नही अपितु नर से नारायण बनने वाले राम का चरित्र-चित्रण किया है। इस स्थिति मे हिमालय से भी उच्च राम-जीवन को लेखक जैसे तिनके द्वारा नापने का अथवा आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के रसयुक्त समुद्र को सीप द्वारा उलीचने का यह दु साहसपूर्ण प्रयास हास्यास्पद ही माना जा सकता है। पर भगवान के दरबार मे हम जैसे सभी बालको को स्वच्छन्दता से उछलकूद की जो स्वतन्त्रता होती है उसका लाभ उठाया गया है। सेतुबन्ध मे राम कार्य मानकर यदि गिलहरी योगदान करती हुई सुनी गयी है तो सब दृष्टि से दीन, हीन, अज्ञ, कुशील कुबुद्धि मुझ जैसा व्यक्ति राम-कथा का लेखन कर स्वय को पवित्र बनाने का प्रयास करे तो किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इस पृष्ठभूमि मे ही मालिक का लुटाया जा रहा माल केवल कुली मात्र बनकर जनसाधारण तक पहुचाने का प्रयास पाठको द्वारा क्षम्य

होगा, यह विश्वास है।

इस अज्ञ प्रयास के सम्बन्ध मे आधुनिक व्यास, झूसी के सन्त परम श्रद्धेय ब्रह्मचारीजी ने आशीर्वाद स्वरूप जो शब्द लिखे हैं उससे यह आलेख पढने योग्य बन गया है। उनका अत्यन्त अल्प-सा आशीर्वाद पढकर भी लेखक का रामायण अध्ययन विषयक अहकार जाता रहा। फिर इस शताब्दी के मौलिक विचारक श्रद्धेय ठेंगडी जी द्वारा लिखित प्रस्तावना के कारण पुस्तक वस्तुमूल्य निश्चित ही बढ गया है। इन दोनो का सदैव ऋणी रहने मे ही मेरे जन्मजन्मान्तर के कलुष कम होने की सम्भावना है, अत. आभार मानने का दुस्साहस कर मैं स्वय की पाप-निवृत्ति मे बाधा नही बनना चाहता। पुस्तक के लिये ली गयी विविध ग्रन्थो की सहायता यह उनके नये-पुराने श्रेष्ठ लेखको के प्रति मुझे ऋणी बनाती ही है। उनके उपकार का बदला चुकाने का सामर्थ्य मुझमे नही है।

गोदिया के स्व० प० सत्यनारायणजी के पुत्र श्री मुरलीधरजी, नागपुर के अवकाश-प्राप्त टिकट-निरीक्षक श्री रा० रा० सोहनीजी, सस्कृति विहार, राची के श्री ओबेरायजी आदि का मैं नि सकोच ग्रन्थ उपलब्धि करने के लिये अत्यन्त आभारी हू। पुस्तक की मूल अवाच्य हस्तलिखित प्रति का सशोधन एवं टंकण करने मे सहायक श्री मनौडी जी एव रामपुर के श्री भगवतीजी का स्मरण सदा ही बना रहेगा। शिवानन्द आश्रम के अधिष्ठाता पूज्य श्री चिदानन्दजी जिनकी प्रेरणा एव हृदयस्पर्शी वाणी से मन के कलुष धुलते रहे हैं, का स्नेहपूर्ण सान्निध्य इस ग्रन्थ-लेखन का आलम्ब बना है। साथ ही सशोधित मुद्रण-प्रति तैयार करने मे सुरुचि प्रकाशन वालो का सहयोग भी उल्लेखनीय है। विशेषकर टकित पाण्डुलिपि का सशोधन चि० कु० मधु वर्मा ने किया है तथा उनका निर्देशन डा० श्याम बहादुर जी ने किया है। शायद उनके संशोधन से जहा मैंने भाषा कैसी लिखी जाये यह सीखा वहा भाषा मे जो कुछ भी सफाई आयी है वह अभिन्न मित्र श्री श्यामजी की ही देन है, अत इन सभी का मैं हृदय से आभारी हू।

अत मे लगभग ५०० पृष्ठ, १० मानचित्र तथा १५-२० विशेष प्रकार के छायाचित्रो के साथ इस बृहद् ग्रंथ को कौन छापे यह समस्या पिछले डेढ-दो वर्ष से सुलझ नही पा रही थी। श्रद्धेय लाला हसराज जी ने सदा की भांति अति उदार हृदय से १००००)रु० अग्रिम देकर जहा प्रकाशको का उत्साह बढाया वहा खरीदार को भी पुस्तक अल्पमूल्य मे मिले यह इच्छा प्रकट की। दूसरी ओर डा० कर्णसिह जी ने अपने ट्रस्ट द्वारा १०० पुस्तको की अग्रिम कीमत देकर भी पुस्तक प्रकाशन मे सहयोग दिया। स्वाभाविक ही प्रगतिशील विचारो के होने के बाद भी अति श्रद्धालु श्री दीनानाथजी ने प्रकाशन की सपूर्ण व्यवस्था बिना झिझक के स्वीकार की। इन तीनो का मैं किन शब्दों मे आभार व्यक्त करू, यह मेरे लिये अनाकलनीय विषय है।

इन शब्दों के साथ धर्मज्ञ, सत्यवान, दृढ़व्रती राम के चरणों में यह रचना-पुष्प अर्पित कर अपनी बात समाप्त करता हूं। पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि मेरे दोष छोड़कर केवल ग्रहण-योग्य भगवान राम के गुणों की ओर ध्यान दें।

दृष्टं किमपि लोकस्मिन् निर्दोषं न निर्गुणम्।
तस्मात् दोषान् परित्यज्यगृह्णन्तुगुणान्बुधा ॥

बालमुकुंद आश्रम
पुष्कर ३०५०२२
अनंत चतुर्दशी २०३६

विश्वनाथ लिमये
'लिमये निवास'
रेलटोली,
गोंदिया-४४१६१४

॥ श्री ॥

निवेदन

द्वितीय संस्करण

प्रभु की कृपा से ऐतिहासिक पुस्तक अपेक्षा से अधिक लोकप्रिय हो गयी। अत प्रथम वर्ष में ही इतने अधिक मूल्य की ११०० प्रतिया समाप्त हो गयी जिसका बहुत बडा श्रेय सरस्वती विहार के श्री दीनानाथ मेहरोत्रा को है। अंग्रेजी सस्करण भी समाप्त प्रायः है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री कृष्णा अय्यर जैसो को पुस्तक विशेष अच्छी लगने से न केवल दक्षिण की सब भाषाओ मे इसके भाषांतर मुद्रित होना प्रारम्भ हुए हैं अपितु गुजरात एव बगाल मे भी यह प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी है। शिक्षा मत्रालय की भी विशेष कृपा होने से विविध प्रकार के अनुदान के अतिरिक्त जर्मनी मे हो रहे अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेले मे भी मत्रालय की ओर से यह पुस्तकें प्रदर्शनार्थ भेजी गयी हैं।

स्वाभाविक ही दूसरा सस्करण प्रकाशित करते समय अनेक ज्येष्ठो की राय से यही विचार बना कि हिंदी मे भी यह पुस्तक दो भागो मे निकाली जावे। ईश्वरीय योजनानुसार अंग्रेजी मे इसके दो भाग करने पडे थे। जिस कारण 'सत्याग्रहीराम' तथा 'शस्त्राग्रहीराम' ऐसे नामकरण प्राप्त हुए थे, जो अनेको को बहुत अच्छे लगे। इसी पृष्ठभूमि मे ऊपर के चित्र बदलने का भी अवसर मिला जो अधिक सार्थक लगेंगे। मुझे पगपग पर यही अनुभव होता है कि यह सब कुछ कोई तृतीय शक्ति ही अपने इशारे पर करवा रही है।

अन्यथा प्रथम सस्करण के विक्रय मे रु० १०,०००/- से अधिक की हानि हुई थी। पाठको को अल्प मूल्य मे पुस्तक उपलब्ध हो, इस मोह मे रु० ३५/- मात्र रखा था। पर विक्रेताओं के कमीशन की जानकारी के अभाव मे लागत से बहुत अधिक मात्रा मे घाटा हुआ। अत मूल्य बढ़ाने का विचार अपरिहार्य था। इन दो खडो के कारण पाठक कुछ मूल्य वृद्धि को भी उचित ही मानेंगे ऐसा विश्वास है। विभाजन करते समय परिशिष्ट भी जहा दो भागों मे किये गये हैं वहा दूसरे खण्ड मे केवल अलग मे प्रस्तावना जोडी है। प्रथम खड मे ४-५ ज्येष्ठ पुरुषों के अभिप्राय जोड़े गये हैं जिससे पुस्तक का योग्य मूल्याकन करने मे सहायता होगी।

दूसरा सस्करण निकालने मे भी अनेक बंधु सहायतार्थ सामने आये जिनके सहयोग से ही यह सस्करण सभव हो पाया। छिन्दवाडा के डा० वसतराव पराजपे ने ५,०००/- की राशि देकर कृतार्थ किया। वहा बवई के राहुल विन्डर्स तथा छोटेलाल जी ने भी पुन २,०००/- की राशि देकर अपना विशेष स्नेह प्रकट किया है। इस सस्करण को जहा प्रभात प्रकाशन ने विक्रय हेतु स्वीकार कर अपना स्नेह प्रकट किया है वहा ग्रेफिक वर्ल्ड ने आफसेट पर अल्पमूल्य मे २,००० प्रतिया निकलवाकर अनुग्रहित किया है।

अत मे मैं बालमुकुद आश्रम के पू० स्वामी नरसिंहाचार्य जी (छोटे महाराज) तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रकाता जी (चाचीजी) से विशेष अनुगृहित हू जिन्होंने दूसरे सस्करण मे आवश्यक योगदान के अतिरिक्त किशोरो के लिए निकलने वाले चित्रमय 'महामानव राम' का सपूर्ण भार वहन करने की कृपा कर मुझे पूर्णत चितामुक्त किया है। इनके स्नेह एव कृपा से उऋण होना मेरे सामर्थ्य के बाहर है। अत उसका निर्वाह करने मे मुझे आनन्द है।

पुष्कर मदिर, ऋषिकेश — स्नेहाभिलाषी

मार्गशीर्ष पौर्णिमा २०४३ — विश्वनाथ लिमये

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

भारतवर्ष के लोगो के सम्मुख प्रभु रामचन्द्र का जीवन एक आदर्श पुरुष, मानव-सामर्थ्य के लिये जो सर्वोत्तम उन्नति सभव हो सकती है, उस मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप मे अकित किया गया है। रामचरित्र के महान् गायक वाल्मीकि ने प्रभु रामचन्द्र के अवतार पर विश्वास होते हुए भी बहुत प्रयत्नपूर्वक उनको अद्भुत, रहस्यमय एव दैवी शक्तियो से युक्त अवतार के रूप मे चित्रित नही किया है, अपितु मानवीय गुणो, मानवीय भावनाओ तथा मानवीय सामर्थ्य-सम्पन्न एक मनुष्य के रूप मे प्रस्तुत किया है। एक ऋषि एव दृष्टा के नाते वाल्मीकि ने देखा कि लोग इस दुर्बलता से ग्रसित है कि श्रेष्ठ अवतार नामस्मरण के लिये हैं न कि अनुकरण करने के लिए।

हमारे समाज की परम्परागत दुर्बलता का भान होने के कारण वाल्मीकि ने मानवीय विकास की चरम सीमा तक मानवी गुणो के अनुपम आदर्श के रूप मे प्रभु रामचन्द्र को, मानवीय गुणो से युक्त एक मानव के रूप मे ही प्रस्तुत किया। उनकी माता-पिता के प्रति भक्ति, भाइयो के प्रति स्नेह, पत्नी के प्रति प्रेम-उसकी करुणा और विशुद्धता मे—सबके प्रेम का विषय बन गया है। ये और प्रतिदिन के मानव-जीवन के अन्यान्य पक्षो को इतने उत्कृष्ट रूप मे रखा गया है कि जिनसे स्फूर्ति ग्रहण कर सर्वसाधारण मनुष्य अपने दैनिक जीवन को उस उज्जवल आदर्श के अनुसार ढाल सकें तथा उन्नत कर सकें। जिन कठिनाइयो से वे पार निकले, माता-पिता तथा बाद मे अर्धांगिनी के वियोग का दुःख सहन किया और अत मे पाप एव अधर्म की शक्तियो पर उन्होंने जो विजय प्राप्त की, उससे हमारे हृदय मे आशा की लहर पैदा होती है, विश्वास का अकुर उगता है। अदम्य साहस की स्फूर्ति प्राप्त होती है और समस्त आपत्तियो से लोहा लेकर, उन पर विजय प्राप्त कर इस पृथ्वी पर अपने को ईश्वरीय प्रतिमा के अनुरूप हम बना सकते है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि मे श्री रामचन्द्र द्वारा स्थापित 'रामराज्य' मे शाति का साम्राज्य छाया था, लोग धर्म और कर्तव्य का पालन करते थे और सुखी और वैभव का जीवन विताते थे। श्री रामचन्द्र के जीवन के ये पहलू उदाहरणार्थ परिस्थिति का आकलन करने की क्षमता, राजनैतिक सूक्ष्म दृष्टि, राजनीतिज्ञता, अपना

सब कुछ समर्पित कर जनसेवा का व्रत, दुष्टों का निर्दलन, दुष्टों के चंगुल से निष्पाप लोगों की मुक्ति और रक्षा, धर्म का अभ्युत्थान अर्थात समाज की धारणा, जिससे विषमता का निर्मूलन, विभेदों में सामंजस्य, परस्पर शत्रुता का निवारण तथा विपुल विविधता में प्रकट होने वाले जन-जीवन में मौलिक एकता का साक्षात्कार होता है।

मानव का नेतृत्व करने वाले लोगों में, सार रूप में जिन गुणों की आवश्यकता है और राम राज्य की प्रतिष्ठापना की जो पूर्वपीठिका है, वह पूर्णतया शुद्ध व्यक्तिगत जीवन, समाज के सुख-दुख में समरस होने की क्षमता और परिणामतः स्वयं स्वीकृत आत्मसंयमी जीवन और अजेय सैनिक शौर्य द्वारा भी, जनता के इन क्लेशों को उत्पन्न करने वाली आक्रमक शक्तियों का दमन करने का चातुर्य, सत्य के प्रति प्रेम, वचन-पालन का संकल्प, फिर उसके लिये चाहे जो भी त्याग करना पड़े और जन-हित-सिद्धि के हेतु परिपूर्ण आत्मसमर्पण, चाहे उसके लिये फिर कितने ही त्याग की आवश्यकता हो और सबसे महत्वपूर्ण बात है समाज में धर्म और संस्कृति पर अटल निष्ठा। ये तथा अन्य अनेक गुण जो इस महान जीवन में प्रकट हुए हैं, उन्हें उन सब लोगों को अपने अन्दर निर्माण करने की आवश्यकता है जो हमारे समाज को आज दुःख-दारिद्र्य से समृद्धावस्था की ओर तथा अधःपतन से गौरव की ओर ले जाने के लिये प्रस्तुत हैं। अन्यथा रामराज्य केवल एक अर्थहीन शब्द के रूप में हमारी जिह्वा पर रह जायगा और वह कल्पना स्वप्न रह जायेगी, साकार नहीं होगी।

श्री रामचन्द्र के जीवन में मानवता की महानता निहित है। आज समस्त देश पर नैराश्य एवं क्षोभ की घटायें घिरी हुई हैं और जनता अनुभव करती है कि वे सब लोग, जिनके हाथ में नेतृत्व की बागडोर है, वैसे नहीं हैं जैसे उन्हें होना चाहिये था। लोगों के मन की यह मुख्य अभिलाषा कि उन्हें प्रकाश और योग्य मार्गदर्शन तथा ऐसी प्रेरणा प्राप्त हो, जिससे निराशा के घनान्धकार में भी प्रकाश दिखाई दे, दिन-प्रतिदिन और अधिक तीव्र होती जा रही है। ऐसी परिस्थिति में श्री रामचन्द्र का जीवन हमारे पथ-प्रदर्शन के लिये आशा की किरण है।

मा० स० गोलवलकर
द्वितीय सरसंघचालक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

पूज्य श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का आशीर्वाद.

मर्यादा पुरुषोत्तम राम की एक झांकी

रामो राजमणिः सदा विजयते राम रमेशं भजे ।।
रामेणाभिहता निशाचर चमू रामाय तस्मै नमः ।।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहम् ।
रामेचित्तलय सदा भवतु मे हे राम मामुद्धर ।।[1]

छप्पय

सदा राम की विजय रामकू भजू निरन्तर ।
सैन्य निशाचर सकल रामद्वारा गत सुरपुर ।।
जिनिमे जोगी रमें रामके चरन परत हू ।
नही रामतें बडो रामतें विनय करत हू ।।
सदा राम को दास हू, रमे राममें चित्त मम ।
तातें हे श्रीरामजी, पद पदुमनि मे परत हम ।।

"राम" एक परम चमत्कारी है । श्री दशरथजी के यहा श्रीरामजी का आविर्भाव हुआ उससे पहले भी 'राम' नाम रखने की प्रथा थी । महर्षि जमदग्नि ने अपने पुत्र का नाम राम ही रखा था । फरसा बाधने से वे परशुराम कहलाये । (इसी प्रकार श्रीकृष्ण के बडे भाई का नाम भी राम ही रखा गया, बलशाली होने से वे बलराम कहलाये ।) राम तो नित्य है, शाश्वत हैं, अव्यक्त है, अविनाशी हैं, अजन्मा हैं, अशरीरी हैं । वे सर्वव्यापी, सर्वात्मा, सपूर्ण ससार के कर्ता-भर्ता-सहर्ता हैं । वे अणु-परमाणु मे व्याप्त है, उनका कोई रूप नही, नाम नही, धाम नही, प्रतिमा नही, इन्द्रिय नही, मन नही । समस्त प्रपच से परे हैं । वे त्रिपाद विभूति मे स्थित रहते हैं । वे जन्म मरण से रहित हैं, फिर भी वे लोक कल्याण के निमित्त

---

१. इस श्लोक के राम शब्द मे सातो विभक्तिया आ जाती हैं । राजमणि राम की सदा जय हो (प्रथमा) रमा के स्वामी राम को (द्वितीया) भजना चाहिये । राम ने (तृतीया) समस्त निशाचरो की सेना को मारा । उन राम के लिये (चतुर्थी) नमस्कार है । राम से (पचमी बढकर कोई नहीं है । उन राम का (षष्ठी) मैं दास हू । मेरा चित्त राम मे (सप्तमी) लग जाए । हे राम ! (सम्बोधन) मेरा उद्धार करो ।

अनेक रूपो मे अवतरित होते हैं।

वास्तव मे भगवान् तो निराकार है, उनका कोई आकार नही है। अशरीरी है, उनका कोई शरीर नही वे सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान है, 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ' अर्थात् वे सब कुछ करने मे समर्थ है, इसीलिए अशरीरी होकर भी शरीर धारण कर लेते है, अजन्मा होकर भी जन्म ले लेते है। यदि भगवान् जन्म न लें तो हम ससारी लोगो को भगवत् की प्राप्ति कैसे हो, क्योकि अव्यक्त मे हम व्यक्ति जीव—देहधारी प्राणी चित्त को कैसे लगा सकते हैं। अव्यक्त की उपासना अत्यन्त कठिन है। गीता मे अर्जुन ने भगवान् से पूछा—एक तो आपकी भक्ति में तल्लीन होकर आपके व्यक्त रूप अवतारादि का ध्यान चिन्तन करते रहते हैं, दूसरे अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करते है, इन दोनो मे श्रेष्ठ कौन है ?

भगवान् ने कहा—भाई मेरे मन की बात पूछते हो तो मेरे मत मे तो जो मेरे अवतार रूप में मन लगाकर नित्ययुक्त भाव से, पराभक्ति से सयुक्त होकर मेरे व्यक्त रूप का भजन करते है वे ही श्रेष्ठ है। अर्जुन ने कहा—तब जो अक्षर, अव्यक्त, अचिन्त्य, अचल, अनिर्देश्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ नित्य निराकार की उपासना करते है वे क्या कनिष्ठ है ? भगवान ने कहा—नही, ऐसी बात नही है। जो निराकार के उपासक, इन्द्रियो का भलीभांति सयम करके, सम्पूर्ण प्राणियों के हित मे रत रहते हुए, सर्वत्र समबुद्धि वाले, अव्यक्त उपासक भी मुझको ही प्राप्त होते है। किन्तु भैया ! सोचो तो सही जो देहधारी है, वे बिना देह वाले अव्यक्त ब्रह्म को क्या सरलता से अन्त करण मे बिठा सकते है ? देहधारी को अव्यक्त की उपासना उतनी ही कष्टप्रद है जितनी गगा जी की धारा को समुद्र में लौटाकर फिर गगोत्री मे लाया जाना। इसलिये अव्यक्त ब्रह्म में आसक्ति वाले पुरुष को अत्यन्त विशेष कष्ट होता है।[1]

भगवान भक्तो की उपासना को सुलभ करने के निमित्त मानव रूप से प्रकट

---

१ एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥
श्री भगवानुवाच—मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

श्री० गी० १२ अ० (१, २, ३, ४, ५)

हुआ करते हैं। अवतार भी कई प्रकार के होते है। कलावतार, अंशावतार, आवेश-वतार, पूर्णावतार आदि-आदि। हमारे श्रीरामजी मर्यादा पुरुषोत्तमावतार हैं। उनका चरित्र चिंतनीय तथा अनुकरणीय है। उनके चरित्र का उत्तम पुरुषों को अनुकरण करना चाहिये। जो लोग उन्हें अवतार न भी माने, किन्तु उनके चरित्र तो इतने पवित्र है कि उत्तम पुरुषो को उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भगवान बाल्मीकि ने श्रीराम को अवतार तो माना है, किन्तु उनके मानवरूप का ही विशेष वर्णन किया है, क्योकि वे राजाराम बनकर प्रकट हुए। उन्होंने अपने को राजा दशरथ का पुत्र मानकर ही समस्त चरित्र किये। श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं। उनके वचनो को—उनकी आज्ञाओ और उपदेशो को—तो मानना, किन्तु उनके आचरणों का सर्वत्र अनुकरण नही करना चाहिये। भागवत में भगवान व्यास ने ऐसी ही आज्ञा की है।[1]

श्रीरामचन्द्रजी तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उन्होंने मानवमात्र को अपने आचरण से शिक्षा दी है। जो लोग अर्थ और काम के ही दास हैं, वे श्रीराम जी के चरित्र से शिक्षा ग्रहण नही कर सकते। एक महात्मा ने मुझे बताया कि एक ईसाई धर्मोपदेशक उनके पास आया। उसने उन से कहा—"मैंने २७ बार वाल्मीकीय रामायण पढी है।"

महात्माजी ने उनसे पूछा—आपने इतनी बार वाल्मीकीय रामायण पढ़ी है, तो उसे पढ़कर क्या निष्कर्ष निकाला ?

उन्होने कहा—मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि "भरत महामूर्ख था। भला जिसे नाना से दशरथ द्वारा की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार नियमपूर्वक राज्य मिल रहा है, पिता ने उसे राज्य का अधिकारी घोषित कर दिया है। अपनी सगी मा और सौतेली मा उससे राज्य ग्रहण करने की हठ कर रही हैं, उनका कुलगुरु उन्हें राज्य करने को कह रहा है, फिर भी वह इतने बड़े साम्राज्य पर लात मारकर अपने बनवासी सौतेले भाई के पीछे भटक रहा है। उसके न आने पर उसकी चरण पादुकाओ को राजसिंहासन पर पधारकर साधु जीवन बिता रहा है, उससे बडा मूर्ख ससार मे कौन होगा ?"

महात्मा जी ने पूछा—और क्या निष्कर्ष निकाला ?

वे बोले—भरत से भी बढकर महामूर्ख सीता थी। आप सोचिये, पिता ने राम को ही वनवास दिया था, सीता को तो वनवास नही दिया था। वह इतने समृद्ध राज्य को परम ऐश्वर्य सम्पन्न राजमहल को त्यागकर अपने वनवासी पति के पीछे कटकाकीर्ण वनो मे नगे पैरो भटकती रही। नाना क्लेशो को सहन करती रही अन्त मे रावण उसे हरण कर ले गया। नौ महीने उसके घर मे रोती बिलखती

---

1 ईश्वराणां वच सत्य तथैवाचरित क्वचित्।

नहीं इससे बढ़ कर मूर्खता ससार म कान सी रही जा सकती है।

महात्मा ने कहा—भाई, तुमने अपनी बुद्धि के अनुसार रामायण का अर्थ ही नहीं समझा। बात यह है कि जिनके जीवन का लक्ष्य सम्पूर्ण भोगों का ही भोगने का है, जो 'खाओ पिओ मौज करो' को ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं, व रामायण को क्या समझेंगे? वे राम और सीता के जीवन को कैसे जान सकते हैं? नहीं तो ससार भर की किसी भी भाषा में राम जी और सीता जी से उत्कृष्ट चरित्रवाला खोजने से भी नहीं मिल सकता।

हम लोगों के वश परम्परा से बाल्यकाल से ही ऐसे सस्कार जमे हुए हैं कि सम्पूर्ण ज्ञान के सागर ब्रह्मा जी स ही यह सृष्टि हुई है। उनके मरीचि, अत्रि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद ये पुत्र हुए । ये भी ब्रह्मा जी की भांति सर्वगुण सम्पन्न और परमज्ञानी थे। इन्हीं के द्वारा समस्त ससार के जीवों की उत्पत्ति हुई ।

जब हम छोटे थे और हमें इतिहास पढ़ाया गया, तो यह बताया गया कि पहले भारत में अनार्य आदिवासी (वन में रहने वाले वनवासी) ही बसते थे। आर्य लोग दूसरे देश से यहां आये। ये असभ्य जंगली थे। पेड़ों के बीच रहते थे, कच्चा मास खाते थे। तब तक उन्हें अग्नि का ज्ञान नहीं था। एक दिन दो लकड़ियों के रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हो गयी । उन्होंने उसे देवता मानकर उसकी पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। उसे मास खिलाने लगे। तब उनका मास उन्हें स्वादिष्ट लगने लगा। तब मास पका कर खाने लगे। फिर शनै शनै बीजों को इकट्ठा करके खेती करने लगे। फिर घर बनाने लगे। कहने का अभिप्राय यह है कि असभ्य से आधुनिक सभ्य बने। वे पाश्चात्य विचारक पाच सहस्र वर्ष से आगे कुछ जानते ही नहीं। इन्हीं पाच सहस्र वर्षों में राम, कृष्ण महापुरुष भी हो गए।

यदि इस मान्यता को स्वीकार किया जाये तो हमारे समस्त वेद, पुराण, शास्त्र आगम सब असत्य हैं। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग आदि की कल्पना सब भ्रामक है। ब्रह्मा, जमदग्नि, भरद्वाज वसिष्ठ सब जंगली असभ्य थे।

इस प्रकार की इतिहास की कल्पना वाले भौतिकवादी, परमार्थ से विहीन महामूर्ख लोग हैं। उनके मत में उन्नति करते-करते अब पूर्ण सभ्य हुए हैं। वे सभ्यता की व्याख्या, ऊंचे ऊंचे भवन, बड़े-बड़े पक्के राजपथ, रेल, तार, मोटर वायुयान, दूरश्रवण, दूरदर्शन इन भौतिक पदार्थों का ही मानते हैं। हमारे यहां सभ्यता के चिह्न ये बाह्य भौतिक पदार्थ कभी नहीं माने गये हैं। हमारे यहां तो सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा उपरति, शास्त्र-विचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, वीरता, तेज, बल, स्मृति, स्वतंत्रता, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, साहस उत्साह, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, गौरव और निरहंकारता आदि सद्गुण ही

उन्नति के लक्षण माने गये है।

हमारे यहा तो कभी नही कहा गया है कि जिसके ऊचे-ऊचे वातानुकूलित भवन हो, भाति-भाति के वस्त्रो का भडार हो, समस्त भौतिक सुखोपभोग हो, वह सुसभ्य ब्राह्मण है। हमारे यहा तो गीता मे सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण के लक्षण बताते हुए कहा है कि शम, दम, शौच, तप, शान्ति, ऋजुता, ज्ञान, विज्ञान तथा आस्तिकता—ये ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण है। शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता और युद्ध मे से न भागना तथा दान देना और ईश्वर भाव ये क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण हैं।[1] हमारे यहा बाह्य भौतिक उन्नति को उन्नति नही कहा गया है। हमारे यहा तो आन्तरिक सद्गुणो के विकास का ही नाम उन्नति है।

इसीलिए वाल्मीकि रामायण मे सबसे पहले यही पूछा गया है कि इस समय शीलवान्, गुणवान्, यशस्वी, तेजस्वी, दाता, इन्द्रियजित् आदि सद्गुणो से सम्पन्न कौन पुरुष है ? तो कवि ने बताया वे राम है। राम सद्गुणो के भडार है। इसीलिए ससार ने उन्हे अपनाया। राम से बढकर आदर्श लोकप्रिय पुरुष नही हुआ। इसीलिए वे पुरुष नही पुरुषोत्तम कहलाये। इन्होने सद्गुणो की मर्यादा का सेतु बाध दिया। इसीलिए वे मर्यादा-पुरुषोत्तम कहलाये।

कुछ लोगो का कहना है कि राम नाम का कोई ऐतिहासिक पुरुष नही हुआ। यह तो कवि की कल्पना मात्र है। जैसे उपन्यासो मे काल्पनिक पात्र बना लिये जाते हैं ऐसे ही 'राम' एक वाल्मीकि के काल्पनिक पात्र है। ऐसा कहने वाले वे ही पुरुष हैं, जिन्हे धर्म तथा मोक्ष का ज्ञान नही है। राम को आप अवतार न मानें तो कोई आपत्ति नही, क्योकि उन्होने मनुष्य का रूप धारण किया। जन्म से महाप्रयाण तक मानवीय लीलाए की। वे बालक बने, बालको के से खेल खेले। वे क्षत्रिय बने क्षत्रियो जैसे कार्य दिखाये। वे पितृ-भक्त, मातृ-भक्त, ऋषि-भक्त बने। उन्होने दुष्टो का दमन किया, शिष्टो का पालन किया, परिवार की एकता की। वे एक आदर्श पुरुष पितृ भक्त, भ्रातृस्नेह आदर्श राजा थे। यदि वे काल्पनिक पुरुष होते तो ससार के अणु-परमाणु मे वे इस प्रकार व्याप्त नही हो सकते थे। उनका यश-सौरभ ससार के कोने-कोने मे इस प्रकार फैल नही सकता था। ईसा, मूसा और मुहम्मद तो कल ही हुए हैं। इन सबसे पहले ससार मे राम का ही यशोगान होता था।

प्रो० हरवश लाल जी ओबरा निदेशक, सस्कृति विहार, ऊपर बाजार राची

---

1 शमो दमस्तप शौच क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥
शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्य युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजम् ॥
(श्री० भ० गीता १८ अ० ४२, ४३ श्लोक)

ने अपने यहां सस्कृति विहार मे ऐसे सहस्रो चित्रो का, वस्तुओ का सग्रह किया है, जिनमे ससार भर के देशो मे भारतीय सस्कृति प्रसार के प्रमाण मिलते हैं। कुछ सचित्र विज्ञप्तियां भी उन्होंने प्रकाशित करायी है। ईसा से ४९० वर्ष पूर्व ईरान के सम्राट दारयवसु (डेरियस) ने यूनान पर आक्रमण किया था। मेराथन स्थान के युद्ध मे ईरानी सेना की पराजय हो गयी। ईसा से ४८५ ई० पूर्व सम्राट दारयवसु का देहान्त हो गया। ईसाई सन् ४८०ई० पूर्व दारयवसु के पुत्र ईरानी सम्राट क्षय-षार्ष (जेरक्सेज) ने एक विशाल सेना लेकर यूनान पर चढाई की। उसकी सेना मे इस बार भारतीय सैनिकों की विशाल सेना थी।

उन भारतीय तीरन्दाज सैनिकों के तीरो का फल इस्पात का बना हुआ था। इन भारतीय धनुर्धरों ने मिस्र अरब, सीरिया फिलिस्तीन, मेसोपाटामिया, तुर्की अफगानिस्तान, आदि मे इस्पात के तीक्ष्ण तीरो द्वारा विजय प्राप्त की, यूनानी वीरो को पराजित किया। तब तक पश्चिम के किसी भी देश का इस्पात का ज्ञान नही था। ईसा की तीसरी शती पूर्व पजाब की झेलम नदी के तट पर जब सिकन्दर ने भारत पर चढाई की तो पजाब के राजा पुरु (पोरस) के साथ उसकी सन्धि हुई। महाराज पुरु ने सिकन्दर को १० सेर इस्पात भेंट की। सिकन्दर उस दुर्लभ अपूर्व धातु को देखकर चकित रह गया। भारतीय तीरदाज सैनिकों के चित्र प्रकाशित है।

तुर्की के 'निम्पेरकाम' नगर के सग्रहालय मे चादी की भारत माता की स्थाली अभी तक सुरक्षित हुई है। इस स्थाली की रचना रोम में वहा के एक स्वर्णकार ने ईसा की प्रथम शती मे की है। उसमे भारत माता के सिर पर तमाल पत्र निर्मित गज मुकुट है। गज मुकुट मे दो ईख की पोरे लगी हैं। भारत माता के बाये हाथ मे ईख का दण्ड धनुष है। दाहिना हस्त आशीर्वाद मुद्रा में है। विश्व मे ईख और शक्कर भारत की ही देन है। मा के अग पर भारत निर्मित अत्यन्त महीन मलमल की साडी है जो रोम मे सुवर्ण समतौल मे बिकती थी। मा का आसन शाल्मलि (सेमर-गोल) की लकडी का है। पाये हाथी दात के है। चित्र के आसपास चितकबरा मुर्गा, तोता, शिकारी, कुत्ता, लगूर मदारी सहित दो चीते है। ये सभी वस्तुए दो सहस्र वर्ष पूर्व भारत से रोम का निर्यात होती थी।

जर्मनी मे एक सूर्य नारायण की प्रतिमा ई० ६७ मे पूर्व की प्राप्त हुई है। यह सूर्य पूजा समस्त योरोप मे फैल गयी थी। यदि अपने इतिहास के उपाकाल मे ईसाइयत का प्रचार रुक जाता तो आज सम्पूर्ण ससार सूर्य पूजक ही होता।

जापान (निपुण देश) मे भारत के सभी देवता प्रतिष्ठित है। वहा के एक प्राचीन मूर्ति महर्षि वसिष्ठ जी की उपलब्ध है। जिसे वहा के लोग वसुसेन कहते है। भगवान शिव जी की भी मूर्ति प्राप्त है। सगोल देश मे सस्कृत भाषा का सर्वत्र प्रचार था। १८वीं ईसा की शताब्दी मे दक्षिण से एक १७ वर्षीय शाक्य पंडित गये थे। उन्होंने आधी दुनिया को विजय करने वाले कुबलाई खा (कैवल्य हर)

को महायान् बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी। वहा गायत्री मन्त्र अभी तक प्रचलित है। इन्डोनिसिया (इन्डोनिजिया) मे महाभारत आज भी उपलब्ध है। सेन्ट्रल अमेरिका के ग्वेटेमाला (गौतम अहल्या) देश मे हनुमान जी की एक बहुत पुरानी मूर्ति मिली है। राजर्षि कम्बुज द्वारा सस्कारित देश कम्बुज (कम्बोडिया) मे हनुमान जी की बहुत ही दिव्य मूर्ति है। वहा अब भी रामकथा 'रामकीर्ति' नाम से होती है, जो अत्यत रोचक और प्रेरक है।

'अकुरवट' मन्दिरो का एक विशाल नगर है। वहा की भीतो पर रामायण महाभारत के चित्र अभी तक सुशोभित हैं। लवदेश (लाओस) मे रामकथा को 'फालक फलाम' कहते है जो लक्ष्मण-राम का अपभ्रंश है। वहा एक दूसरी राम कथा 'फोम्मचक' के नाम से प्रसिद्ध है। वहा की राजधानी लुआग प्रबग के मन्दिरो की भीतों पर राम कथा के अत्यन्त मनोरम चित्र अब तक शोभायमान हैं। यहा भगवती सीता की अग्नि परीक्षा का अत्यन्त ही उत्कृष्ट चित्र है। वहा एक उडनशील गरुड का अत्यन्त मनोरम चित्र है जिसमे गरुड जी राम लक्ष्मण की नागपाश को काट रहे हैं। यवद्वीप (इन्दोनिशिय) मे प्राम्यनम रामकथा पर उत्कृष्ट मूर्तिकला का अद्वितीय पुण्यस्थल है। रामायण के इस मूर्ति कलाशिल्प तीर्थ मे रामचरित पर सहस्रों मूर्तिरत्न इस सुन्दर शैली मे उत्कीर्ण किये गये हैं। भारतवर्ष मे भी कही रामचरित पर इतने सुन्दर चित्र उपलब्ध नही है।

लीलाथाई (थाईलैंड) श्याम देश तो रामराज्य आदर्श विभूषित देश है। इसकी प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर मे थी। सन् १३५० मे श्यामनरेश ने अयोध्या नामक नगरी बसाई। थाई देश के राजाओ के नाम रामउपाधि से विभूषित रहते है। जैसे राम खम्हेड, श्री सूर्यवशराम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महावज्रराम, बुद्धराम, महामतकराम, सुखदेवराम, रामामात्य, रामसुयन, राम पुत्र आदि आदि भगवान् राम की मूर्ति के चित्र वहा के मुद्रा पत्रों, डाक टिकटो एव बस टिकटो पर आज तक छपते है। कठपुतलियों के नृत्यो मे रासलीला दर्शायी जाती है। नाना मुखौटे लगाकर नर्तक राम लीला का प्रदर्शन करते है। वहा के लवकुश, हनुमान युद्ध, अश्वमेध, यज्ञ के अश्व का लवकुश द्वारा प्रतिरोध, भगवान राम, कपिराज सुग्रीव, धनुर्धारी राम, किष्किधा मे बाली एव तारा, भगवती सीता आदि परम उत्कृष्ट दर्शनीय छाया चित्र हैं। यद्यपि कालक्रम से इन्डोनेशिया आदि देश मुस्लिम हो गये हैं। किन्तु इन्होने रामलीला को नही छोडा है। सुकर्ण आदि राष्ट्रपति तक रामलीलाओ के प्रदर्शनो मे भाग लेते रहे है।

इस प्रकार रामकथा आज से नही सहस्रों लाखो वर्षों से विश्व मे व्याप्त हो गयी है। ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तमराम को ऐतिहासिक पुरुष न मानकर उपन्यास के काल्पनिक पात्र मानना परम हास्यास्पद है। राम सूर्यवश—विभूषण, दशरथनन्दन

कौशल्यानन्दवर्धन, अयोध्याधिपति, सीता मर्वस्व, भरत-लक्ष्मण—शत्रुघ्न के अग्रज और ससार की मर्यादा को स्थापित करने वाले ऐतिहासिक महापुरुष हैं।

हमारे परमप्रेमास्पद लिमये जी ने अपनी इस पुस्तक मे वाल्मीकीय रामायण के आधार पर जो ऐतिहासिक पुरुषोत्तम राम के रूप का दिग्दर्शन कराया है। यह अत्यन्त ही समीचीन है। आशा है आधुनिक नवयुवक इस ग्रथ मे शिक्षा ग्रहण करेंगे। श्रीराम भगवान के अवतार है, इसमे तो भगवत् भक्त ही आनन्द उठा सकते है, किन्तु राम एक मर्यादा पुरुष है, उनके चरित्र श्रवणीय तथा अनुकरणीय हैं। इससे तो मानवमात्र लाभान्वित हो सकते है, फिर वे चाहे किसी भी सम्प्रदाय किसी भी मजहब, किसी भी पन्थ के क्यो न हो। आशा है कि हमारे लिमये जी और भी ऐसे ही शिक्षाप्रद ग्रंथों का सृजन करके भारतीय भाषा के भडार की श्रीवृद्धि करेंगे। मै उनकी मगल कामना करता हू और आशीर्वाद देता हू कि वे अपने चरित्र को पवित्र रखकर शेष जीवन को भारतमाता की सेवा मे समर्पित करते रहें।

इति शुभम्।

(प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)

सकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर,
पो० झूसी, प्रयागराज,
चैत्र कृ० ११।२०३७ वि०

प्रस्तावना

(द्वारा—श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी)

श्री विश्वनाथ लिमये द्वारा लिखित 'वाल्मीकि के मर्यादा पुरुषोत्तम राम' की पाण्डुलिपि देखने का अवसर प्राप्त हुआ। अपने प्राक्कथन मे लिमयेजी लिखते है, "वास्तव मे राम जीवन यह मानव की समस्याओ का मानवीय सामर्थ्य के आधार पर निराकरण का अप्रतिम उदाहरण है।" और लगता है कि यही एक भाव लेकर उन्होंने यह प्रयत्न अगीकृत किया है।

वाल्मीकि रामायण का प्रभाव भारतवासियो के जीवन पर, आचारो पर, विचारों पर, कर्मो पर, व्रतो पर, नियमो पर तथा कल्पनाओ तक पर बहुत गहरा अकित हुआ दिखाई देता है। भारतीय हृदय मे पितृ-पूजन के, वधु-भावना के, यति या सती धर्म के, तप-त्याग के, लोकसेवा के, समाज-सगठन के, लोकसग्रह के, जाति या देश हित के, न्याय तथा सर्वोत्तम शासन के आदर्श श्रीराम ही माने जाते है। हमारे लिये धार्मिक दृष्टि से भी शुभ कर्मो के लिए परम पावन प्रतीक वाल्मीकि रामायण मे वर्णित रामचद्र है।

रामायण महाकाव्य 'आदिकाव्य' भी कहा जाता है। इस काव्य के नायक राम हैं, जिन्हे धर्म का आदर्श तथा मर्यादाओ का मूर्तिमान उदाहरण मानकर ही नारद ने वाल्मीकिजी को उनका चरित्र-चित्रण करने को कहा था। श्रीराम ने पृथ्वी पर अधर्म का नाश करने तथा धर्म की प्रस्थापना करने के लिये शरीर धारण किया था, यही उनका व्यवहार भी रहा है। इसी आधार पर लेखक के अनुसार, श्रीमद्भागवत ग्रथ मे राम-जीवन को समस्त मर्त्यलोक के लिये मार्गदर्शक बताया गया है— मर्त्यावतार स्त्विह मर्त्यलोकशिक्षण।" परतु अनुवर्ती कवियो ने इसे मानव मात्र के लिये अनुकरणीय काव्य तथा चरित्र को जाने-अनजाने अपने-अपने सप्रदाय विशेष का या मुख्यत वैष्णव ग्रथ का रूप दिया है। इसीलिये श्रीराम को सही रूप मे जानने के लिये मूल वाल्मीकीय रामायण पढने का लेखक का सुझाव भी निश्चित ही विचारणीय है।

इतना निश्चित है कि रसों से ओतप्रोत लालित्यपूर्ण वाल्मीकि के इस महाकाव्य मे वर्ण्य विषय मुख्यत दो प्रकार मे विकसित होते हुए दिखाई देते हैं। एक है

धार्मिक स्वरूप तथा दूसरा ऐतिहासिक अथवा मौलिक रूप। यदि हम पहला तथा सातवाँ काण्ड छोड़ दें, जो कुछ विद्वानों द्वारा प्रक्षिप्त माने जाते हैं, और केवल द्वितीय से छठे काण्ड तक पढ़ें तो हमें दिखाई देगा कि काव्य का स्वरूप सम्प्रदाय-निरपेक्ष अथवा अनेक उपासनाओं का समन्वयात्मक है। फिर भी समस्त मानवों के लिये हितकारी नैतिक मूल्य निर्माण करने की क्षमता उसमें है। राम और सीता का महान चरित्र वर्णन करते समय वाल्मीकिजी ने उसे गुण-दोष-युक्त मानव-चरित्र के नाते चित्रित करने में संकोच नहीं किया है। इसीलिये वह मानव के लिये अनुकरणीय एवं निकट लगता है। इन पाँच काण्डों में राम के विष्णु-अवतार होने के वर्णन बहुत ही नगण्य-से हैं।

जिस धर्म या नैतिक मूल्यों का इस ग्रंथ में वर्णन है, उसमें लौकिकता के साथ आस्तिकता के नाते बहुदेववादिता का प्रतिपादन दीखता है। वैदिक देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि) के नामों के साथ काल, कुबेर, कार्तिकेय, गंगा लक्ष्मी, यम, वायु आदि के नाम भी आते हैं। साथ ही स्थान विशेष पर ३३ प्रमुख देवताओं (१२ आदित्य, ११ रुद्र, ८ वसु तथा २ अश्विनी कुमार) का भी उल्लेख मिलता है। इतना ही नहीं तो कहीं-कहीं अन्य जीव-जन्तु, सर्प (वासुकि), नाग (शेष), वृषभ (नन्दी) वानर (हनुमान) रीछ (जाम्ववान) तथा गरुड़, गृध्र (जटायु) इन सबका उल्लेख भी मिलता है।

अर्थात् पूजा मुख्यत यज्ञविधि के रूप में होने के बाद भी प्रधानत विष्णु तथा शिव की ही पूजा कराई जाती थी। फिर साँप, वृक्ष, नदियों की पूजा का भी यत्र-तत्र उल्लेख है। कर्म और पुनर्जन्म के विचारों का भी काफी प्रभाव दीखता है। फिर भी इन वर्णनों में से सम्प्रदाय विशेष का बोध निकालना संभव नहीं होगा। जैन, बौद्ध, शाक्तों ने अपने-अपने ढंग से घटनाएं प्रस्तुत की हैं। अनुवर्ती रामायणों में कैसे-कैसे परिवर्तन किये गये हैं, इसकी कुछ संक्षिप्त झाँकी परिशिष्टों में पाठक पढ़ सकेंगे।

दूसरे विकास की दिशा ऐतिहासिक अथवा पूर्ण लौकिक है। रामायण में भारत के पड़ोसी या दूरस्थ देश (यूनान, पर्शियन, यवन, शक) आदि का उल्लेख तो है ही, किष्किंधा काण्ड में भारत के चारों ओर के भूप्रदेश, जलाशय, पर्वत, बालुका प्रदेश, आदि का भी वर्णन मिलता है जो प्राचीन होने पर भी दुर्लक्ष्य करने योग्य नहीं है। बीच में प्रसंग विशेष में राम के पूर्वावतारों के वर्णन के साथ-साथ रघुवंश के पूर्वपुरुषों का भी संक्षिप्त वर्णन मिलता है। उसमें राम-जीवन किसी ऐतिहासिक कड़ी के रूप में प्रस्तुत होता हुआ दिखाई देता है। इस दृष्टि से लेखक द्वारा प्रस्तुत आलोक दो और तीन विशेष ध्यान देने योग्य हैं। युद्धकाण्ड तो तत्कालीन भौतिक प्रगति का परिचायक है जिसमें शिल्प तथा युद्धशास्त्र का भी विकास ध्यान में आता है।

इस महाकाव्य के वैशिष्ट्य के नाते एक तीसरा अनहित प्रवाह भी ध्यान देने

एव मनन योग्य है। तत्कालीन समाज मे प्रचलित रीति-रिवाज, श्रद्धाए, मान्यताए मर्यादाए इनका भी वाल्मीकि जी ने विस्तार से वर्णन किया है। वहा मर्यादाओ का पालन करने वाले तथा आवश्यकता पडने पर नवीन मर्यादाओ की स्थापना करने वाले राम दिखाई देते है। इस प्रवाह के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति के लिये गृहस्थ धर्म का त्याग आवश्यक नही माना गया है। तत्कालीन समाज आध्यात्मिक एव आधि-भौतिक समस्याओ से सघर्ष करता पाया जाता है। उस युग मे अद्भुत अनियमित-ताए एव पारस्परिक विरोध विचित्र मात्रा मे प्रकट हुए है। जहा एक ओर बौद्धिक विकास के प्रति उत्साह तथा नैतिक दृष्टि से गाभीर्य दिखाई देता है, वहा दूसरी ओर आत्म-सयम या वासना-नियत्रण का किसी मात्रा मे अभाव भी पाया जाता है। उस स्थिति मे स्वतत्र विचार पर बल देने के कारण परपरागत प्राचीन शास्त्रो के प्रामाण्यरूपी बधनो को कही-कही शिथिल कर सत्य की खोज का प्रयत्न भी दिखाई देता है। इसी कारण अधश्रद्धा पर आघात करते हुए नैतिकता पर आधारित उन्नति का मार्ग खोज निकालना सभव हो पाया है। यह सब इसलिये सभव हुआ कि तत्कालीन धार्मिक नेतृत्व इतना सक्षम तथा साहसी था कि उसे अत्यावश्यक होने पर शास्त्र की प्रामाणिकता मे सदेह करना आपत्तिजनक अनुभव नही होता था।

आज के सामाजिक जीवन मे ईर्ष्या, द्वेष, सघर्ष या हिंसा की प्रवृत्तिया बढती हुई दिखाई दे रही है। अत जीवन के प्रति अधिक व्यापक दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार आवश्यक है। प्रात, भाषा, सप्रदाय और राजनीति को लेकर विभाजन की प्रवृत्तिया तीव्रता से पनपती जा रही है। उससे यह आशका होना स्वाभाविक ही है कि कही हम टूटकर बिखर न जायें। इस स्थिति मे 'आप मेरे राज्य मे कैसे आये ?' इस (वाली द्वारा किये गये) प्रश्न का श्रीराम द्वारा दिया गया उत्तर स्थायी मार्ग-दर्शक बनता है। राम कहते हैं, 'वन काननो मे युक्त यह सपूर्ण भूमि एक है तथा सपूर्ण देश मे कही भी अधर्म हो तो उसे दूर कर न्याय स्थापित करना इक्ष्वाकु वश का उत्तरदायित्व है।''

इक्ष्वाकूणां इय भूमि सशैलवन-कानना।
मृग पक्षि मनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥

वैसे तो सघर्ष की प्रवृत्ति मानव-मन मे अनादि काल से विद्यमान है। सघर्ष का यह मनोभाव सर्वथा अनपेक्षित भी नही है क्योकि जिस व्यक्ति या समाज मे सघर्ष की क्षमता समाप्त हो जाती है, वह सर्वथा गति-शून्य हो जाता है। यह स्थिति उसके नाश का कारण बनती है, परतु सघर्ष की यह प्रवृत्ति तभी तक कल्याणकारिणी रह पाती है जब तक उसका प्रयोग दीनता, दरिद्रता, अन्याय, अत्याचार मिटाने मे किया जाता है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि मे लेखक द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रही एव शस्त्राग्रही राम का चरित्र विशेष मननीय बनता है। मूलतः सज्जन-प्रवृत्ति वालो मे क्षणिक रूप मे उत्पन्न

कलुष को सत्याग्रह की भूमिका से हटाना। परन्तु मूलतः दुष्ट प्रवृत्तिवालों को पूर्ण-रूपेण नष्ट करने में संकोच न करना यह विवेक राम ने प्रकट किया है। इसी आधार पर गीता द्वारा उठाये गये हिंसा-अहिंसा-संबंधी शंका का राम ने अरण्यकाण्ड के प्रारंभ में जो समाधान किया है वह मननीय है अर्थात् राम जीवन में एकांगिता न दिखाई देकर सर्वांगीणता दिखाई देती है।

वाल्मीकि ने रावण-चरित्र का भी उत्तम चित्रण किया है। हनुमान के अनुसार वह अधर्मी न होता तो वह त्रैलोक्य का पालक बनने की क्षमता रखता था। परन्तु अधार्मिकता के कारण उसकी दुष्टता तथा अनाचारिता, भीषणता की सीमा पार करती है। इस भीषणता का भी वाल्मीकि ने विशद वर्णन किया है। कितने दुर्दान्त पात्र से श्रीराम को निपटना पड़ा, इसकी कल्पना की जा सकती है। साथ ही मानव कितनी मात्रा में अपना सामर्थ्य प्रकट कर सकता है, यह विश्वास भी पाठकों के मन में उत्पन्न हो सकता है। इस विश्वास को उत्पन्न करने के लिये ही इस महाकाव्य की वाल्मीकि जी ने रचना की है। यही एकमात्र विचार श्री लिमये जी के ग्रंथ-लेखन की प्रेरणा रही है, ऐसा मुझे लगता है।

अपने प्रयास में श्री लिमये जी निश्चित ही सफल हुए है, ऐसा मैं कह सकता हूं। मुझे विश्वास है कि पाठक लेखक द्वारा प्रस्तुत नवीन संदर्भ में इस ग्रंथ के अध्ययन में रुचि ले सकेंगे।

वसा ठेंगड़ी

आलोक-१

रामकथा की ऐतिहासिकता

किरण-१

श्री रामचन्द्र का ऐतिहासिक व्यक्तित्व

रामनाम भारतीय जनजीवन मे हजारो वर्षो से व्याप्त है। बच्चे के नामकरण-सस्कार मे महिलाए राम आदि के नाम से गीत गाती हैं तथा उन्हें पालना झुलाते हुए वे राम और कृष्ण की लोरिया गाती हैं। शादी-विवाह के अवसर पर सीता तथा राम गीतो मे याद किये जाते है। किसी व्यक्ति का प्राण निकल जाये तो कहते है कि उसमे से राम चला गया। अर्थात् राम का अर्थ जीवन, राम अर्थात् चैतन्य राम के अभाव मे निर्जीवता, रसहीनता, स्वादरहितता का अनुभव किया जाता है। जनसाधारण मे परस्पर मिलने पर एक-दूसरे का स्वागत राम-राम से ही किया जाता है।

ये राम कौन थे ? थे भी या नही ? आज का बुद्धिजीवी विज्ञान-युग की दुहाई देता है और प्रयोगशाला के प्रमाण मागता है। परतु सभी को कही-न-कही आकर किसी पर विश्वास करना ही पडता है। मा के कहने से ही पिता की पहचान होती है। हर जगह प्रमाण नही पूछे जाते। कोई व्यक्ति हजारो वर्ष पूर्व हुआ हो, उसका अपना कोई नाता-रिश्ता न हो, न वह अपनी बिरादरी का हो, न ही अपनी जाति का हो, तथापि उसका अपने जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव हो, तो यह उसकी काल्पनिकता नही, अपितु उसकी ऐतिहासिकता ही सिद्ध करता है।

श्रीराम हम जैसे दो हाथो-पैरो के साथ मनुष्य रूप मे आये थे। वे हम लोगो मे हम जैसे रहे, हम जैसे खेले-कूदे, हसे-रोये तथा उन्होंने पौरुष-पराक्रम का यहा प्रदर्शन किया। परन्तु सामान्य मानव-जीवन जीने वाले व्यक्ति ने असामान्य गुण और कार्य करके दिखाये। गुणो की असामान्यता का प्रभाव इतना अधिक था कि इस देश मे अनेक विद्वानो आदि ने उन्हे मानव या महामानव की श्रेणी से हटाकर भगवान् की श्रेणी मे डाल दिया। अत राम मनुष्य के नाते आये भी या नहीं, इस सबध मे भ्रम उत्पन्न हुआ। हम सतपुरुषो के ऐश्वर्यपूर्ण तथा माधुर्यपूर्ण लेखन-शैलियो के कारण प्रत्यक्ष रामजीवन की ओर दुर्लक्ष्य न करे, यह आवश्यक है। संतो की भाषा समाधि भाषा मानी गयी है। इस कारण ऐतिहासिक कथानक को काल्पनिक मानना असगत होगा।

राम के असामान्य, व्यक्तित्व को गरिमामय रामायण महाकाव्य के कारण और भी अलौकिकत्व मिला। रामायण विश्व का प्रसिद्ध काव्य है। भारत मे ही नही, पाश्चात्य देशो मे भी १५०० से १८०० वर्षों पूर्व रामायण पर अनेक टीकाए हुई तथा भाषान्तर किये गये। भारत की सभी भाषाओ के प्रथम महाकाव्य राम-जीवन से सम्बन्धित घटनाओ से ही सबद्ध है। राम की इस लोकप्रियता को 'प्रसन्नराघव' नाटक के प्रारम्भिक दृश्य मे नट-नटी सवाद मे बडे रोचक ढग से प्रस्तुत किया गया है। नटी पूछती है कि क्या सब कवि या लेखक पागल हो गये है कि राम पर ही कुछ-न-कुछ लिख रहे है। नट कहता है—दोष लेखको का नही, अपितु उन गुणो का है जिन्होने राम मे ही आश्रय पाया।

भारत के पत्थर, पेड, नद-नदिया, पर्वत यहा तक कि समुद्र की लहरें भी राम की गौरवगाथा कहती हुई प्रतीत होती है। मनुष्य झुठलाया जा सकता है, भूगोल नही। चित्रकूट, पचवटी, शृगवेरपुर, रामेश्वरम्—ये स्थान हजारो वर्ष पूर्व कोई बडे प्रसिद्ध स्थान नही थे। कवि को इन स्थानो का पता होना, या इनका ही विशेष उल्लेख करना, कारणरहित नही हो सकता। राम को अस्वीकार करते ही हमे भारत के भूगोल को अस्वीकार करना पडेगा। वैसे शिमला के इडियन इस्टीट्यूट ऑफ एडवान्स स्टडीज के निदेशक प्रो० बी०बी० लाल ने अयोध्या, शृगवेरपुर, चित्रकूट नन्दीग्राम आदि स्थानों में खुदाई करायी तथा पुरातत्त्वीय आधार पर अयोध्या मे दशरथ की राजधानी की एव राम जन्म की पुष्टि की है। (दैनिक हिन्दुस्तान, १६ अप्रैल, १९८०) पुरातत्त्व-विभाग मे जिन्हे अधिक विश्वास है उन्हे इस जानकारी मे सन्तोष होना चाहिए।

विश्व का प्रथम महाकवि महाकाव्य के लिए काल्पनिक विषय क्यो चुनता? किसी देश का या काल का साहित्य उस समाज की उस समय की स्थिति का परिचायक होता है। वाल्मीकि ने रहन-सहन, शिल्प, भूगोल, शासनव्यवस्था, राजनीति कूटनीति, पारिवारिक भाव, युद्धनीति, रणनीति अथवा धनुर्वेद आदि अनेक विषयों का विस्तृत वर्णन रामायण मे किया है। वह उस समय की वास्तविक समाज-व्यवस्था से सबधित ही हो सकता है, कोरा काल्पनिक नही। यदि उस काल मे समाज का जीवन इतना अनेकागी समृद्ध था तो केवल राम ही नही थे, यह कैसे कहा जा सकता है?

यदि आज भी किसी अत्यधिक प्रतिभावान् परन्तु वन या पर्वतीय क्षेत्र मे ही रहने वाले साहित्यिक कवि को काव्य लिखने को कहा जाये तो क्या वह इतने अधिक विषयो को स्पर्श कर सकेगा। भारत मे रामायण व महाभारत को 'इतिहास' कहते है, मिथ्या-ग्रथ नही। यहा तक कि पुराण भी मिथ्या-ग्रथ नही है। सस्कृत मे या विविध भाषाओ में अनेक लेखको ने अपनी-अपनी भावना तथा योग्यतानुसार जो अनुवर्ती रचनाए की हैं, उनसे अवश्य कुछ भ्रम हुआ

होगा। परन्तु उनके कारण ही श्रीराम, समाजजीवन के अन्तिम कोने तक पहुचे हैं। यह उन लेखको का हम पर उपकार ही है।

प्रसिद्ध तमिल क्रांतिकारी तथा कम्बरामायण के एक उत्तम टीकाकार श्री वी० एम० अय्यर का कहना है, कि भारतीय प्रतिभा, शब्दश: भाषान्तर के प्रतिकूल है। इसीलिये भिन्न-भिन्न भाषाओ के रामायण अधिक प्राणवान हुए हैं। लेखक संत, भक्त या ज्ञानी हो तो उसकी प्रज्ञा, प्रांत के वैशिष्ट्य आदि का प्रभाव उसकी कृति पर पडना स्वाभाविक ही है। इससे मूलकथा मे कुछ भिन्नता अवश्य दिखाई पड़ती है पर वह क्षम्य है। परन्तु इस भिन्नता से राम की ऐतिहासिकता में कोई बाधा नही आती। अपनी कृति को रोचक और आकर्षक बनाने के लिए अपनी कल्पना का थोडा सहारा लेने वाले साहित्यकार को दोष देना उचित नही। फिर रामायण आदि-ग्रथ तो सहस्रो वर्षों की उथल-पुथल मे बचे हुए हमारे पूर्वजो के मानसिक एव बौद्धिक साहस के अभिलेख हैं। (इति राजगोपालाचार्य)

वाल्मीकि की शैली इतिहास-लेखन की न होकर पुराणलेखन-शैली है। इतिहास तो शुष्क क्रोध, द्वेष आदि जगाने वाला होता है। पुराण-शैली हृदय को सस्कारित कर समग्रता की ओर ले जाती है। भारतीय इतिहास राजाओं का इतिहास न होकर राष्ट्रोद्धारक विभूतियो का जीवनचरित्र होता है। सम्भव है विदेशी टीकाकार अद्भुत रस या अतिशयोक्ति अलकार से परिचित न हो। प्रतिनायक की शूरता, साथियो की वीरता, युद्ध की तीव्र गभीरता को ध्यान मे रखते हुए कोई भी कवि अतिशयोक्ति अलकार का प्रयोग करता। वैसे भी पुराण-शैली मे विविध रस एव अलकारो का पर्याप्त उपयोग किया जाता है। फिर भी इनसे मूल कथा की ऐतिहासिकता पर आच नही आती। भारत का इतिहास हजारो वर्षों का होने से उसमे उचित एवं उपयोगी घटनाए ही वर्णित की गयी हैं। इसलिए भारत मे इतिहास की परिभाषा ही भिन्न रूप मे की गई है।

"धर्मार्थकाममोक्षाणाम् उपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तम् इतिहास प्रचक्षते॥" (विष्णुधर्मपुराण—३ १५.१)

जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सिद्ध करने वाले उपदेश तथा कथायुक्त पूर्ववृत्त हैं वह इतिहास हैं। पाठ भेदो के कारण भी रामायण काव्य या उसका नायक अनैतिहासिक नही माना जा सकता क्योकि पाठ भेद तो ५०० वर्ष पूर्व लिखे गए 'रामचरितमानस' मे भी हैं।

फादर कामिल बुल्के (परिचय परिशिष्ट मे) नामक पादरी ने प्रयाग विश्वविद्यालय से "रामकथा—उत्पत्ति और विकास" इस विषय पर शोध-प्रबंध लिखकर डॉक्टरेट (पी-एच० डी० की डिग्री) प्राप्त की है। उनके मार्गदर्शक श्री धीरेन्द्र वर्मा ने उनके प्रबंध को रामायण का ज्ञानकोष (एन्साइक्लोपीडिया) कहा है। अवतार होने का खण्डन उन्होंने अवश्य किया है, परतु श्रीराम ऐतिहासिक

पुरुष थे, यह उन्होंने भी बल देकर कहा है। इतना ही नहीं अधिकांश विद्वान उनके इस मत से सहमत हैं ऐसा सूक्ष्म अध्ययन के बाद डॉ० बुल्के का स्पष्ट निष्कर्ष है (पृष्ठ ११८) उन्होंने वाल्मीकि को विश्व का सबसे महान एवं आदिकवि कहा है। राम को काल्पनिक मानने वाले डॉ० वेबर विंटरनित्ज आदि विदेशी विद्वानों या भांडारकर, डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, डॉ० सेन आदि देशी विद्वानों के मतों का डॉ० बुल्के ने जोरदार खण्डन किया है।

श्री राजगोपालाचार्य के अनुसार हम लोग राजसिक-तामसिक हैं। अत अति-सात्त्विकता या अतिगुणशीलता को हम भगवान की शक्ति मान लेते हैं। स्वयं की चमड़ी बचाने के लिए श्रीराम को तो क्या शिवाजी, तिलक, गांधी को भी हम अवतार कहने लगे हैं। वैसे भगवद्गीता के अनुसार हम सभी ईश्वर के अंश से पैदा हुए हैं, अत हम भी अवतार हैं। केवल वह ईश्वरीय शक्ति न हम अनुभव करते हैं, न प्रकट करने के योग्य हैं। उन्होंने वह की है, अत उन्हें अवतार कहना गलत नहीं। पर पूजा की सच्ची विधि यह निर्दिष्ट है कि जिसकी पूजा करना, है वैसा ही बनना—शिवो भूत्वा शिव यजेत्।

अत अध्यात्मरामायण जैसे ग्रंथों के कारण या वर्तमान में प्रचलित कर्मकाण्ड के कारण अन्यथा सोचने की आवश्यकता नहीं। रामायण काल्पनिक उपन्यास नहीं है, न ही वह पंचतंत्र की अथवा ईसप की कथाओं जैसी है। यह प्रतिबद्ध प्रचार-साहित्य भी नहीं है। वह हमारे प्राचीन समाजजीवन की एक वस्तुगत इतिहासमूलक आर्षा है। यह कोई भाट या चारणों के द्वारा केवल प्रशंसा में गाया गया गीत भी नहीं है। वाल्मीकि-रामायण में राम का संपूर्ण वर्णन मनुष्य जैसा है। उसमें अलौ-किकता बहुत ही कम है। अनेक स्थानों पर उनके दोष या दुर्बलताएं भी दिखाई गई हैं। डॉ० बुल्के के अनुसार कथा ऐतिहासिक होने का यही सबसे बड़ा प्रमाण है। अन्यथा केवल भगवान कहकर प्रशंसा के फूल ही गूंथे हुए होते। अध्यात्म-रामायण जहां अध्यात्मप्रधान है, वहां वाल्मीकि रामायण लौकिकताप्रधान है। प्रश्न शैली का है, वस्तुस्थिति के भेद का नहीं।

राम ने स्वयं रावणवध के बाद एकत्र समूह को बताया है कि "मैं मनुष्य हूं और दशरथ का पुत्र हूं—(आत्मानं मानुषं मन्ये रामो दशरथात्मजं।)" इसी प्रकार हरिवंशपुराण में "अहं दाशरथिं रामो भविष्यामि जगत्पति" ऐसा उल्लेख आता है। भागवत में भी मनुष्यलोक के शिक्षण के लिए राम का मर्त्यावतार है)मर्त्यावतार-स्त्विह मर्त्यशिक्षणम्" —ऐसा हनुमान द्वारा कहलाया गया है। हनुमान यहां तक कहते हैं कि वे केवल राक्षसों का वध करने नहीं आये थे। हम लोग न जन्म से, न शरीर से, न बुद्धि से, न वर्ताव में श्रेष्ठ हैं ऐसे वनचरों से वे सख्य क्यों करते? यह चापलूसों का बनाया हुआ ग्रंथ नहीं। सीतात्याग के कारण वाल्मीकि भी राम पर रुष्ट थे। पर उन्हें जब काव्य की प्रेरणा हुई तो उन्होंने नारद के कथनानुसार

समाज को मार्गदर्शक उत्तम चरित्र के नाते यह 'पौलस्त्यवध' नामक ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ में राम का अभियान तथा सीता का महान् चरित्र वर्णित है। (काव्य रामायण कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्। पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रत ॥) यह स्वयं वाल्मीकि का कथन है। वाल्मीकि ने ऋतंभरा प्रज्ञा से जैसा रामचरित्र देखा वैसा लिखा है। राम या रामायण के पात्र वाल्मीकि ने गढे नही हैं।

यह चरित्र लव-कुश ने प्रथम बार अश्वमेध के समय अयोध्या मे एकत्र लोगो के सामने रामायण के रूप में गाया। वे जानते ही नहीं थे कि वे राम के पुत्र हैं और न राम ही जानते थे कि वे दोनों उनके पुत्र हैं। जब राम-द्वारा दोनो को १८००० सुवर्ण-मुद्राए (निष्क) देने की बात की गई तो बच्चो ने स्पष्ट रूप मे मनाकर दिया। वे कहते हैं—

वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ॥ वा. रा० ७।९४।२१

"हम सदा वनमे विचरण कर कदमूल खाने वाले है। उस वन मे हम सुवर्ण का क्या करेंगे ?"

बच्चो की यह निःस्पृहता भी काव्य की स्वतत्र सत्ता का परिचायक है वे किसी सरकार के खरीदे हुए गुलाम नही थे। निस्सन्देह व्याकरण से अनभिज्ञ होने के कारण ही फादर बुल्के जैसे अनेक विद्वानो (भारतीय भी) ने 'कुशलवौ' का अर्थ 'भॉड' किया है। अज्ञान तथा पूर्वाग्रह दोष इन दो रोगो से पीडित होने पर विद्वानो मे अधूरापन रह ही जाता है। "रामायण मीमासा" में पू० करपात्रीजी ने श्री बुल्के के इस प्रश्न का ठीक उत्तर दिया है।

भ्रम फैलाने मे दोनो ही प्रकार के लोग कारण हुए है। श्रद्धावान जो अतिश्रद्ध होते-होते अधश्रद्ध हो जाते है, इनमे साप्रदायिक (विविध सप्रदायो के विचारानुसार) लोग और भी विकृति निर्माण करते है। पाठको को आश्चर्य होगा कि अवतारवाद मे विश्वास करने वाले, तथाकथित आस्तिक हरिद्वार निवासी एक अग्निहोत्री जी राम पर इसलिए रुष्ट है कि उन्होने ब्राह्मण श्रेष्ठ रावण एव उनके वश का नाश किया। उच्चार करने के लिये अयोग्य शब्दो मे वे राम की निंदा कर रहे थे। इसे साप्रदायिकता या सकुचितता न कहे तो क्या कहे ? दूसरे अश्रद्धावान् जो तर्क करते-करते कुतर्क तक पहुच जाते है। परन्तु त्रिगुणात्मक प्रकृति से निर्मित विश्व मे यही सभव है। अत हम रामकथा रूपी वाटिका मे अधिकाधिक शुद्ध तथा राम-जीवन से अधिकतम निकट वाल्मीकि रामायण रूपी वृक्ष की छाया मे बैठकर सत्यासत्य का निर्णय करें—यही भ्रम से बचने का सरलतम उपाय है।

हम देखते है कि भारत का भूगोल, यहा की पारिवारिक, सामाजिक मान्यताए यहा का साहित्य, यहा की भले-बुरे की कसौटिया, आदि सभी पर राम-जीवन की गहरी छाप है। केवल काल्पनिक कथा का ऐसा प्रभाव हो ही नही सकता। इस

आधार पर हम राम-जीवन को या राम से सम्बन्धित जीवनों को निकटता से देखने का प्रयास करें। केवल रामायण के बारे में नहीं, उपर्युक्त दृष्टि अपनाने पर अन्यान्य पौराणिक या औपनिषदिक अनेक कथाओं के सबंध में भी हमें अपना दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता अनुभव हो सकती है। न हुअमूल प्ररोहनि—निर्मूल का प्ररोहण (और वह भी स्थायी) नहीं हो सकता। सर्वदा झूठ के वातावरण में रहने वाले विदेशाभिमुख लोग सत्यदर्शन की कल्पना भी नहीं कर सकते। आर्ष कवि या ऋषि कभी झूठ नहीं लिखते थे। साहित्यकार लोग वैयाकरणी या वकील नहीं होते जो नपे-तुले शब्दों का ही प्रयोग करें वे तो विस्तार से अलंकारात्मक वर्णन करते हैं। संभव है इसमें भी भ्रम फैलते हों।

उपर्युक्त सन्दर्भ में ही प्रस्तुत आलोकपुंज को स्वीकार करने का तथा उससे प्रकाश पाने का प्रयत्न होना चाहिए। श्रद्धावानों द्वारा मंदिरों में बंद तथा अश्रद्धावानों द्वारा कल्पना में उड़ाये हुए रामचरित्र को, सच्चे भक्त अथवा अन्वेषक के नाते अनुकरण का विषय बनाया जाये, यही इस पुंजीभूत प्रकाश का उद्देश्य है। राम हम जैसे थे, हममें से एक थे, यह कल्पना कितनी आत्मविश्वास जगाने वाली है। यदि वे भगवान् थे तो उस परमात्मा से भी कितनी निकटता उत्पन्न करती है। यह उस शक्तिपुंज के साथ निकटता का अनुभव जिस मात्रा में पाठक कर सकेगा उसी मात्रा में परिश्रम सफल माना जायेगा।

तमिलनाडु के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० श्री श्रीनिवास शास्त्री का कहना है कि श्रीराम को प्रारम्भ से भगवान मानते ही उनके गुणों के प्रति, उनके द्वारा उठाये गये कष्टों के प्रति, उनके त्याग या शोक के प्रति हमारी दृष्टि बदल जाती है, हम यह समझने लगते हैं कि यह भगवान के लिए ही संभव है। हम साधारण मानव ऐसा नहीं कर सकते। अतः पाठकों से यह विनती है कि वे, मनुष्य क्या करते हुए भगवान बन सकता है, इस दृष्टि से राम-जीवन की ओर देखें। रावण की तुलना में बाली, सहस्रार्जुन आदि बल में अधिक श्रेष्ठ थे, पर वे भगवान् न बन सके। अतः मानव क्या कर सकता है यह रामजीवन से सीखने की बात है भगवान क्या कर सकता है यह प्रश्न भगवान के संबंध में अज्ञान प्रकट करना है। भगवान क्या नहीं कर सकता? उसे रावण वध करने के लिए या लोक का मनोरंजन करने के लिए इतना बड़ा नाटक करने की आवश्यकता नहीं थी।

यहां मानस-सम्राट् प० रामकिंकर जी द्वारा प्रकट की जिज्ञासा अवश्य विचारणीय है। उनका प्रश्न है कि क्या अनुकरण करने के लिए अन्य कोई चरित्र नहीं है? अतः राम को ईश्वर श्रेणी में ही रहने दिया जाये परन्तु फिर भगवान राम को मानव क्यों मानें? भारत का व्यक्ति राम से जिस भक्तिपूर्ण निकटता का अनुभव करता है, वह अन्यों से नहीं। अतः क्यों न उस राम के ही चरित्र पर ध्यान आकर्षित करें? क्या राम ने अपना जीवन इतना कष्टमय इसलिए बिताया कि हम लोग केवल

उनके नाम का जप करें ? यदि भक्तिमार्ग-प्रदीप भागवत की ही बात मान्य हो तो लोकशिक्षण के लिए राम अवतार हैं, केवल नामजप के लिए नही ।

मुग़ल-साम्राज्य के दिनो मे एक समय आया था कि साधारण मुसलमान ही नही, विदेशी बादशाह भी भारतीय राष्ट्रजीवन की धारा में समरस होने की इच्छा करने लगे थे । इस दृष्टि से रामकथा ने उन्हें भी सर्वाधिक प्रभावित किया । अकबर के आदेश से रामायण का फारसी मे पद्यबद्ध प्रथम भाषान्तर अलबदायुनी ने १५८८ ई० मे पूरा किया। फिर जहांगीर के समय गिरधरदास ने संक्षिप्त पद्यानुवाद किया। उनके बाद मुल्ला मसीही ने रामायण मसीही की रचना ५००० छन्दों मे की जब कि शाहजहा के समय में भी रामायण का पद्यानुवाद हुआ है । औरंग़ज़ेब के काल में भी चन्द्रभान बेदिल ने नया भाषान्तर किया । वैसे सर्वोत्तम उर्दू रचना मुंशी जगन्नाथ खुश्तर ने रामायण खुश्तर नाम से १८६४ मे की है ।

काश, यदि यह क्रम ऐसा ही चलता तो भारत-विभाजन के दुर्दिन न देखने पड़ते। मुल्ला-मौलवियो की अतिरेकी कट्टरता एवं अंग्रेजों की कुटिल नीति के सामने भारतीय नेतृत्व ने घुटने टेक दिये । इनमे पूज्य महात्मा गांधी ही यह साहस कर सके थे कि वे राजनीतिक मंचो पर भी "रघुपति राघव राजा राम" का भजन कराते रहे । उनकी यह धारणा थी कि जैसे मेरे पुत्र के मुसलमान होने पर भी उसका बाप तो मैं ही हू, उसी प्रकार यहां की जनता द्वारा मुसलमान धर्म स्वीकार किये जाने के बाद भी राम और कृष्ण ही उसके पुरखे हैं। आगे चलकर मौलवियो को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने अध्यात्म रामायण का सहारा लेकर मेरा राम परब्रह्म-स्वरूप है, दशरथ पुत्र नही आदि तर्क देना शुरू किया था। परन्तु इस कारण रघुपति, राजा राम, सीताराम अथवा रामराज्य का स्वरूप स्पष्ट करने मे उन्हे कठिनाई होने लगी । यह बाद की बात है ।[1]

प्रगतिशील बुद्धिजीवियो मे अग्रणी माने जाने वाले डॉ० राममनोहर लोहिया ने भी राम को उत्तर से दक्षिण तक पैदल भ्रमण कर भारत को एक सूत्र में बाधने वाला राष्ट्र पुरुष बताया है । वैदिक पुरुषो के बारे मे कुछ कहना कठिन है पर पुरुषोत्तम राम से भारत का राष्ट्र जीवन पूर्ण विकसित रूप से प्रारम्भ होता हुआ दिखाई पड़ता है । इसलिए ज्ञात इतिहास मे वे प्रथम राष्ट्रपुरुष थे, ऐसा माना जाये तो अतिशयोक्ति नही होगी ।

सम्पूर्ण राष्ट्र की श्रद्धा अपनी ओर आकर्षित कर शताब्दियों के लिए राष्ट्र को जीवनरस देने की व्यवस्था देने वाला पुरुष ही राष्ट्रपुरुष कहा जा सकता है। राम अपने जैसे या अपने से भी श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त, वीतराग, लोभ-मोह से परे, त्याग

१. गीताबोध-प्रस्तावना मे गाधीजी ने रामायण महाभारत इतिहास नही; अपितु काल्पनिक ग्रंथ हैं ऐसा प्रथम वाक्य मे ही लिखा है ।

के आदर्श व्यक्ति भाव खड़े कर सके। समाज के हर वर्ग में से उन्होंने ऐसे व्यक्ति खड़े किये। भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, विभीषण, गुह, हनुमान के नाम तो उदाहरणमात्र हैं। पुस्तक पढ़ने समय इस शृंखला का पाठकों को परिचय होता चलेगा। साथ ही समाज में किसी प्रकार के ऊंच-नीच के भेदभाव का प्रकटीकरण भी उन्होंने नहीं होने दिया। इसलिए कहीं उन्होंने मर्यादाओं का पालन किया तो कहीं नई मर्यादाएं स्थापित की। इसीलिए वे 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहलाये।

इस सन्दर्भ में स्वयं में परिपूर्ण, पर साथ ही मानवोचित कोमल भावनाओं से भी ओतप्रोत, हर छोटे-बड़े के पालन-योग्य, परिपूर्ण मानवता का यह रूप इस पुस्तक में प्रकट करने का नम्र प्रयास है। पिता, पुत्र, भाई, सखा, पति, सुहृद, राजा अथवा सेवक यह कैसे बोलें कैसे चलें कौन सी सावधानी रखें, यहां तक कि शत्रु से भी किस ढंग से कहां-कहां, कैसे-कैसे व्यवहार करें, यह सीखने के लिए राष्ट्र पुरुष राम से बढ़कर अन्य चरित्र नहीं हो सकता। मानो श्रीराम वेद-शास्त्र का मूर्त रूप हो। इसीलिए वाल्मीकिजी ने लिखा है कि वेदज्ञान का प्रसार करने के लिए ऋषि ने यह काव्य लव-कुश को पढ़ाया। "वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।" (१ ४ ६)

हृदय की विशालता, मन की उदारता, हिमालय सदृश धैर्य, समुद्र के समान गाम्भीर्य, कर्म में सातत्य एवं दृढ़ता, परदुःखशीलता एवं तन्निमित्त कष्ट उठाने की क्षमता, सत्यसंधता, करुणामयता, कर्त्तव्यनिष्ठता, व्यवहारकुशलता, उत्कृष्ट सेनापतित्व, कूटनीतिज्ञता, कुशल प्रशासन इत्यादि विविध गुणों का मानो राम एक उत्तम समूहालय थे। संभवतः इसीलिए उन्हें ऋषिमुनियों ने भी ईश्वरत्व से विभूषित किया। पर राम ने अपना ईश्वरत्व न तो स्वीकार किया न प्रकट होने दिया। युद्धकालीन कुछ घटनाएं छोड़ दी जायें तो राम-जीवन मानविकता से ही परिपूर्ण है इसीलिए यह मानव के लिए अनुकरणीय है। वास्तव में राम-जीवन मानव की समस्याओं का मानवीय सामर्थ्य के अनुसार निराकरण का अप्रतिम उदाहरण है।

उपर्युक्त विचार को ध्यान में रखकर भगवान क्या कर सकता है, इस नाते राम का जीवन देखने की अपेक्षा मानवीय होने के बाद भी वह कितना ऊंचा उठ सकता है तथा वह परमात्मतत्व को प्रकट कर सकता है, इस दृष्टि से रामजीवन को देखा जाये यह लेखक का नम्र सुझाव है। यही एकमात्र भाव लेकर यह अल्प प्रयास चेष्टा की है। पाठक देखें कि वाल्मीकि द्वारा लिखित राम के जीवन से हम अपने जीवन में क्या उतार सकते हैं। इस ओर पाठकों का ध्यान जा सके यही प्रभुरूप राम के चरणों में प्रार्थना है तथा यह आलेख भी उन्हीं के श्रीचरणों में अर्पित है।

किरण-२

वाल्मीकि

वाल्मीकि गिरि-सभूता रामाम्भो निधि संगता।
श्रीमद्रामायणी गगा पुनाति भुवनत्रयम्।। प्रस्तावना गीता प्रेस रामायण

रामकथा लिखकर विश्व का सर्वप्रथम श्रेष्ठ कवि बनने का सौभाग्य जिस महा पुरुष को मिला वे कौन थे, प्रत्यक्ष राम-कथा प्रारभ करने के पूर्व यह जानना लाभ-दायक रहेगा। उत्तरकाण्ड मे ऋषि वाल्मीकि अपना परिचय स्वय देते हैं कि वे प्रचेता के दसवे पुत्र थे। "प्राचेतसोऽह दशमो पुत्रो दशरथनदन" (७. ९६ १८)। प्रचेताओ का कुछ परिचय भागवत मे मिलता है। राजा पृथु के वश मे चौथी-पाचवी पीढी मे प्राचीन बर्हि राजा के प्रचेता पुत्र थे। प्रचेता के दस पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र वाल्मीकि थे। स्वय शासन न कर प्रचेता भी तपस्या करने चले गये। स्कन्दपुराण के अनुसार वाल्मीकि जन्मान्तर से व्याध थे, व्याधजन्म के पूर्व वे श्रीवत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे, व्याध जन्म मे शख ऋषि के सत्सग से अग्नि शर्मा(जन्मान्तर से रत्नाकर) बने। भागवत मे इनका नाम वालिया भील भी आता है। वे स्वय अपना परिचय श्रीराम को देते है।

मनुस्मृति मे प्रचेता को वसिष्ठ, नारद, पुलस्त्य आदि का भाई लिखा है— (१.३५)। कही पर प्रचेता को ब्रह्मा के पुत्रों मे गिनाया है। वरुण भी प्रचेता कहलाते थे। भृगु भी वरुण के पुत्र थे। अत काव्यनिर्माण मे भार्गवतुल्य होने से वाल्मीकि को भार्गव भी कहते हैं। वामी और वाल्मीकि ऋषि एक ही हैं। ऋग्वेद के कई सूक्तों के द्रष्टा वम्नि ऋषि (वाल्मीकि) हैं। परन्तु आगे चलकर भिन्न-भिन्न पुराणो मे एक-सी कथा मिलती है। सबसे छोटा होने से लाड-प्यार के कारण रत्नाकर की सगति बिगड गई। वह दस्यु (डाकू) हो गया। स्कन्दपुराण की कथा अधिक प्रसिद्ध है। यहा एक बात ध्यान देने योग्य है। कुल की उत्तमता का सबध धधे से न होकर सस्कार मे होना है। समाजोपयोगी सभी काम उत्तम कुल मे शामिल हैं। समाज को हानि पहुचाने वाले काम अकुलीन होते हैं। अपने देश मे सफाई करने वाले स्वय को वाल्मीकि का वशज मानते हैं। यहा तक कि मुसलमान भगी भी अपने को उनका वशज मानते हैं। वे अपने को 'लालबेगी' कहते हैं। इसमे अनुचित कुछ भी नहीं, मजहब बदलने मे पुरखे या राष्ट्रीयता नहीं बदलती।

साराश मे सगति बिगडने से रत्नाकर पारिवारिक धधा छोडकर बटमारी करने लगा। इसीलिए अपने यहा सत्सग पर आग्रह किया गया है। जैसी सगत वैसी आदत। सुगधित पुष्प-वाटिका की मिट्टी भी सुगध देती है तथा नाली के पास की दुर्गंध। एक बार सप्तर्षि भ्रमण करते हुए उस मार्ग से निकल रहे थे, जहा रत्नाकर

लूटपाट करता था। उन ऋषियो को रत्नाकर ने रोका। और कहा कि पास मे जो कुछ हो रख दो। अत्रि ऋषि ने कहा, "हम तो साधु है, फिर भी जो कुछ है तुम्हारा ही है, पर यह काम तुम क्यो कर रहे हो ?"

दस्यु ने कहा, "अपना तथा बाल-बच्चो का पेट पालने के लिए यह लूटपाट करता हू।" ऋषि ने पूछा कि "तुम्हारी कमाई पर जो जिन्दा रहना चाहते है क्या वे तुम्हारे पाप मे तथा उसके लिए मिलने वाले दण्ड मे शामिल होगे?" दस्यु ने कहा, "क्यो नही ? अवश्य होगे।" इस पर अत्रि ने कहा—"हम यहा रुके है, हमारा विश्वास करो और घर जाकर यही प्रश्न पूछकर आओ।" ऋषि की बात पर दस्यु को विश्वास नही हुआ। उसने ऋषियो को पेड से बाधा और घर जाकर बाल-बच्चो से बात की। पत्नी ने कहा, "हमारा जीवन चलाने की जिम्मेदारी आपकी है। हम आपकी कमाई के साझेदार हैं, पाप के नही।" बच्चो ने भी मा की बात दोहराई। दस्यु की आखें खुल गई। वह वापस आया और ऋषियो के पैरो पर गिर पडा।

ऋषि ने उसे राम नाम का जप करने को कहा। ऐसा कहते है कि दस्यु इतना अशिक्षित था कि वह 'राम' का नाम भी ठीक से उच्चारण नही कर सकता था। सच तो यह है कि जिन्होने कभी जप किया है उन्हे यह तो पता है कि जल्दी-जल्दी राम का नाम लें तो वह मरा-मरा हो जाता है। पर नाम जप-शास्त्र मे (अध्यात्म-रामायण मे) शब्द का महत्व कम व एकाग्रता का अधिक है। वाल्मीकि के बारे मे कहा गया है कि एकाग्रता से वे मरा-मरा कहते रहे। धीरे-धीरे खाना-पीना भी छूट गया। केवल वायु-भक्षण कर जहा बैठे थे, वही जप चलता रहा। यहा तक कि चीटियो ने साप जैसी बाबी उनके शरीर पर बना ली पर वाल्मीकि डटे रहे। टस से मस नही हुए।

कुछ वर्ष बाद अपने शिष्य का हाल देखने के लिए अत्रि ऋषि फिर उधर आये तो देखा कि वहा चीटियो-द्वारा पुरुष-आकार का घर बना है और अन्दर से 'मरा-मरा' की ध्वनि आ रही है। (आजकल योग और समाधि के इतने प्रदर्शन होते है कि वाल्मीकि ने इतने दीर्घकाल तक कैसे समाधि लगाई होगी, यह शका नही हो सकती।) अत्रि ऋषि ने शिष्य को जगाया। चीटियो के घर को सस्कृत मे 'वल्मीक' कहते है, अत अत्रि ने उनका नाम 'वाल्मीकि' रखा। कुछ लोगो के अनुसार वाल्मीकि उनके कुल का नाम था। इतना अवश्य है कि अतिशय कठोर तपस्या से ही वे भूत-भविष्य जान सकने वाले ऋतम्भरा प्रज्ञा युक्त ऋषि वाल्मीकि बने। इस प्रकार त्रिकालदर्शी महाकवि वाल्मीकि अमर हुए।

अयोध्या और नैमिषारण्य के बीच मे उनका आश्रम था।[1] लोकापवाद के कारण राम ने सीता को वाल्मीकि के आश्रम के पास छोडा था। वाल्मीकि इस कारण राम पर नाराज से थे। ऐसे ही कुछ दिन बीते। एक शाम वे नदी के किनारे संध्या-वदन कर रहे थे। एक शिकारी ने पास के पेड पर आनन्द ले रहे क्रौंच पक्षी के जोडे को निशाना बनाया। जिससे क्रौंची तीर लगने के कारण नीचे गिर गई। उसको देखते ही ऋषि व्याकुल हो गये। इतने मे क्रौंची के शोक मे पक्षी भी प्रेमवश उस पर गिर पड़ा और मर गया। ऋषि का हृदय टूक-टूक हो गया। एकाएक उनके मुख से करुणावश शिकारी के लिए यह शाप निकला—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्॥ (१.२.१५)

शोक ही श्लोक रूप मे प्रकट हुआ—'शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा (१.२.१८)। वाल्मीकि के जीवन मे इस प्रकार के दु:ख की तीव्रानुभूति प्रथम बार ही थी। उसी प्रकार उनकी वाणी छन्दोबद्ध होकर निकलने की यह घटना भी प्रथम ही थी। उन्हे स्वय पर तथा स्वय के मुख से निकली शापवाणी पर आश्चर्य होने लगा। विचारतरग प्रारम्भ हुआ। आखिर हर घटनाचक्र के पीछे नियति का आशय छिपा होता है। उनके अन्दर का कवि जग रहा था। जब कवि के हृदय की करुणा जागती है तो वह सर्वोत्तम कला की सृष्टि करता है। रामायण का जन्म वाल्मीकि की इसी करुणा मे से हुआ है। राम की प्रशसा या रावण के द्वेष मे से नही। प्रथम सीता के प्रति और बाद मे क्रौच-युगल के प्रति वाल्मीकि मे करुणा उत्पन्न हुई थी। इस करुणा-बीज का ही रामायण रूपी मधुर फल है।

इसी मानसिक स्थिति मे वाल्मीकि की भेंट नारदजी से हुई। मनुष्य को उसके धर्म का ज्ञान कराने वाला नारद है—"नरस्य धर्मो नार तद्ददातीति नारदः"। नारद ही ऐसे ऋषि थे जिन्हे ससार मे कही भी रोकथाम नही थी क्योकि सभी को यह विश्वास था कि यह हमारा अहित नही करेंगे। वाल्मीकि ने नारद से घटना के पीछे का रहस्य एव आगे का कर्त्तव्य पूछा। नारद ने कहा—"काव्य की धारा निरतर प्रवाहित हो रही है अत काव्यरचना करो। वाल्मीकि द्वारा "कोन्वस्मिन्साप्रत लोके?"(ऐसा कौन पुरुष वर्तमान काल मे है जिसका चरित्र काव्यबद्ध किया जाये?) नारद ने कहा—लोकशिक्षण के लिए सर्वोत्तम चरित्र राम का ही है। साथ ही नारदजी ने सक्षेप मे रामकथा सुनाई। इस प्रकार रामायण का प्रारम्भ हुआ।

---

१ अयोध्याकाड सर्ग ५६ श्लोक १६ पर अनेक टीकाकारो ने स्पष्टीकरण किया है कि ऋषि अधिकतर भ्रमण करते थे। रामवनवास के समय उनका आश्रम चित्रकूट के पास था, रामराज्यारोहण के बाद वे गगातट पर सभवत बिठूर के पास आश्रम बनाकर रहते थे। यही लवकुश का जन्म हुआ था। यही वे नैमिषारण्य गये।

उपसंहार

रामायण की ऐतिहासिकता के विषय में और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है। इस आलोक में जो संक्षेप में तर्क प्रस्तुत किये हैं वे कोई अंतिम शब्द नहीं हैं। जिज्ञासु एवं परिश्रमी शोध-छात्र इस ओर आकृष्ट हों इतना ही इस आलोक का तथा अगले दो आलोकों का हेतु है। अलौकिकता के आवरण में लपेटे गये भारतीय राष्ट्रजीवन के ऐतिहासिक प्रसंगों को यथासम्भव लौकिक रूप में समझने का यह एक नम्र एवं लघु प्रयास है। यदि भावी तरुण पीढ़ी इसको स्वीकार कर शोध-कार्य में लगे तो भारत का ही नहीं मानव-मात्र का कल्याण होगा।

जहां तक गोस्वामीजी या अन्य अनेक कवियों आदि का कथन है कि राम की अपेक्षा राम का नाम बड़ा है, इस कथन में राम का अवतारत्व प्रकट होता हो ऐसी बात नहीं है। सभी महापुरुष अपने जीवन-काल में थोड़े ही लोगों को प्रेरणा देकर उठा पाते हैं पर उनके स्वर्गवासी होने के बाद सहस्रों गुना अधिक लोग उनके नाम या चरित्र से प्रेरणा लेकर स्वयं का जीवन पवित्र बनाते हैं। सत्पुरुषों के संपूर्ण चरित्र का स्मरण केवल नाम मात्र से होता है इसलिए उस व्यक्ति से उसका नाम बड़ा मानने में दोष नहीं है। वास्तव में वाल्मीकि जी ने केवल काल्पनिक कथा को महाकाव्य का विषय बनाया हो और इसका जनमानस पर इतना अधिक प्रभाव हुआ हो तो वाल्मीकि जी का ही अवतार माना जाना चाहिये ऐसा एक विचारक द्वारा दिया गया तर्क भी विचारणीय हो सकता है। वाल्मीकि ऋषि का सांगोपांग जीवन-चरित्र किसी एक ग्रंथ में मिलता नहीं है। इधर-उधर से सामग्री एकत्र करने समय इसमें विरोध भी आ जाता है। जैसे वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में वाल्मीकि जी द्वारा नारद ऋषि को किया गया प्रश्न है। इतने विश्व-विख्यात महाकाव्य का प्रारम्भ इस नाते यह प्रसंग विचित्र है ही पर साथ ही लगता है कि यह किसी वयस्य व्यक्ति ने लिखा है। इस सर्ग में तथा अगले दो सर्गों में वाल्मीकिजी को अनेक विशेषण लगाये गये हैं। यहां तक कि उन्हें भगवान वाल्मीकि ऋषि भी कहा है। न वाल्मीकि जी इस प्रकार स्वयं प्रशंसा वाले थे न ही इस ढंग से कोई भी कभी स्वयं के नाम का उल्लेख करता है। विद्वानों से चर्चा करने पर लगा कि संपूर्ण वाल्मीकि रामायण में जैसे अनेक सर्ग प्रक्षिप्त हैं वैसे बालकाण्ड के प्रारंभिक चार सर्ग भी जोड़े गये हैं। संभवतः रामायण का माहात्म्य अनुभव कराने की

सद्भावना से यह किया गया होगा। पर वह वाल्मीकि का लिखा न होने से अधिकृत नही लगता। अत: अनावश्यक अलौकिकता (ब्रह्मा आदि का आगमन) को टाल कर काव्य-स्फूर्ति के बाद सीधा नारद का ही मार्गदर्शन वाल्मीकि जी को प्राप्त कराया गया है। इस महाकाव्य के सदर्भ मे कुछ देशी-विदेशी विचारको के विचार देना अप्रासगिक न होगा। वाल्मीकि जी की सुन्दर रचना पर विमुग्ध होकर प्रोफेसर ग्रिफिथ साहब अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका मे कहते है.—ससार मे काव्य ग्रन्थो की कमी नही; परन्तु आचरण की पवित्रता का वाल्मीकि रामायण मे जिस दृढ़ता, मनोहरता और रसिकता से निर्वाह हुआ है, ऐसा अन्यत्र सुलभ नही। काव्य-ससार मे यही एक ऐसा ग्रथ है, जो मानव-हृदय मे सौदर्यपूर्ण शैली से सत्य प्रेम उत्पन्न करने की शक्ति रखता है।

सच तो यह है कि इसके पाठ मे मानवता और श्रेष्ठता को समलकृत करने वाली सम्पूर्ण गुण-राशि हमारे सामने आ खडी होती है। आदर्श मनुष्य-जीवन की अलभ्य तसवीर (छवि) भी इसके अन्दर हमे राम और सीता के चरित्रो मे मिलती है। मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर कवि ने प्रकाश डाला है और वह भी बड़ी मनमोहक शैली मे। अत रामायण महाकाव्य हर काल, देश और व्यक्ति के लिए लाभकर विद्या की वस्तु बना है।

इस प्रकार न केवल महाशय ग्रिफिथ ही इस पर मुग्ध है अपितु योरोप के अन्यान्य दर्जनो विद्वान् भी इस पर मोहित है। उनके कुछ विचार निम्न प्रकार है जिन पर सभी सहमत है :—

१ इसकी टक्कर का दूसरा ग्रन्थ साहित्य-संसार मे अब तक किसी ने नही देखा।

२ काव्य और नैतिकता का इतना मनमोहक समन्वय अन्यत्र नही पाया जाता।

३ मानवीय कृतियो मे इसका आसन बहुत ऊचा है।

रवीन्द्रनाथ लिखते है "वाल्मीकि रामायण आरती उतारने की वस्तु है। वह आलोचना प्रत्यालोचना से ऊपर की चीज है। इतना ही नही, वाल्मीकि रामायण लोक विस्मयकारक क्षात्र-धर्म का एव अन्यतम जीवित वाड्मय है। फिर इसके क्षत्रियोचित कार्य, वीरोचित स्पर्द्धा, सैनिकोचित सफलता और मनुष्योचित चिकीर्षा के विवरण तो सम्भ्रान्त मानवीयता के भी महतो महीयान कार्य है।"

इतना लिखने के बाद भी कहना पडता है कि "रामायण की हृदय को स्पर्श करने वाली, मस्तिष्क को शान्त रखने वाली, आर्य जाति मे उत्तरदायित्वपूर्ण गौरव की रक्षा करने वाली, बात तो राम की ऐश्वर्य तथा माधुर्यात्मक चरित्र चित्रावली ही है। वही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ज्ञात अज्ञात ढग से उसके सम्पूर्ण सत्य, तथ्य और कवित्व को समुज्ज्वल करने वाली है। किन्तु राम की चारुचरितावली मे भी

राम की सम्पूर्ण विशेषता तो उनके क्षत्रियोचित मानवीय नैतिक मर्यादावाद में बद्ध है। इसी में उनके अवतार की भी सार्थकता है और यही बात मुख्यतः 'रामायण' को रामायण बनाने वाली है। मन्त्रों की माला के प्रत्येक मनके के साथ ही मध्यमा वाणी द्वारा उच्चारित होने वाली राम की गुणगरिमा भी उसी में सन्निहित है।"

इस युग के तपस्वी ऋषितुल्य भाई हनुमानप्रसाद जी पोद्दार लिखते हैं कि "रामायण तथा महाभारत ही वस्तुतः महाकाव्य हैं जिनमें महाकाव्य की सभी विधाओं एवं अंगोपांगों का उपबृंहण किया गया है। राम तथा कृष्ण ने ईश्वरीय अवतार होने के बाद भी पूर्ण मानवीय गुणों को चरितार्थ किया है। अतः इन महाकाव्यों में जहां आध्यात्मिक अनुभूतियों का अथवा ज्ञान का आनन्द रहता है वहां मानवीय जीवन के कर्तव्य, जिम्मेदारियां, नीति, युद्धशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोल, विज्ञान आदि का भी पूर्ण निरूपण मिलता है। मानवीय जीवन का कोई भी अंग इन ग्रन्थों से छोड़ा नहीं है।"

सर्वोदयी श्रेष्ठ विचारक परम श्रद्धेय काका कालेलकर जी ने कहा कि "भारतीय चिंतन के कई आयाम होते हैं। जहां वह राम के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को मान सकता है वहां वह उसकी अवतार शक्ति को पहचानने का भी सामर्थ्य रखता है। इसलिए उसके नाम स्मरण मात्र से आध्यात्मिक उन्नति की संभावना भी मानी जाती है।" विद्वत्श्रेष्ठ डा० राममनोहर लोहिया जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "राम अथवा कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष थे या नहीं इस विवाद में मैं पड़ना नहीं चाहता, क्योंकि भारतीय व्यक्ति उन्हें अपना पूर्वज मानता है। जहां राम ने भारत को (उत्तर से दक्षिण को) अयोध्या से लेकर रामेश्वरम तक जोड़ा है वहां कृष्ण ने पूर्व से पश्चिम तक एकता प्रदान की है। कृष्ण की दिव्य-विजय द्वारका से कामरूप तक रही है। हम लोगों के हृदयों से उन्हें कोई मिटा नहीं सकता है।"

इतने श्रेष्ठ लोगों के विचार देने के बाद राम और रामायण की श्रेष्ठता तथा ऐतिहासिकता आदि के संबंध में अधिक कुछ कहना अनावश्यक है। परिशिष्ट में भी डॉ० बुल्के एवं अरविंद जी के विचार विस्तार से दिये हैं। अब हम मूल ग्रन्थ प्रारंभ करें। आइये अब हम राम की अलौकिक परंपरा (अवतार परंपरा) में भी लौकिक संदर्भ देखने का प्रयत्न आगामी आलोक में करें।

आलोक-२

अवतार-परम्परा

किरण-१

मत्स्यावतार

राम का जीवन भी दो कुल परम्पराओ से प्राप्त होता है। एक है अवतार-परम्परा, दूसरी है सूर्यवंश की परम्परा। भारत के बाहर तथा भारत मे भी कुछ लोग ऐसे हैं जो राम को अवतार नही मानते। यहा हमे पुरानी बात फिर दोहरानी चाहिए। भौगोलिक भारत की निर्मिति से लेकर इतिहास-काल तक सर्वमान्य भूगर्भ-शास्त्रीय, समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से अनेक घटनाए हुई होगी यह सभी स्वीकार करेंगे। ऐसी सभी बातों का सम्बन्ध तृतीय शक्ति याने ईश्वर या उसकी करणी (लीला) से जोडना भारतीय मान्यता है। वर्तमान तथाकथित प्रगतिशील या विदेशी लोग इसे मानें या न मानें पर उसका वैज्ञानिक चिन्तन तो किया ही जा सकता है। हम उन्हे अवतार मानने के लिए बाध्य नही करना चाहते। व्यक्ति का पूरा परिचय पाने के लिए उसका कुल जानना अच्छा ही होता है। व्यक्ति में विद्यमान गुणो की दृष्टि से कोई कडी मिल जाये तो आपत्ति ही क्या है।

विदेशो की बात ठीक है। उनकी मान्यतानुसार उनके यहां भगवान का पुत्र (ईसामसीह) या भगवान का दूत (पैगम्बर) जनता का भला करने के लिए आये थे। भारतानुसार यह देश तथा यहा के लोग भगवान को शायद अधिक प्रिय हो। इसीलिए वह स्वय बार-बार अधर्म का नाश एव धर्म की स्थापना करने के लिए यहा अवतार लेते रहे हैं।

हमे इस बात से मतलब नही कि राम को सभी ईश्वर का अवतार मानें। हमारी इच्छा यह है कि राम मानव के रूप मे हम लोगो के सामने जो आदर्श व्यवहार प्रस्तुत कर गये हैं, हम उस व्यवहार का अनुकरण करें। पर जो गुणसम्पदा राम मे एकत्र थी, वह आकस्मिक नही थी। उसका उनके दोनों कुलो से सम्बन्ध हो सकता है। इसलिए हम दोनों कुलो का विचार कर रहे हैं।

जैसा कि हमने कहा है, प्रथम कुल, अवतारो का कुल है। भारत मे दस अव-तार प्रमुख माने जाते हैं। यदि आज के जीवशास्त्री उसे उनकी जीवविकासक्रम

की कसौटी पर कसे तो दशावतार का क्रम लगभग ठीक बैठता है। जल में से पृथ्वी का निर्माण यह सिद्धांत तो अब वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। स्वाभाविक ही प्रथम जीव भी जल में ही पैदा हुए जो अवयवरहित थे। इनका विकास होकर जो जल और पृथ्वी दोनों पर रह सकते हों ऐसे जीव पैदा होने लगे। तीसरा प्रकार भूमि पर रहने वालों का, पर पानी-मिट्टी (कीचड) पसन्द करने वालों का है। चौथी श्रेणी पशुमानव की है। पांचवें वर्ण में लघु मानव छठा केवल शारीरिक बल वाला मानव और, सातवें राम तक पूर्ण मानव की सृष्टि हुई। आठवां पूर्णावतार कृष्ण का प्रसिद्ध है। यही क्रम मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन परशुराम से राम तक का है।

इस अवतार-परम्परा को एक अन्य दृष्टि से भी समझा जा सकता है। प्रागैतिहासिक काल में आज का भौगोलिक भारत नहीं था। भारतीय वैदिक अथवा पौराणिक धारणाओं के अनुसार वर्तमान मन्वन्तर के पूर्व भी प्रलय हुआ था। भूगर्भशास्त्रवेत्ता भी—आज से डेढ़ पाने दो करोड वर्ष पूर्व बहुत बडी उथल-पुथल (भूकम्प) पृथ्वी पर हुई—ऐसा मानते हैं। इसी काल में हिमालय तीसरी बार ऊपर उठा है। इस तीसरे उत्थान में ही शिवालिक श्रेणियां (पहाडियां) ऊपर उठी हैं। ईरान के प्राचीन ग्रंथ "जेंद अवेस्ता" से भी इस बात की पुष्टि होती है। वे उसे बर्फीली आंधी कहते हैं। (उस समय की पृथ्वी के इस भाग का मानचित्र हमने अन्त में दिया है)। उस समय हिमालय बहुत नीचा था। उसके ऊपर तिब्बत एवं पामीर का पठार और उत्तर-पश्चिमी एशिया था। बीच में समुद्र था। दक्षिण में दण्डकारण्य की प्राचीन दृढ़ चट्टानें थीं। इनका संबंध पूर्व में आस्ट्रेलिया से अमेरिका तक तथा पश्चिम में अफ्रीका तक था।

वेदों का पाठ जिस नदी के किनारे होता था, वह सिन्धु नदी उस समय विद्यमान थी। उस काल में अनेक बार देवासुर संग्राम हुआ तथा बार-बार मार खाकर असुर लोग (मय, माली, सुमाली, माल्यवान आदि) भाग-भाग कर, अफ्रीका, अमेरिका तक पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति की स्थापना की। इसके प्रमाण अमेरिका तथा अफ्रीका में अब भी मिलते हैं। (पढ़ें-हिन्दू अमेरिका, लेखक भिक्षु चमन लाल।

अन्तिम प्रलयकाल में जब हिमालय (शिवालिक पर्वत) पुनः ऊपर आया तो बीच का तेथीस समुद्र पूर्व पश्चिम की ओर खिसक गया तथा उत्तर और दक्षिण का इलाका मिलकर वर्तमान जम्बूद्वीप भारत बना। इसी प्रक्रिया में दक्षिण भारत से आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका का भी सम्बन्ध टूटा। समुद्र हटने से जहां कच्छ से बंगाल तक रेगिस्तान का निर्माण हुआ वहां उत्तरी दक्षिणी भाग जुड़ने से एक नये भूप्रदेश का जन्म हुआ। यहां के समाजों का मिलन करने में, प्रलय के दिनों में, उत्तमोत्तम प्राणी, वस्तुएं, बीज, ऋषि-मुनियों आदि की रक्षा करने में मत्स्यावतार

सहायक हुआ। यह प्रथम अवतार के सबध मे मान्यता है। भौगोलिक दृष्टि से भारत की निर्मिति से मत्स्यावतार का सबंध स्पष्ट ही है। पारसी ग्रथ "जेंद अवेस्ता" मे भी ऐसी ही कथा मिलती है।

कुछ मान्यताओं के अनुसार आर्यों के चुने हुए लोग रक्षा के लिए कश्यप समुद्र क्षेत्र मे 'आर्याणाम् बीजम्' नामक स्थान पर ले जाये गये। आजकल इसे 'अजर-बेजान' कहते हैं। यह स्थान एशियन टर्की मे आता है। प्रलय की गतिविधि शान्त होने पर जब वे उधर मे भारत लौटे तो उसे ही आर्यों का भारत-आगमन कहा जाने लगा। वस्तुत आर्य ही सुरक्षा के लिए उधर गये थे और बाद मे लौटे हैं। भौगोलिक उथल-पुथल के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन कैसे होते है, इतना ऊपरी वर्णन से समझ मे आना सरल होगा। इसी बात को हमारे यहा मत्स्यावतार के रूप मे वर्णित किया गया है।

चाक्षुप मन्वन्तर के अन्त मे भावी मनु राजा सत्यव्रत जब नदी पर सध्या कर रहे थे, उस समय उनकी अजलि मे एक मछली आई। उसने उसे अपने कमण्डलु मे रखा। वह कमण्डलु को व्याप गई। घर जाकर राजा ने उसे कुए मे डाला तो वह उसे भी व्याप गई। तब राजा ने उस मछली को पुन. नदी मे डाला तो उसे वह जगह भी कम पडने लगी। तब उसे राजा द्वारा समुद्र मे छोडा गया। राजा का मन कितना पर दु ख-सवेदनशील होना चाहिये इसका यह उदाहरण था। मत्स्य प्रसन्न हुआ और उसने आने वाले प्रलय मे सत्यव्रत को सावधान किया। साथ यह भी बताया कि मानवी उत्तम बीजो से लेकर सभी प्रकार की औषधियो के बीजो का सग्रह कर वह नौका मे बैठें तथा नौका को मेरु पर्वत सम मत्स्य के सीगो मे बाध दे। प्रलय शान्त होने पर उनकी रक्षा हो जायेगी तथा वे पुन. बसाये जायेंगे। राजा सत्यव्रत ने ऐसा ही किया। भागवत पुराण के अनुसार पृथ्वी ही नौका थी तथा भगवान उसके आश्रय बने (२ ७ १२) यही सत्यव्रत आगे चलकर मनु कहलाया।

ईश्वरीय लीला के नाते यह कथा समझना सरल है, पर इसमे से अन्य अर्थ भी निकलता है। दक्षिणी भागो के मिलने से समुद्र तट के निवासी, जो अच्छे तैराक हो सकते थे, सहायक हुए। कई बार ऐसे विशिष्ट गुणो से युक्त लोगों को उन गुणो का मुख्यत. प्रतिनिधित्व करने वाले जीव का नाम दिया जाता है। यह दिल्ली-आगरा के आसपास का प्रदेश 'मत्स्य-प्रदेश' कहलाता था। स्वाधीनता के बाद भी जब राज्यों का एकीकरण एव विलय हो रहा था, तब भरतपुर-धौलपुर आदि मिलाकर 'मत्स्य प्रदेश' बनाया गया था। परन्तु जहा भौगोलिक भारत का निर्माण हुआ वहा मत्स्यावतार के माध्यम मे नवीन समाज का सघ राष्ट्रीय स्वरूप बनना प्रारम्भ हुआ, इतना सकेत तो मत्स्यावतार से प्राप्त हो ही सकता है। अब डेढ करोड वर्ष पूर्व से पाच हजार वर्ष पूर्व (महाभारत काल) तक का इतिहास आजकल

के इतिहास जैसा लिखने का सामर्थ्य किन-किन इतिहासकारों में हो सकता है, इसका निर्णय बुद्धिमान पाठक ही कर सकते हैं, अतः जो उपलब्ध है उसके संकेतों को समझने में ही बुद्धिमानी है।

किरण-२

कूर्मावतार

दूसरा अवतार कूर्मावतार है। उस समय तक भौगोलिक दृष्टि से भारत एक भूप्रदेश बन चुका था। प्रलय के दिनों में उत्तमोत्तम वनस्पति, औषधि, वन्य जीव एवं अच्छे संस्कारी पुरुषों के बीज सुरक्षित रखे गये थे। अब पुनः प्रजा बढ़ने लगी। त्रिविष्टप को वाल्मीकि ने भी देवलोक कहा है। दक्षिणापथ में अर्ध संस्कृत दैत्य थे। देवासुर-संग्राम चल ही रहा था। जब ज़मीन अलग थी तब तो होता ही था, अब ज़मीन भी जुड़ गई। एक नई स्थिति पैदा हो गई। संघर्ष करते-करते सम्पर्क तो होता ही है। उनसे सम्बन्ध भी उत्पन्न होते हैं। दोनों ओर कुछ समझदार तत्त्व भी होते हैं। समझदार लोगों में यह विचार बढ़ रहा था कि क्या यह संघर्ष रोककर, शान्ति के लिए प्रयास हो सकता है? मानो शान्ति की भूख जग रही थी।

पर पहल कौन करे? दोनों ओर से विचार आया, परस्पर मिलकर वार्तालाप करें। विचार-मंथन करें। दो समाज शताब्दियों से टकरा रहे थे। संघर्ष के कारण शत्रुता के, कटुता के संस्कार गहराई तक पहुँच चुके थे। पर शान्ति की इच्छा भी तीव्र हो रही थी। फिर भी परस्पर विचार-विनिमय के लिए मध्यस्थ चाहिये। और वह मध्यस्थ निष्पक्ष हो तथा मंथन का आधार भी दृढ़ हो यह आवश्यक था। साथ ही मंथन की प्रक्रिया भी लचीली होनी आवश्यक थी। इन्हीं तीन सूत्रों के आधार पर मंथन सफल और दोनों को न्याय का विश्वास दिलाने वाला हो सकता था। पौराणिक शैली में इसे ही समुद्र-मंथन कहा गया होगा।

सतत संघर्षरत समाजों में मिलन का आधार ढूंढ़ना सरल बात नहीं थी। मध्यस्थता के लिए एक होने की, एक होकर मिलकर रहने की, इच्छा जिसे 'राष्ट्र-भाव' कहते हैं, उसे ही आधार माना गया। राष्ट्रहित के लिए व्यक्ति और व्यक्ति समूहों के हितों का त्याग अथवा समर्पण आवश्यक होता है। भारत में अपनी संपूर्ण इन्द्रियों को सिकोड़कर समर्पण-भाव का प्रतीक कछुआ माना गया है। साथ ही कछुए की पीठ भी इतनी कड़ी होती है जो रयी को धारण कर सके। जब मथना चालू होता है तो रयी नीचे धसने लगती है। परन्तु इस राष्ट्रभावना द्वारा आलवित रयी ठीक काम करने लगी। इस राष्ट्रभाव को (परस्पर समर्पण भाव) जाग्रति को कच्छप अवतार, रयी को मेरु पर्वत तथा लचीली मृदु रस्सी को 'शेषनाग' कहा गया।

हमेशा जब दो संघर्षशील गुट विचार करने बैठते हैं तो पहले बहुत कटुता उत्पन्न होती है। उसे ही विष कहते हैं। यह विषपान कौन करे? जो सरल है, निःस्वार्थी है, सदा सबका कल्याण चाहने वाला है, उसे 'शिव' कहा गया। उसने विषपान कर लिया तथा उस विष को गले से नीचे नही उतरने दिया। वे नीलकंठ बन गये। इस मथन में से अब भिन्न-भिन्न उपयोगी रत्न निकलने लगे। अन्त में उसी मे से अमृत निकला। बीच मे सुरा भी निकली। देवताओं ने सुरा स्वीकार की। वे सुर कहलाये। दैत्यों ने उसे अस्वीकार कर दिया, वे असुर कहलाये।

यहां यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शब्दों की उत्पत्ति किन्हीं और आधारों पर होती है। उनके अर्थ, उनके नामधारी लोग कैसा व्यवहार करते हैं, उस पर निर्भर करते हैं। सुरासेवन से देव भोगी तो बने पर वे दुष्ट नहीं थे। सुरासेवन न करने पर भी दुष्ट स्वभाव के कारण असुर दुष्ट और पापी कहलाये।

अमृत निकलने के बाद की भी अलग-अलग अनेक कथाएं हैं। रामकथा से उसका संबंध नहीं, अत: हम उसका वर्णन नहीं करेंगे। किष्किंधाकांड में हनुमान को उसकी शक्ति का स्मरण दिलाते हुए जांबवान ने अपनी शक्ति का भी कुछ वर्णन किया है। इस समय जांबवान अमृत बनाने में सहायक औषधि-संचय की बात बताते हुए कहते है कि—

"तथा चौषधयोऽस्माभिः संचिता देवशासनात्।
निर्मथ्यममृतं याभिस्तदानीं नो महद् बलम्॥" ४.६६.३३

इसमे अमृत औषधियों से बनाया जाता था, इतना अर्थ स्पष्ट होता है।

पर यह अमृत-कुम्भ प्रारम्भ मे गरुड़ ले उड़े थे। भागते समय चार स्थानों (प्रयाग, उज्जैन, हरिद्वार, नासिक) पर गरुड़ ने विश्राम किया था। इन्हीं स्थानों पर प्रति बारह वर्ष बाद कुंभ अर्धकुंभ के विशाल मेले लगते हैं। हम भारतीयों के लिए यह विचारणीय बात है। विचारणीय बात इसलिए है कि किसी काल मे सहस्रों वर्ष पूर्व की घटना या इसके जैसी कोई घटना घटी होगी, अत: इन्हीं चार स्थानों को इतनी प्रसिद्धि देने का क्या कारण रहा होगा?

क्या यह अपवाद स्वरूप है? अथवा क्या किसी एक पौराणिक लेखक की कल्पनामात्र है? या इन स्थानों के राजा कोई विशेष प्रभावी थे? ये चारों स्थान देश के (एक ही ओर) उत्तर पश्चिमी हिस्से में हैं। सारा भारत इससे घिरता नहीं। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से छह स्थान केवल महाराष्ट्र में हैं। पर यह निर्णय किसी महाराष्ट्रीय का नहीं। चिन्तन की ऐसी पद्धति भारत में स्थान-माहात्म्य की गहराई में जाने के लिए नई पीढ़ी को आह्वान करती है। केवल कपोल-कल्पना कहकर टाल देना विवेक का परिचायक नहीं माना जा सकता।

कूर्मावतार की बात को ही लें। भारत के प्राचीन ग्रंथों में विविध प्रकार के वर्णन मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजा की रचना करने वाला इसलिए

कूर्म नाम ऐसा उल्लेख आता है।

स यत्-कूर्मो नाम। एतद्रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत्।

यत् असृजत अकरोत् तत् यत्करोत् तस्मात् कूर्मः।" श ब्रा ७ ५ १ ५

असृजत् मानी अकरोत्—अर्थात् करने के कारण ही उसका नाम कूर्म हुआ। अब इस अर्थ को हम जीवशास्त्र मे बिठायें या दर्शनशास्त्र के अनुसार विचार करें ? पर विचार तो करना ही होगा। इस दृष्टि से इसी प्राचीन रूपक का आज के वैज्ञानिक मानस को समझ मे आने योग्य संकेत यहा बताने का प्रयास किया है।

कूर्मावतार का कार्य पूर्ण हो चुका था। वैमनस्य के स्थान पर परस्पर सामजस्य तथा सौमनस्य उत्पन्न होने लगा था। राष्ट्र-भावना के विकास मे यही आधारभूत बात आवश्यक होती है। परस्पर विश्वास, सामजस्य, सब प्रकार का कष्ट या बोझ अपने ऊपर लेकर जो फिर भी शात, अविचल रहता है, वही यह करा सकता है। यह कार्य कूर्म ही कर सकता था और इसीलिए भारत, राष्ट्रीय समाज-निर्माण मे एक कदम और आगे बढा।

किरण-३

वराह अवतार

राम के पूर्व के अवतार क्रम मे प्रथम अवतार के समय भारत भौगोलिक रूप मे एक हुआ था। उत्तम बीजो की रक्षा होते हुए इस समय एक समाज बनाना प्रारभ हुआ। दूसरे अवतार ने परस्पर सौहार्द एव परस्पर पूरकता बनाने मे सफलता प्राप्त की। फिर भी भारत के अड़ोस-पड़ोस मे दुष्ट प्रवृत्ति के लोग थे। कश्यप(कैस्पियन)समुद्र के पास एक दैत्य-परिवार बढ रहा था। वह बहुत पराक्रमी था। भारत जैसे देश का विकास सहन करना उन्हे सम्भव नही था। वे दो भाई थे। एक का नाम हिरण्याक्ष तथा दूसरे का नाम हिरण्यकशिपु था। हिरण्याक्ष 'का अर्थ जिसकी आखे सोने पर लगी हो। उसी ने भारत पर पहला आक्रमण किया।

भारतीय राष्ट्रजीवन मे यही से शत्रु-मित्र भाव का प्रारभ हुआ। प्रारम्भ मे हिरण्याक्ष को पर्याप्त सफलता मिली। उसने असख्य अत्याचार किये। यहा के सीधे व भोले लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। ऐसा लगा मानो पृथ्वी रसातल को जा रही हो। समस्या थी, इसे बाहर कौन निकाले ? मिट्टी, पानी मिलाकर कीचड बनती है। कीचड मे खेलना, आनन्द लेना वराह को पसन्द है। उसे ऐसी शक्ति मिली होती है कि वह अपने नथुने मे कीचड़ को मथता है। मथते-मथते पानी नीचे रह जाता है और मिट्टी ऊपर आती है। एक और भी अर्थ है। गध मिट्टी का गुण है। नाक से सूघ-सूघकर पृथ्वी का पता लगाने का काम (जल मे) वराह ही कर सकता था। इस प्रक्रिया के कारण ही हिरण्याक्ष को मारने वाला वराह

अवतार माना गया। हिरण्याक्ष के वध से प्रथम पराया आक्रमण समाप्त हुआ।

यह कार्य कश्मीर के जिस क्षेत्र मे हुआ, वह वराह-मूल (बारामूला) कहलाता है। अन्य पुराणो के कथनानुसार भी जल से पृथ्वी ऊपर लाने का काम वराह करते है। हिरण्याक्ष उनके मार्ग मे बाधा डालता है, अत. उसका वध किया जाता है। परन्तु यह प्रारम्भिक अवतार अधूरे थे, इसका प्रमाण भी पुराणो मे मिलता है। पृथ्वी को ऊपर लाने के बाद वराह को अहकार हो गया। अह यह बडी बुरी बीमारी है। जरा-जरा सी बात मे व्यक्ति को अहकार होता है। वराह ने तो पृथ्वी का उद्धार किया था अत' अह स्वाभाविक था। वराह अनियत्रित होने लगे तो अन्त मे शिव ने अपने शूल से वराह का वध किया।

वैदिक सहिताओ का वर्णन वैज्ञानिकता लिये है। प्रजापति वराह होकर जल मे निमग्न है। पृथ्वी को खोदते हुए उसने अन्न देखा। पृथ्वी अपना रूप विवृत्त करती है। प्रारम्भ मे पृथ्वी अन्न का अवरोधन करती है। वह फैली इसलिए पृथ्वी तथा अभवत हुई, इसलिए भूमि कहलाई—(का स.८ २४) पृथ्वी पहले एक जमीन मात्र थी। वराह ने उत्खनन किया अत वह उसका पति माना गया। रसातल से पृथ्वी का उद्धार करने वाले वराह का वर्णन शतपथ ब्राह्मण मे भी है (१४.१.४ ११)। पहले केवल सलिल था। ईश्वर ने वायुरूप विचरण किया। सलिल मे पृथ्वी को देखा। वराह रूप से ऊपर लाया। विश्वकर्मा रूप से मार्जन किया। प्रवाग हटाकर पृथ्वी को फैलाया। अत. प्राणियो की आधारभूत धरिणी बनी। (तै स. सायण भाष्य ७।७।५।१) प्रजापति ने तय किया। सलिल के मध्य दीर्घनाभि के अग्रभाग मे पद्म था। प्रजापति के नाल से नीचे की वस्तु का विचार आया। उसने वराह रूप से गोता लगाया। नाल के समीप की गीली मिट्टी ऊपर लाया। उसे पद्मपत्र पर फैलाया। जल से पृथ्वी के निकलने की प्रक्रिया को जानने के जो इच्छुक है वे भागवत के तीसरे स्कध का अध्ययन करें। कठोपनिषद (८।२।४) मे भी इस प्रक्रिया का विवरण है।

किरण-४

नरसिंह अवतार

"वज्रनखाय विद्महे। तीक्ष्णदंष्ट्राधीमहि।
तन्नो नरसिंह प्रचोदयात्।" (सं भा. परिशिष्ट १०।१।६)

हम वज्रनख वाले भगवान को तत्त्वत जानते है। तीक्ष्ण दष्ट्र वाले नरसिह का ध्यान करते है।

हिरण्याक्ष के वध के कारण दैत्य-कुल मे हाहाकार मचा। उसकी मा दिति,

तथा पत्नी रुषाभानु और उसके शकुनि आदि आठ पुत्रों को हिरण्याक्ष के भाई हिरण्यकशिपु ने सांत्वना दी। उसने भी आत्मा की अमरता, देह की नश्वरता, समझाने का प्रयास किया। परिवार को सान्त्वना देकर उसने सभी दैत्य, दानव एकत्र किये। सभी को आज्ञा दी—जहां-जहां धर्म-कार्य, यज्ञ होते हैं, गोपूजा होती है, वेदों का अध्ययन होता है, उन स्थानों को नष्ट करने के लिए भारत पर आक्रमण करें। हिरण्यकशिपु ने कहा कि यही बातें भारत के निवासियों की चेतना का आधार हैं। इनके नष्ट होने मात्र से वे निर्बल बने रहेंगे और हम वहां सदा राज्य-भोग सकेंगे।

उसने स्वयं तपस्या द्वारा विशेष बल अर्जन किया मानो अमर हो गया हो। वरदान पाकर अष्ट दिक्पालों तथा देवलोकों पर उसने धावा बोल दिया। इन्द्र, कुबेर आदि स्थान छोड़कर भाग गये। फिर नर-लोक पर उतरा। जहां-जहां आस्तिकता दीखती थी, उसे बलात् समाप्त करवाया। "मैं ही ईश्वर हूं, मेरा ही नाम लो, अन्य किसी का जप करने की आवश्यकता नहीं। मैं चाहूं तो आप लोगों को सुख या दुःख दे सकता हूं अतः मुझे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें।" —ऐसा उसका आदेश था।

सर्वत्र प्रवेश पाने वाले नारदजी ने हिरण्यकशिपु के घर में ही भेद पैदा किया। सोचा—पिता दुष्ट है तो पुत्र को हाथ में लो। हिरण्यकशिपु की पत्नी से नारद ने मित्रता की। प्रह्लाद गर्भ में था। तभी नारद उसकी मां को विष्णुभक्ति का उपदेश करते थे, अतः जन्म होने पर प्रह्लाद आयु के साथ विष्णुभक्ति की ओर बढ़ता चला गया। शिशु-जगत् के लिए यह विचारणीय बात है। बच्चे की पढ़ाई या संस्कार भारतीय मान्यतानुसार गर्भ से प्रारंभ होते हैं, नर्सरी-कक्षा से नहीं। जैसे मां के विचार होंगे, पेट के बच्चे पर उनका वैसा ही प्रभाव होता है। मां की इच्छाएं, कल्पनाएं बच्चे पर संस्कार छोड़ती हैं।

प्रह्लाद के नेतृत्व में नई पीढ़ी ईश्वरभक्त बनने लगी। हिरण्यकशिपु का सिंहासन घर में ही डावांडोल होने लगा। उसके निजी सेवकों के अतिरिक्त जनता में कोई उसके साथ नहीं था। एक सीमा तक ही जनता दबाई जा सकती है, अवसर पाकर वह सिंहत्व प्रकट करती है। इसे भी नरसिंहत्व कहा जा सकता है। हिरण्यकशिपु की स्वयं ईश्वर होने की चुनौती जनता द्वारा स्वीकार की गई। परिणामस्वरूप पत्थर, खम्भे, पेड़ जैसे निर्जीव बने, समाज में से हिरण्यकशिपु को चीरफाड़ कर मारने वाले नरसिंह निकल आये। "यही भगवान की लीला का रूप माना गया। जिन-जिन देशों में शासन दुष्टता की इतनी सीमा पर उतरता है, वहां जब राष्ट्रचेतना जगती है तो ऐसा ही नरसिंहत्व प्रकट होता है। दुःशासक को क्या दंड मिलेगा, किस प्रकार मारा जायेगा इसका कोई नियम नहीं पर अन्त ऐसा ही होना है।"

यह राष्ट्र निर्माण के प्रारम्भ का काल था। जनरोष नरसिंह के रूप मे प्रकट हुआ। परन्तु हिरण्यकशिपु को मारने के बाद वह नरसिंह भी स्वय अनियन्त्रित हो गया, जैसे वराह हुआ था। कुछ का कहना है कि अन्त मे प्रह्लाद के द्वारा प्रार्थना करने पर नरसिंह शान्त हो गये। परन्तु 'शरभ उपनिषद' के अनुसार भगवान ने शरभावतार (गेंडा) धारण कर नरसिंह को शान्त किया। प्रारम्भिक अवस्था मे अवतारो की सीमित उपयोगिता रही है। राष्ट्रजीवन के एक विशेष अश को जागरूक करने का काम उन्होंने किया है। यही इन दोनो अवतारो से सिद्ध होता है।

किरण-५

वामनावतार

त्रीणिपदा विचक्रमे। विष्णुगोपा। अदभ्य।
अतोधर्माणिधारयन। (ऋ. स १. २२. १४)
वामनो हि विष्णुनास (श ब्रा १ २. ५ ५)

जगत के रक्षक ने धर्म की धारणा कर पृथ्वी मे पाद प्रक्षेप कर बली से ३ पद भूमि दान लेकर इद्र को दी।

भारतीय राष्ट्र-जीवन बढने लगा था। भूगोल के नाते देश एक बना था, समाज के नाते भी एक बना था। बाह्य आक्रमणो का प्रतिकार प्रारम्भ हुआ। यहा तक कि विदेशी शासक तथा उसके घरवालो को भी आत्मसात् किया गया। फिर भी प्रह्लाद का पुत्र विरोचन पूर्णत चार्वाकपथी नास्तिक निकला। उसका पुत्र बलि अवश्य ही यज्ञसस्कृति का पुरस्कर्ता था। परन्तु वह बहुत महत्वाकाक्षी था। यहा की सस्कृति के बाह्याग स्वीकार कर वह अपना शासन नरलोक मे ही नही, देवलोक पर भी जमाने का विचार रखता था।

भारत की मान्यता बन रही थी कि शासन का दायरा सीमित होना चाहिये। वास्तव मे समाज द्वारा शासन चलाया जाना चाहिये। शासन-द्वारा समाज का हाका जाना (चलाया जाना) समाज को दास बनाता है, फिर कोई भी शासन करे। भारतीय समाज को स्वय के जीवन के हर एक अंग पर बलि का शासन या नियंत्रण स्वीकार नही था। राज्यक्रांति के लिए किशोर पीढी को आगे आना पडता है। हो सकता है, तरुणो की पीढी-दो पीढी का तात्कालिक रूप मे अकल्याण हो, परन्तु स्थायी राष्ट्रहित, धर्मरक्षा, समाजकल्याण के लिए यह त्याग अपेक्षित है। जहा के तरुण-किशोर अपने स्वार्थ का ही विचार करने वाले होते हैं, व्यक्तिकेन्द्रित होते हैं, वहा न तो राजक्रान्ति सभव होती है, न समाजक्रान्ति हो सकती है। ऐसे तरुण अपने परिवार के साथ भी अधिक काल निष्ठावान नही रहते।

उस काल मे वामन के नेतृत्व मे किशोर दल तैयार हुआ। बलि के आधिपत्य मे जो-जो स्थान थे, जो-जो मुख्यालय थे, उन पर उन्होंने कब्जा कर लिया। बलि

स्वयं इन्द्र बनने का स्वप्न देख रहा था, अत उसके अन्तिम यज्ञ में पहुंचकर वामन ने उसे वचनबद्ध करवाया। सब ओर नाकेबन्दी हो चुकी थी। बिना कारण देवराज्य के लिए नर-लोक और दैत्य-लोक का संघर्ष बढ़ाकर विश्वव्यापी रक्तपात करने की अपेक्षा बलि ने भारत के बाहर नया राज्य बनाकर शान्ति से रहना स्वीकार किया। वह वचन दे चुका था। भारतीय संस्कृति की छाप उस पर कुछ तो थी ही उसके सभी महत्वपूर्ण स्थान वामन के हाथ में थे। उसके पास चारा भी नहीं था। अत स्वभाव एवं व्यवहार से दुष्ट न होने के कारण उसने वामन की बात स्वीकार की।

उसके गुणों व योग्यताओं का उपयोग भारत-बाह्यक्षेत्र में करने की योजना बनी। स्वयं वामन उसके साथ उसका मार्गदर्शन एवं रक्षण करने गये। नब्बे प्रतिशत हिन्दू जनसंख्या वाला 'बाली' नामक देश यह उसी बलि का बसाया हुआ है। सप्त पातालों में यह भी एक था, इतना ही यहां बताया जा सकता है। अन्यत्र जो भारत का मानचित्र दिया है उसमें कुछ कल्पना हो सकेगी।

किरण-६

परशुराम

वामन अवतार तक भारतीय समाज एक समष्टि रूप धारण कर चुका था। सभी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार काम करते हुए समाज-धारणा में योगदान करने लगे थे। शासन का सर्वरूप बनना, भारतीय मानसिकता के विपरीत था। शासन सार्वभौम तो हो पर सर्वप्रभुत्व सम्पन्न न हो। वह अपनी मर्यादा में रहकर समाज पुरुष का सेवक बना रहे। इस मर्यादा का स्वभाव से साधु होने के बाद भी दैत्यकुल के संस्कारों के कारण बलि द्वारा उल्लंघन हो रहा था। अत वामन ने उसे योग्य दिशादर्शन किया।

पर समाज एक गतिशील इकाई होती है। उसमें कोई भी स्थिति सदा एक सी नहीं रहती। अत सन्तुलन बिगड़ने लगा। क्षत्रियों के हाथ में दण्डशक्ति थी उस दण्डशक्ति से समाज रक्षा की अपेक्षा वे उसे पीड़ा पहुंचाने लगे। समूह विशेष की तानाशाही प्रारम्भ होने लगी। समाज के शेष सभी अंग तथा सज्जन प्रकृति के क्षत्रिय भी त्राहि-त्राहि करने लगे। यहां तक कि ऋषि-पत्नियां एवं कन्याएं भी सुरक्षित न रह सकीं तथा उनका सतीत्व भी संकट में आ गया। यह उन्हें शाही समूह, सहस्रार्जुन के नेतृत्व में गुण्डागीरी करता था। ऋषि जमदग्नि जैसे तेजस्वी ब्रह्मज्ञ से कामधेनु प्राप्त करने के लिए उसने ऋषि का भी वध किया। प्रतिक्रिया-स्वरूप परशुराम ने सर्वप्रथम सहस्रार्जुन को मौत के घाट उतारा। इसीलिये उनका अवतार हुआ था।

देश भर मे इस सहस्रार्जुन की छत्रच्छाया मे ऐसे सहस्रो गुण्डे पल रहे थे। फिर क्या था ? परशुराम का परशु सिद्ध ही था। देश भर मे घूम-घूमकर सभी अत्याचारी, अनाचारी अथवा दण्डशक्ति के कारण अहंकारी बने हुए गुण्डों का परशुराम ने नाश प्रारम्भ किया। अनेक वर्ष परशुराम ने मानो चैन ही न लिया। यह बात सही नही कि परशुराम ने भारतभूमि नि क्षत्रिय की। यदि ऐसा होता तो दशरथ, जनक, काशी-नरेश आदि कैसे जीवित दिखाई देते ? ये केवल जीवित ही नही थे, वह तो राज्य करते थे, शासन चलाते थे। यह एक पौराणिक शैली ही है जिसके अनुसार ऐसी घटना एकान्तिकता के साथ वर्णन की जाती है। परशुराम ने यहीं तक पर्याप्त विवेक का परिचय दिया और जो समाज कण्टक क्षत्रिय था, उसे ही उसने नष्ट किया। इसे ब्राह्मणो और क्षत्रियों मे सत्ता के लिए सघर्ष कहना अनुचित होगा।

परशुराम बचपन से ही बडे आज्ञाकारी थे। एक बार उनकी माता रेणुका को नदी पर से लौटने मे देरी हो गई। वह चित्रसेन गन्धर्व की जलक्रीडा देखती रही। ऋषि के कार्य के लिये जल लाने मे देरी हुई। जमदग्निजी को ऋषि होने पर भी सात्विक क्रोध आया। इसलिए ऋषि ने अपने पुत्र परशुराम को कहा कि मन से पातिव्रत्य भग होने के बाद भी तुम्हारी माँ जीवित क्यो है ? परशुराम तो केवल पिता की आज्ञा समझते थे। वे उसे ही धर्मपालन करने वाला कर्म समझते थे। उन्होंने तत्काल पिता की आज्ञा को मूर्त रूप दे दिया। जिस स्थान पर रेणुका का सिर काटा था वह स्थान यमुना किनारे आगरा जिले मे रेणुकुटा नाम से प्रसिद्ध है। वहा आज भी प्रतिवर्ष मेला लगता है। यहा जमदग्नि रेणुका का मन्दिर भी है। अब वह स्थान केवल काल्पनिक है अथवा कोई न कोई घटना वहा घटी है यह निर्णय शोध-छात्र स्वय कर सकते है।

वैसे सभी बातें सदा फौजदारी कानून की सीमा मे नही आती। विवेक अथवा स्वतंत्र चिन्तन के लिए भी कुछ सीमायें डालनी पडती हैं।अन्यथा किसी भी समाज, परिवार के या सेना के जीवन मूल्य या अनुशासन आदि का कोई अर्थ नही रह जायेगा। कभी कभी एकान्तिकता खटकती है। पर वही अन्यत्र सब स्थानों पर धारणा का सम्बल बनती है। राम-चरित्र मे वाल्मीकि ने स्वय इस पर विशद चर्चा की है।

परशुराम के त्वरित आज्ञा पालन से ऋषि जमदग्नि प्रसन्न हुए और उन्होंने परशुराम से वर मागने को कहा। इस पर परशुराम ने पिता से मा को जीवित करने की प्रार्थना की। ऋषि जमदग्नि ने अपने तपोबल से रेणुका को जीवित किया। सम्पूर्ण कथा को पढने से अनेक प्रेरक अर्थ निकलते है। जो समाज धारणा की दृष्टि से मार्गदर्शक भी है।

परन्तु परशुराम के आतंक के परिणामस्वरूप सज्जन क्षत्रिय दबे-दबे से रहने

लगे। परशुराम अपना कार्य समाप्त समझ कर महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने चले गये। परिणामस्वरूप दुष्ट राक्षसों का प्रभाव एवं अत्याचार बढ़ने लगा। अच्छे लोग, बलशाली होने पर भी, अकेलापन अनुभव करते रहते हैं और दुष्ट थोड़े होने पर भी मिलजुल कर सभी को कष्ट देते रहते हैं। यही बात उस समय होने लगी। इसी में से आगे होने वाले राम अवतार के लिए आवश्यक वातावरण बनता गया इसका पूर्ण विवरण आगे की सम्पूर्ण कथाओं में आने ही वाला है। यहां परशुराम के जीवन की अन्तिम घटना का उल्लेख करना पर्याप्त रहेगा।

राम के पूर्व के अवतारों में विविध प्रकार की आंशिकता (अधूरापन) थी, यह हमने देखा है। परशुराम में अत्याकाग्निता थी, दुष्टदमनकारी बल था पर इन्हीं गुणों में अहंकार आ गया। जब अपने में कोई बराबरी वाला दिखता नहीं तो मैं ही सब कुछ हूं, ऐसा लगने लगता है। इसी का वर्णन भगवान कृष्ण ने गीता के सोलहवें अध्याय में 'दैवी आसुरी सम्पद्' के नाते किया है। बल का नशेवाला कहता है—'कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया' अर्थात् मेरे जैसा कौन बलवान है? परशुराम ने सुना कि उनका दिया हुआ शिव-धनुष राम ने तोड़ा है, अतः उनसे न रहा गया वे राम की लौटती बारात में विघ्न बनकर पहुंचे।

उस समय राम, भरत व लक्ष्मण को छोड़कर सभी बाराती घबराये थे। परशुराम ने डांटकर पूछा कि धनुष किसने तोड़ा ? एक और परशुराम का क्रोधयुक्त वार्तालाप और दूसरी ओर श्रीराम की धीर गम्भीर परन्तु निर्भय वाणी। शीघ्र ही परशुराम को अपना मर्यादित सामर्थ्य तथा राम का असीम शक्तिमान रामत्व समझ में आया। उन्हें अपनी भूल भी ध्यान में आई। अतएव वास्तव में अपना अवतार कार्य समाप्त हुआ, यह जानकर परशुराम फिर महेन्द्र पर्वत पर तपश्चर्या करने चले गये। इस सम्पूर्ण घटना की चर्चा कुछ विस्तार से हम राम-जीवन के अन्तर्गत करेंगे ही। उपर्युक्त छह अवतारों में आंशिकता के होते हुए भी राष्ट्रजीवन की रचना में उनका विशेष योगदान तथा राम के लिए उपलब्ध राष्ट्रीय पार्श्वभूमि पाठकों के ध्यान में आ सकती है। अवतारकुल का वर्णन करने के पीछे यही आशय था। इस पृष्ठभूमि में राम का व्यक्तित्व, क्यों और कैसे प्रभावी बना तथा कैसे अवतार में उभर कर सामने आया, यह हम सरलता से समझ सकेंगे।

उपसंहार

इस आलोक मे पाठको ने राम की अवतार परपरा का सक्षिप्त वर्णन पढ़ा। अवतारवाद मे विश्वास न करने वाले भी इतनी बात तो स्वीकार करेंगे कि भारतीय इतिहास का प्रारंभ सहज में आंकलन योग्य विषय नही है। वास्तव मे पौराणिको की बौद्धिक एव साहित्यिक प्रतिभा तथा कला पर आश्चर्य होना चाहिए कि उन्होने महस्राब्दियो का इतिहास अपनी रोचक शैली मे ग्रथरूपो मे गूंथ कर रखा है। आज के विदेशी मानसिकता वाले इतिहासकार भले ही उन्हे पिछडे या जगती समझें, परन्तु भूगर्भ-शास्त्रीय उथल-पुथल से लेकर पूर्ण पुरुष राम के जीवन तक का दीर्घकालीन घटनाक्रम आज की पीढ़ी तक पहुचाने का श्रेय उन्ही पौराणिको को है जो हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं। अतः उपसहार के प्रथम चरण के नाते हम उन पुराणकारो को नम्र अभिवादन करना चाहेंगे।

इस आलोक की प्रथम किरण मे हमने पढा कि मुख्यत दशावतार ही प्रसिद्ध है। परन्तु भिन्न-भिन्न पुराणो के अनुसार वे २४ या इससे भी अधिक हैं। भारतीय मनीषियो को जहा-जहा उच्चता, उदात्तता, दिव्यता अथवा अतिमानवीयता का दर्शन हुआ वहा-वहा उन्हे उस सर्वशक्तिमान का स्मरण हो आया, अतः उन्होने उस घटना में अवलोकित मछली हो या हाथी, कछुआ हो या पक्षी उसे उस शक्तिमान का प्रतिनिधि माना। यदि प्रचारतत्र के सातत्य के प्रभाव से मानवकृत साधारण ताजमहल की प्रशसा करते दर्शक अघाते नही हैं तब फिर विविधता से परिपूर्ण, सौंदर्य से ओतप्रोत, चमत्कार स्वरूप इस ब्रह्माण्डनिर्माण मे ईशलीला का सज्जनो को यदि बार-बार स्मरण आता हो तो उसमें दोष क्या है?

हम केवल आलोकदायी सूर्य का ही विचार करें। उसके होने से मानवजीवन को होने वाला लाभ तथा न होने से हानि का अनुमान लगाना भी कठिन होगा। थोडा सा मूल्याकन करने के बाद भी सूर्य, वायु, आकाश, पृथ्वी, जल आदि पच महाभूतो के निर्माण के सामने नतमस्तक हुए बिना नही रहा जाता। इसलिए भारतीय मनीषी इन सभी को परमात्मा के प्रतिनिधि या प्रत्यक्ष परमात्मा मानने मे सकोच नही करते। अत सम्प्रदाय निरपेक्ष होकर बुद्ध हो या ऋषभ देव, महावीर हो या कपिल, सभी श्रेष्ठ पुरुष सनातनी पुस्तकों मे भी परमात्मा के अवतारो मे ही माने जाते हैं। इन पुराणो के लेखनकाल मे यदि मुहम्मद साहब अथवा ईसा

मसीह पैदा होते या उनका प्रभाव अनुभव होता तो भारतीय पुराणों में उन्हें भी ईश्वरावतार श्रेणी में डालने में सकोच न किया जाता।

भारतीय लेखकों की प्रेरणा ईश्वरीय होने से वे छोटे (सकुचित) मन वाले नहीं थे। न ही वे मैं सही और सब गलत मानने वाले दुराग्रही या प्रतिबद्ध प्रचार-कीय ढाचे वाले थे। सर्वत्र परमात्मा का दर्शन या साक्षात्कार करना यह भारतीय मनीषा की विशेषता है। इसीलिए यहा के ऋषियों-मुनियों ने इस राष्ट्र के निर्माण मे सहायक होने वाली सभी घटनाए, भगवान की लीला या योजना देखी फिर वह घटना भौगोलिक हो या सामाजिक, राजनैतिक हो या सास्कृतिक पुनरुत्थान की हो। इस सदर्भ मे पाठक अवतार परम्परा की ओर देखें। यह प्रार्थना है।

फिर हम भगवान एव उसके अवतारो मे विश्वास करें न करें, इस आलोक मे वर्णित भिन्न अवतार अन्य दृष्टिकोण से भी समझे जा सकते है। इन अवतारो का सम्बन्ध भारतीय राष्ट्र जीवन मे घटी किसी-न-किसी विशेष महत्वपूर्ण घटना से दिखायी देता है। सब मतवादी लोग उसे जीवशास्त्र के विकास क्रम के अनुसार समझ सकते है जिसमे अवयवहीन प्राणी से पूर्ण मानव तक जीव का विकास-क्रम दिखाया गया हो। वर्तमान वैज्ञानिक उपकरणो के अभाव मे भी सहस्रो वर्ष पूर्व भारतीय मनीषियो ने यह भूगर्भ शास्त्रीय, समाजशास्त्रीय, जीवशास्त्रीय, विकासक्रम पहचाना तथा वर्तमान पीढी तक पहुचाया इसलिए विश्व उनका ऋणी रहेगा।

यह ठीक है कि पौराणिको ने यह सब जानकारी रूपक एव अतिशयोक्ति अलकारो का प्रचुर उपयोग कर सजाकर रखी है। फिर भी सच्चा स्वाभिमानी भारतीय तो इन मनीषियो के इस साहस एव प्रतिभा के कारण गौरव का अनुभव करेगा तथा ऐसे अपने पूर्वजो के कारण स्वय को धन्य मानेगा। शेष ससार जबकि अधयुग में भटक रहा था उस समय भारतीय मानव सब दिशाओ मे प्रगतिमान एव प्रगल्भ सिद्ध होकर विश्व मे सर्वोत्तम समाज एव सस्कृति के निर्माण मे लगा था, यह क्या गौरव की बात नही है?

इसी प्रकार प्रह्लाद तथा वामन की घटनाए जहा अत्यन्त प्रभावी है वहा वह आज की युवा पीढी के लिए अत्यन्त प्रेरक भी है। किसी समाज मे सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक क्रान्ति की वाहक युवा पीढी ही हुआ करती है। वे यदि हिसाबी (Calculating) मनोवृत्ति के हो तथा सदा लाभ-हानि का विचार करने वाले हो तब तो वे क्रान्ति के अग्रदूत नही बन सकते। एक-दो पीढियो को स्वय की तरुणाई तथा भविष्य निछावर करना पडता है, तभी जाकर इच्छित परिवर्तन या क्रान्ति सभव होती है। जीवन की सुरक्षा तथा समाज मे परिवर्तन साथ-साथ सभव नहीं होते। अकर्मण्य जीवन में वैभव केवल दिवास्वप्न हो सकता है। हजारो को स्वय का जीवन धोखे मे डालकर जूझना पडता है। इसी से लाखो करोडो के जीवन की सुरक्षा प्राप्त हो सकती है। ऐसा परिवर्तन युवा पीढी के

उत्सर्ग पर निर्भर होता है। जहा-जहा युवक इन भावो मे कम पड़ते हैं, वहा-वहा कुछ प्राप्तव्य सभव नही होता। इस पृष्ठभूमि मे प्रह्लाद द्वारा स्वय के पिता के शासन, अनुशासन का विरोध तथा वामन द्वारा बलि के राज्य को उलटने के प्रसग निश्चित ही प्रेरक, मार्गदर्शक एव अनुकरणीय माने जा सकते है।

इसी सदर्भ मे परशुराम का पिता की आज्ञा का पालन नवीन पीढी को तर्कहीन तथा अप्रस्तुत लग सकता है। परन्तु मानव-जीवन केवल तर्क पर आधारित नही होता। उसे धारणा के लिए कुछ व्यवस्थाए नियम देने होते हैं तथा वे किन्ही परिस्थितियो मे एकातिक होकर पालन करने पड़ते है तभी कोई समाज या सेना अनुशासन मे रहकर प्रभावी बन सकती है, अतः ऐसे एकातिक उदाहरण अनेक कठिन प्रसगो मे समाज के मार्गदर्शक बनते हैं, जिससे समाज की धारणा होती है। इस विषय मे वाल्मीकिजी ने रामजीवन के प्रसग मे अयोध्या-काण्ड में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

वैसे हमने अवतार-परंपरा के सबध मे भिन्न-भिन्न किरणो मे आवश्यक स्पष्टीकरण देने के प्रयत्न किए हैं। भारत मे विद्यमान भागवत के प्रसिद्ध टीकाकारो के प्रवचनो मे अधिकाश अवतारो को रूपको के रूप में ही समझाने का प्रयास दिखाई देता है। अत अन्य अर्थ निकालने के लिए मन को तैयार करना इतना सरल नही। फिर भी सभी कथाओ द्वारा केवल 'ब्रह्म सत्य' जगन्मिथ्या सिखाने के लिए ही पुराणकारो ने अपनी सपूर्ण प्रतिभा काम मे लायी हो ऐसा लगता नही है।

इन कथाओं का कोई-न-कोई भौतिक-जीवन से सबध अवश्य होगा, इतनी बात मन मे उत्पन्न हो जाए तब भी कथा का रूपक भी हमे समाज-जीवन के प्रति उत्तरदायित्व का अनुभव करा सकेगा। उदाहरण के लिए हिरण्याक्ष या हिरण्यकशिपु लोभ के अवतार बताए जाते हैं। रावण काम का तथा शिशुपाल क्रोध का अवतार माना गया है, जिन्हे मारने के लिए राम और कृष्ण एक-एक अवतार हुए, पर लोभ को मारने के लिए वराह और नरसिंह के दो अवतार हुए। पौराणिकों के इस प्रकार स्पष्टीकरण रहते हैं।

अब इस कथा को ऐसा ही मानें तब भी भारतीय राष्ट्र-जीवन के प्रारम्भकाल मे कूर्मावतार मे जैसे-तैसे समाज रचना हुई थी और उसी मे लोभ के आक्रमण से समाज का समष्टि-जीवन तहस-नहस होने लगा। इस लोभ से ही समाज का नाश होता है। इस सबध में लेखक को यहा तक लगता है कि प्रह्लाद से परपरा बदलने पर भी उसके पोते बलि मे सात्विकता के साथ इन्द्र के सिंहासन का लोभ ही आया, जिस कारण वामन अवतार हुआ और सहस्रार्जुन का गौ का लोभ ही उसकी मृत्यु का कारण बना। इस दृष्टि से लोभजन्य परस्पर वैमनस्य से समाज की रक्षा करने के लिए ईश्वर के समान शक्ति प्रकट करनी पड़ती है, यही उसमें से

अर्थ निकलता है। वैसे नीव का भरण करने के लिए यज्ञ याने आहुति या 'न मम' की भावना वाली विधि प्रारम्भ हुई। यह जिस दिन होता है वही श्रेष्ठ दिन अर्थात् वराह माना जाता है वर (श्रेष्ठ) अह् (दिन)। ऐसा भी एक अर्थ निकाला जाता है।

अवतारों को पाठक किसी भी रूप में मानें, पर उनसे केवल व्यक्तिगत मोक्ष के विचार के स्थान पर समाज के प्रति उत्तरदायित्व का भाव-निर्माण हो तो पिछली शताब्दियों में विद्यमान भारतीय समाज का दिशाभ्रम दूर होकर वह पुनरपि योग्य दिशा प्राप्त कर सकेगा। शर्त यह है कि अपने पूर्वजों के संस्कारों के आधार पर चिन्तन एवं व्यवहार करें। विदेशी विचार एवं संस्कारों से प्रभावित वर्तमान मानसिकता में पौराणिकों के समाज धारणा के शुद्ध भाव भी विकृत रूप धारण कर लेते हैं।

उदाहरण के लिए परशुराम का संघर्ष। यह ब्राह्मण-क्षत्रियों के बीच का सत्ता-संघर्ष था और इसका बदला श्री राम ने ब्राह्मण वर्गीय रावण का कुल सहित नाश कर चुकाया ऐसे कुतर्क पूर्ण अर्थ निकालना स्वस्थ की स्वतन्त्र बुद्धि के नहीं, अपितु वाम बुद्धि के ही परिचायक होते हैं। ऐसे कुतर्कों से बचें और जिन भाव-भावनाओं के आधार पर कथाओं के माध्यम से इस समाज की धारणा की गयी, जिससे वह सहस्राब्दियों के आघातों में टिक सका, उस साहित्य-संपदा का सही मनन-चिन्तन हो यही पाठकों से अपेक्षा है।

'कल्याण' (सौर आश्विन सं० २००८ के अंक) में डा० श्री सुदर्शनसिंह का एक महत्त्वपूर्ण लेख, 'संस्कृतियों की जननी' प्रकाशित हुआ था। उस लेख के अनुसार यहूदी लोगों के पूर्वज 'युदा' की सन्तान थे, जो वास्तव में यदुवंश है। तातार मोक, 'श्रय' के वंशज हैं, श्रय पुरूरवा के पुत्र हैं। यदु के पौत्र, 'हुय' से चीनी वंश चला, राजा सगर ने काशीवारों को पल्ली नगर बसाने को कहा। उसी से पल्ली स्थान—फिलस्तीन बना। आजकल की संकुचित राष्ट्रीयता की भावना से कोई राष्ट्र अपनी वास्तविकता से कितना ही बच कर भाग जाना चाहे, सत्य छिपता नहीं। यहां यह भी ध्यान रखना होगा कि इस्रील अथवा आर्येल एक नगरी का नाम था, जहां यहूदी ईसा के पूर्व डेविड ने प्रथम प्रवास किया था। आर्येल तथा आर्यावर्त में कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता।

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति के विस्तार तथा प्रभाव की जो बातें लिखी हैं, उन पर सबसे कम विश्वास आज के पढ़े-लिखे भारतीयों का है। मनु आदि पुरुष थे, जिनकी हम सन्तान हैं। पाताल लोक में उस समय भी बहुत विकसित सभ्यता थी और जिस प्रकार सत्रहवीं अठारहवीं सदी में इंग्लैंड से निर्वासित लोग उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में आकर बस गये, उसी प्रकार हमारे देश से भी जिन राक्षसों (आततायियों) को निकाला जाता था, वे पाताल लोक चले जाते थे

"यूयं प्रयात पाताल यदि जीवितुमिच्छथ"। भगवती ने दुर्गासप्तशती में शुम्भ-निशुम्भ के लिए कहा है। दक्षिण अमेरिका मे, मय देश (मय दानव) की (लगभग १ लाख वर्ष पुरानी) सभ्यता का पता अब चला है, उसने ससार को अचम्भे मे डाल दिया है। सूर्य भगवान का विशाल मन्दिर, १८०० फुट ऊंचा शिवलिंग, वस्त्र, पठन-पाठन सामग्री, विशाल भवन, दस्तकारी, पच्चीकारी, वास्तुकला यहा तक कि पचांग भी प्राप्त हो चुका है।

१८वी सदी की बात है। दो सौ वर्ष पूर्व की तुर्की नौ-सेना के प्रधान पीरी रईस के सामान के साथ तोपकापी के राजभवन मे बहुत पुराने मानचित्र (नक्शे) बरामद हुए थे। इसी के साथ दो बड़े मानचित्र भूमध्यसागर तथा वर्तमान, मृत समुद्र के क्षेत्र के थे। ये दोनो नक्शे बर्लिन के सरकारी अजायबघरों मे रख दिये गये, पर इन विचित्र नक्शो को कोई समझ नही पाता था। अमेरिका के नौ-सेना विभाग को यह काम सौंपा गया। तब से बराबर अध्ययन होने के बाद वह पुराना नक्शा पूरी तरह पढ़ने मे आ गया और सन् १९५२ में यह निश्चित हो गया कि यह प्राचीन मानचित्र लाख-दो लाख वर्ष पूर्व के ससार की एकदम सही तसवीर है उसमे भारत, मिश्र, एशिया के मध्य पूर्व के देश, जैसे ईरान, अरब और यूरोप सब एक साथ मिले हुए है। अफ्रीका से लेकर चीन तक भूमि एक है। सयुक्त राज्य अमेरिका तथा दक्षिण अमेरिका उतना बडा नही है, जितना आज है। उनका काफी अश पानी मे था। उनकी शक्ल से ही वे पाताल लोक के प्रतीत होते हैं।

इस पृष्ठ-भूमि मे इस आलोक के प्रारम्भ मे दिया गया प्रलयपूर्व का मानचित्र देखें तो भारतीय पौराणिको की तत्कालीन जानकारी के बारे मे हमारा विश्वास बढ जायेगा। इस संदर्भ मे पुराणो के आधार पर और भी कुछ तथ्य यहा दे रहे हैं। परलोक से सामान्यतः हम लोग उन्ही अदृश्य लोको को समझते है, जहां देव, पितर, गन्धर्वादि रहते है, परन्तु हिन्दू-सस्कृतिनिष्ठ आधुनिक विद्वानो की लौकिक दृष्टि मे ये सब समाज इहलोक के ही हैं। इस मत के अनुसार ब्राह्मण ही देव, क्षत्रिय ही मानव, वैश्य ही पितर, भूत-प्राणी ही भूत, हिमालय के अधिवासी ही गन्धर्व है ? कुछ दूसरे वैदिक वैज्ञानिक, प्राङमेरु भू को ही त्रिलोक मानते हैं। तदनुसार दक्षिण समुद्र से हिमालय पर्यन्त पृथ्वीलोक, हिमालय से उत्तर और अलताई पर्वत तक वायु लोक अथवा अन्तरिक्ष और उसके भी उत्तर की तरफ साइबेरिया मे ऐन्द्र लोक या स्वर्गलोक बनता है।

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें अध्याय मे सत एकनाथ ने विस्तार से टिप्पणी की है। उसमे भागवत के अनुसार नारायण का निवास बद्रीनाथ के पास बताते हुए लिखा है कि इस कारण त्रिविष्टप याने इन्द्र के राज मे (नारायण के तप के कारण) भय छा गया था। इन्द्र को लगा कि इस कारण मेरा लोक और वहा का विलासी जीवन समाप्त हो जायेगा। इस आधार पर वाल्मीकि ने त्रिविष्टप को देवलोक

कहा है यह ठीक ही लगता है। उपर्युक्त विभिन्न मान्यताओं के कुछ आधार अवश्य होंगे। विस्तार से उनका यहां विचार करना संभव नहीं है।

पाताल लोक संबंधी पौराणिक प्रमाण और भी स्पष्ट रूप से मिलते हैं। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार ब्रह्माण्ड मे ७ ऊर्ध्वलोक तथा ७ अधोलोक है। इन अधोलोकों को बिलस्वर्ग भी कहा जाता है। इनका वैभव ऊर्ध्व लोकांतर्गत स्वर्ग की अपेक्षा कुछ अधिक ही वर्णित किया जाता है। अतः यहां सुखोपभोग मे कोई प्रत्यवाय नही है। अर्थात् इनमे रहने वाले जीव सदा आनंद मे रहते है। यहां के सुखोपभोग एवं सौंदर्य-विलास को असुरों ने कपट विद्या तथा मायावी शक्तियो से बहुत समृद्ध किया है।

इन भूगर्भगत सात स्तरों मे से अतल मे मयासुर पुत्र बल स्वामी है। वितल मे हाटकेश्वर शंकर भवानी के साथ युग्म भाव से रहते है। सुतल सुप्रसिद्ध बलि राजा का स्थान है। तलातल मे मयासुर का राज्य है। महातल मे क्रोधवश नामक सर्प समुदाय का निवास है। रसातल मे दैत्य और दानव रहते है। पाताल मे नागो के अधिपति रहते है। विष्णु भागवत ५/२४ तथा शतपथ ब्रा हिंदी विज्ञान भाष्य भाग ३।

अर्थात् भारत के दक्षिण पूर्व तथा पश्चिम की दिशाओं मे समुद्रपार की भूमि इसलिए पाताल कहलायी गयी हो यह कल्पना भी विचारणीय है। इस ढंग मे इस विषय मे जितना अधिक शोधकार्य किया जा सके उतनी अधिक जानकारी उपलब्ध हो सकती है। पाठकों को केवल कल्पना आ सके तथा जैसा कि आक्षेप होता है कि सब गपोड़बाजी है, ऐसा नही है इस दृष्टि से अल्प संकेत मात्र किये है। इस पृष्ठभूमि मे सूर्यवंश परंपरा का आलोक दे पढ़ते समय पाठकों को अधिक आनंद आ सकेगा। इसी प्रकार १४वें अध्याय के छठे श्लोक का स्पष्टीकरण करते हुए संत एकनाथ ने कहा है कि मानव के सिर एवं वनचर के शरीर वाले रीछ कहलाते थे। तथा मानव की मुखाकृति तथा श्वापद जैसा शारीरिक ढांचा वाले वानर या किंपुरुष कहलाते थे। मूल भागवत में आगे स्पष्ट उल्लेख है "किंपुरुषाणां हनुमान।"

आलोक-३

सूर्यवंश

किरण-१

मनु वैवस्वत

भगवान के अवतारो के रूप मे भारत मे प्रसिद्ध कुलपरम्परा का हमने द्वितीय आलोक मे निरीक्षण किया। वस्तुत अवतार तो चौबीस या इससे भी अधिक माने जाते हैं। वैवस्वत मनु के पूर्व मन्वन्तरो के सस्थापक स्वयभू मनु थे। उनके कुल मे जैनियों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भी हुए हैं। साख्यशास्त्र के प्रणेता कपिल मुनि भी अवतारो की गिनती मे है। कृष्ण के बाद हुए बुद्ध को भी अवतार माना है। ईसामसीह तथा मुहम्मद पैगम्बर, भारतीय पौराणिकों के समकालीन या उनके पूर्व पैदा होते और पौराणिको को जानकारी होती तो शायद इन श्रेष्ठ पुरुषो का नाम भी अवतारों की सूची मे जुड जाता। यहा के पौराणिक या इतिहास लेखको के मन छोटे नही अपितु उदार रहे हैं।

जहा-जहा दिव्यत्व है, श्रेष्ठत्व है, अलौकिकता अथवा असामान्यता है भारत मे उसे सर्वशक्तिमान् की शक्ति का ही परिचायक माना जाता है। ताजमहल की प्रशसा करते हुए हम नही थकते। पर हम जरा सृष्टि की विविधता, व्यापकता, अनेकगुणात्मकता, उसका सौन्दर्य, उसमे प्रकट सूर्य, चन्द्र, समुद्र, हिमनग जैसे शक्ति स्रोतो का विचार करें। इन सबका निर्माण, नियमन, नियत्रण कराने वाली शक्ति की क्या कोई बराबरी कर सकता है? हम ऐसी शक्ति के सामने नतमस्तक ही हो सकते हैं। इसीलिए जहा-जहा दिव्यत्व या भव्यत्व, श्रेष्ठत्व या विराटत्व, ऊचाई या गहराई देखी वहा-वहा भारतीय मानस ने ईश्वरत्व की विभूतिभाव की, मान्यता की, पूजा की। इसी पृष्ठभूमि मे भारत की भौगोलिक रचना, समाजरचना, सस्कृति-विकास आदि का लौकिक रूप होने पर भी दीर्घ अवधि एव उपलब्ध अल्प-सामग्री के आधार पर पिछले आलोक मे अवतार परम्परा का वर्तमान सन्दर्भ मे यथासम्भव वर्णन किया गया।

अब इस आलोक मे हम राम की पूर्णत लौकिक, सूर्यवश की परम्परा प्रारम्भ कर रहे है। वैसे इस कुल का प्रारम्भ भी ब्रह्मा से ही होना है, यह कहना आज के हिसाबी लोगों की दृष्टि मे खटकने वाली बात है। पर यह केवल मान्यता का प्रश्न

है। प्रथम मनुष्य आदम या ब्रह्मा से हुआ यह अपनी-अपनी मान्यता का विषय है। भारत में ब्रह्मा को सृष्टि का जनक कहते हैं। राम हो या रावण, आखिर सभी के ब्रह्मा ही मूल पुरुष थे। ब्रह्मा के मानसपुत्र मरीचि भी थे और पुलस्त्य भी। मरीचि के कश्यप, कश्यप के विवस्वान और विवस्वान के मनु, (विवस्वान याने सूर्य उनके पुत्र मनु) इसलिए यहा से वैवस्वत मनु का आख्यान प्रारम्भ होता है। मनु की बहिन मया का विवाह राक्षसकुल मे हुआ। उसी कुल की एक कन्या कैकसी का विवाह पुलस्त्य के कुल वाले युवक विश्रवा से हुआ जिसका पुत्र रावण था।

सत्ययुग मे यहा का समाज शासकरहित था अर्थात् समाज स्वयशासित था। महाभारत के शान्तिपर्व मे इनका वर्णन है। यहा राजा नही था। दण्ड देने योग्य कोई अपराधी नही था, अत दण्ड देने वाला भी कोई नही था। सभी लोग अपनी-अपनी जिम्मेदारी के अनुसार अपने कर्त्तव्य का या धर्म का पालन करते थे। स्नेह से रहते थे, अत धर्मपालन करने से, धर्म उनकी रक्षा करता था। जब लोग धर्म का पालन नही करते, कर्त्तव्य का पालन नही करते, स्नेह से नही रहते तो आपस मे टकराते है, अरक्षित हो जाते है। महाभारत का वर्णन इस प्रकार है —

न राज्य न च राजासीत्, न दण्डयो न च दाण्डिक.।
धर्मेणैव प्रजा सर्वा: रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥

यह काल्पनिक नही अपितु यथार्थत एक शासकहीन समाज-अवस्था थी।

पर यह भी सच है कि गतिशील जगत् मे शासन-रहित समाज की जो स्थिति ऊपर वर्णित है वह अधिक काल तक नही रह सकती। तामसिकता बीच-बीच मे जोर मारती है। मोह, लोभ आदि के साथ वासना भी जाग्रत होती है। उसी से ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ पैदा होते है। यह मह ही क्रोध का कारण एव सघर्ष की जड बनता है, अत सज्जनता कमजोर पडने लगती है। सज्जन बने रहना कष्टसाध्य होता है। अत लोग राजसिक जल्दी बनते है तथा धीरे-धीरे तामसिक बनते जाते है। इसलिए कालातर मे शासन की आवश्यकता अनुभव होने लगी।

सब लोग मिलजुल कर पितामह के पास गये। पहले जो अराजक था वह अच्छे अर्थ मे था। शासकहीन धर्मराज्य की स्थिति का वह परिचायक था। पर शासन-हीनता मे से गैरजिम्मेदारी, अधार्मिकता बढने से अराजकता का अर्थ अनाचारिता, अत्याचारिता, निरकुशता हो गया। सबने पितामह से शासक की माग की। ब्रह्मा ने ऋषितुल्य सत्यव्रत को राजा बनने के लिए प्रेरित किया। यही सत्यव्रत बाद मे वैवस्वत मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। मनु के कारण ही प्रजावृद्धि, अन्य वृद्धि तथा परस्पर स्नेह वृद्धि हुई थी। अत सब उन्हे मानते थे और उनका आदर करते थे।

फिर भी मनु ने राज्यशासन ग्रहण करना अस्वीकार किया। कारण पूछने पर मनु ने बताया कि जो गलती करेगा उसे मुझे दण्ड देना पडेगा उसमे मेरे मन को क्लेश भी होगा तथा मुझे पाप भी लगेगा। ब्रह्माजी ने उन्हे समझाया कि तुम्हे पाप

सत्यव्रत मुकुट अस्वीकार करते हुए 'निस्पृहता की परम्परा' (नीचे भावी मनू) —
"पितामह ! मैं शासक नहीं बनना चाहता ! अपराधी को दण्ड देने से उसे तथा मुझे भी पीड़ा होगी।"

नहीं, पुण्य मिलेगा। समाजहित में दुष्ट को दंडित करना, पुण्यकार्य है, पाप नहीं। इस प्रकार प्रत्यक्ष ब्रह्मा द्वारा समझाने पर मनु राजा बनने को तैयार हुए।

कितना उत्तम शासन किया होगा मनु ने ? हम अपने को मनु की सन्तान के नाते (हजारों वर्ष बाद भी) 'मानव' कहते है। यह उसमें ऋणमुक्त होने का प्रयत्न है। प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर सम्पूर्ण समाज रचना का सर्वांगपूर्ण शास्त्र मनु ने लिखा है। वे ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय थे। दीर्घकाल शासन करने के बाद समाज जीवन की सर्वांगीण धारणा एवं विकास तथा व्यक्ति की इहलौकिक तथा मोक्षगामी दिशा में प्रगति का शास्त्र जो मनु ने लिखा वही 'मनुस्मृति' है। बोली हुई बात व्यवहार में लाने की जिम्मेदारी आधुनिक वक्ताओं में साधारणतया दिखाई नहीं देती, अत मनु मानवशास्त्र के उद्‌गाता इसलिए माने गये कि कही हुई बात पर स्वयं चलना यह उनका अभ्यास था। गार्हस्थ्य के बाद वानप्रस्थ आश्रम विशेष आयु बीतने पर स्वीकार करना चाहिए, इस नियम का स्वयं मनु ने भी पालन किया।

पापभीरु मनु के ग्रन्थ में बाद में कुछ दुष्टतामरी बातें किन्हीं स्वार्थियो द्वारा बढ़ा दी गयीं। जो मनु पापी को भी दण्ड देने के लिए संकोच करते थे, वे मनु, वेद सुनने पर किसी के कान में गला हुआ सीसा भरने की बात कैसे कह सकते है? सन्यासी साधु या साहित्यकारों में भी ऐसे निहित स्वार्थी तथा जातीय द्वेषभावना वाले लोग ही हो सकते है। अपने यहां के अनेक ग्रंथ इसके प्रमाण है, अत जो-जो समाज के लिए पोषक तथा उसे धारण करने वाले नियम है वे ही मनुस्मृति है। शेष प्रक्षिप्तांश मानने चाहिये।

ऐसे त्यागी, परहितदक्ष, न्यायी, कर्मठ, सभी का कल्याण चाहने वाले वैवस्वत मनु, जिन्हें मत्स्यावतार ने बचाया था, श्री राम के प्राचीनतम पूर्वज है। राम के वंश की गुणसम्पदा के स्रोत की कल्पना हम मनु से ही करना प्रारम्भ कर सकते है। निस्सन्देह अवतार-परम्परा का प्रथम पुरुष मत्स्य तथा सूर्यवंश का प्रथम पुरुष मनु समकालीन थे।

किरण-२

इक्ष्वाकु से मांधाता

मनु का वंश सूर्यवंश कहलाया। इस वंश में अनेक प्रतापी राजा हुए। वानप्रस्थी बनते समय मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को प्रजापालन का भार सौंपा था। इक्ष्वाकु योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। वे उत्तम प्रशासक तो थे ही, प्रजापालक भी थे। उनके समय में जनसंख्या तथा अन्न-उत्पादन दसगुना बढ़ा। सब ओर हरियाली समृद्धि, आमोद-प्रमोद दिखाई दे रहा था। सारी प्रजा प्रसन्न थी। इक्ष्वाकु को लड़ाई के मैदान में वीरता दिखाने का अवसर ही नहीं आया। फिर भी इक्ष्वाकु

अत्यन्त लोकप्रिय राजा हुए। सहस्राब्दियों तक वंशज अभिमान करें ऐसा रचनात्मक कर्तृत्व इक्ष्वाकु का रहा। इसीलिए इस वंश का नाम मनु से न पहचाना जाकर इक्ष्वाकुवंश नाम से अधिक प्रसिद्ध हुआ।

इक्ष्वाकु ने अपने सौ पुत्रों में पचास-पचास को उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ के रूप में, 'भारत का शासन बांट दिया था। संपूर्ण भारत की कल्पना उस समय भी व्यवहार में थी यही इससे सिद्ध होता है। इक्ष्वाकु का ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षि था जिसने पिता के बाद संपूर्ण राज्य धर्मानुसार चलाया। विकुक्षि का पुत्र पुरंजन पिता से भी अधिक पराक्रमी था। देवासुर संग्राम में जब देवता मार खाने लगे तो वह पुरंजन से सहायता मांगने आये। उनकी आदत देखकर पुरंजन ने शर्त रखी कि साथ में इन्द्र सहित सभी को लड़ना होगा। इन्द्र ने यह शर्त स्वीकार की। पुरंजन ने वृषभ के कंधे पर बैठकर ईश्वरीय आवेश में युद्ध लड़ा। दैत्यों की पराजय हुई। वे भाग खड़े हुए। बैलों के कंधे को संस्कृत में ककुद् कहते हैं। अतः इसी युद्ध से पुरंजन ककुत्स्थ कहलाने लगे। देवताओं की सहायता तथा धर्मरक्षा आदि प्रारम्भ से ही सूर्यवंशी राजाओं का उत्तरदायित्व रहा और वह उन्होंने निभाया भी। पुरंजन के कारण ही वाल्मीकि रामायण में राम को अनेक स्थानों पर 'काकुत्स्थ' कहा गया है।

वाल्मीकि के अनुसार ककुत्स्थ के तीन चार पीढ़ी पश्चात् पृथु का नाम आता है। पृथु ही प्रथम राजा हुए जिन्होंने कृषिशास्त्र की ओर विशेष ध्यान दिया। पृथु ने स्वयं कृषिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र का अध्ययन किया था तथा उनमें खोज की। स्वयं वैज्ञानिक आधार पर पृथु ने प्रजा को अधिक अन्न-उत्पादन की विधि सिखाई हल का निर्माण, उसका उपयोग, खाद का प्रयोग, यह सब पृथु की ही देन मानी जाती है। *भूमि को धारण करने वाली होने से 'धरणी' तथा रक्षण करने वाली* होने से 'अवनि' कहते हैं। उसी प्रकार पृथु की पुत्री के नाते उसे 'पृथ्वी' कहते हैं।

राजा का कार्य केवल शासन चलाना, आज्ञाएं देना, लड़ाई करते-कराते रहना इतना ही नहीं होता। उस पर प्रजापालन, अन्नवर्धन की भी जिम्मेदारी होती है, इस दृष्टि से पूर्वकाल के राजा भिन्न-भिन्न विषयों के जानकार तथा विशेषज्ञ थे। वे न केवल उन विषयों में रुचि रखते थे, अपितु स्वयं परिश्रम कर जन साधारण को कर्म की प्रेरणा देते थे। प्रजा का पालनहार राजा कैसा होता है, यह पृथु की ओर देखकर समझा जा सकता है। ऐसा कर्म वही कर सकता है जो प्रजा को पुत्रवत् प्रेम करे। केवल गद्दी की आसक्ति राजा को शोभा नहीं देती।

प्रजा को प्यार करने वाला, इसलिए प्रजा का अत्यधिक स्नेह-भाजन होने के बाद भी राजा पृथु को राज्यशासन से मोह, लोभ, आसक्ति किंचिन्मात्र भी नहीं थी। जब उसका लड़का विश्वराश्व बड़ा हुआ तो उसे राज्यभार सौंपकर स्वयं पृथु वानप्रस्थ आश्रम में गये। आधुनिक राजनीतिज्ञों को देखने पर यह उदाहरण

विचित्र लग सकता है कि कितनी सरलता से पृथु ने राज्य त्याग किया था।

पृथु की चौथी पीढ़ी में श्रावस्ती नगरी के संस्थापक श्रावस्त हुए। उनके पुत्र कुवलयाश्व थे। कुवलयाश्व केवल राजा ही नहीं तपस्वी भी थे। तपस्या द्वारा विष्णु से तेज प्राप्त कर ऋषि-मुनियों को कष्ट देने वाले धुन्धु दैत्य का कुवलयाश्व ने वध किया था। इस युद्ध में उनके तीन पुत्र छोड़कर शेष सभी पुत्र मारे गये थे। इसीलिए इनको धुन्धुमार भी कहते हैं। शेष तीन पुत्रों में एक दृढ़ाश्व था। उसकी पांचवीं पीढ़ी में युवनाश्व पैदा हुए। वे पराक्रमी थे परन्तु सन्तानहीन थे। सन्तान के लिए उन्होंने यज्ञ किया। यज्ञविधि में गड़बड़ी के कारण मां को खोकर बालक पैदा हुआ। इस बालक की धाय कौन हो, यह प्रश्न मुनियों के सामने आया। देवताओं का सहायक वंश होने के कारण देवराज इन्द्र ने यह जिम्मेदारी विशेष रूप से अपने ऊपर ले ली। इन्द्र ने कहा—'मामय धास्यतीति' अर्थात् मैं धाय का काम करूंगा, अतः इस पुत्र का नाम मांधाता पड़ा।

मांधाता सप्तद्वीपा पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा था। उसका कितना प्रभाव होगा इसकी हम विष्णुपुराण के वर्णन से कल्पना कर सकते हैं। विष्णु पुराण में 'यावत् सूर्य उदेत्यस्त मान्धाताक्षेत्रमुच्यते।' इत्यादि वर्णन है। अर्थात् सूर्य उदय होने से अस्त होने तक का संपूर्ण राज्य और संपूर्ण क्षेत्र मांधाता का माना गया था। अंग्रेजी राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था, यह सुनकर हमारे यहां कुछ लोग ग्लानि अनुभव करते हैं। यदि अपने इतिहास का सही अध्ययन किया जाये तो उन्हें भी गौरव का अनुभव होगा। आवश्यकता है पुराणों का परिश्रमपूर्वक अध्ययन कर अनुसंधान करने की।

मांधाता के समय भी रावणवंश का एक अत्यन्त दुष्ट तथा उद्दण्ड राजा था। मांधाता ने भी अपने समय के रावण को परास्त किया था। वह उसे मारने वाला ही था कि इतने में रावण-वंश के पूर्वपुरुष पुलस्त्य ऋषि ने बीच-बचाव किया, इसलिए रावण की जान बची। परन्तु मांधाता के शौर्य का इस घटना से अनुमान लगाया जा सकता है। मांधाता के पुत्र पुरुकुत्स हुए। वे भी पिता के समान ही बहुत पराक्रमी थे। पुरुकुत्स का पौत्र अनरण्य था। पुरखों ने केवल सप्तद्वीपा पृथ्वी पर राज्य किया, परन्तु इनके वंशज पाताल लोक में भी गये। वहां पर नाग और गंधर्वों में युद्ध हो रहा था। गंधर्व आततायी थे। अनरण्य ने गंधर्वों का नाश कर नाग-वंश से मित्रता स्थापित की। नागों ने अपनी कन्या का अनरण्य से विवाह कराकर उन्हें विषबाधा दूर करने की कला सिखाई। सूर्यवंश की पराक्रमी परंपरा में अनरण्य पीछे नहीं था। नाम के अनुसार उसने अनेक अनतिभ्यक वनों को समाप्त कर उपजाऊ भूमि कई गुना अधिक विस्तृत की। इस कारण उसकी प्रजा समृद्ध हुई, इसलिए आसपास के राजा उससे ईर्ष्या करते थे।

वैसे भी नरलोक के राजाओ मे परस्पर मेल कम ही रहता था। इसका लाभ उठाकर एक बार अनरण्य को अकेला पाकर उस समय के रावण ने उन पर आक्रमण किया। अनरण्य असहाय थे पर फिर भी वह रण छोडकर भागे नही। अंतिम सांस तक शत्रु का प्रतिकार किया। अन्त मे रावण को यह भी सूचना दी कि मेरा ही वशज एक दिन तुम्हारे समस्त कुल का सदा के लिए सहार कर डालेगा। यह राम के जीवन-उद्देश्य की मानो अनरण्य द्वारा घोषणा ही थी। अनरण्य के कई पीढी के बाद त्रैयारुण हुआ जिसका पुत्र सत्यव्रत था जो त्रिशकु के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

किरण-३

त्रिशंकु तथा हरिश्चन्द्र

वाल्मीकि रामायण मे त्रिशकु का पूर्ण वर्णन नही आता। परन्तु देवी भागवत मे त्रिशंकु तथा उनके पुत्र हरिश्चन्द्र दोनो का विस्तार से वर्णन आता है। राम के ये दोनों पूर्वज अपनी विशेषता रखते थे। मनुष्य पतित होने के बाद भी कैसा आत्मोद्धार कर सकता है, इसके ये दोनो ही अद्वितीय उदाहरण है। त्रिशकु का नाम सत्यव्रत था। स्वभाव से मन्दबुद्धि होने पर भी वह बहुत जिद्दी था। जहा वह मनमाना व्यवहार करता था, वहा वह प्रजा को सताता भी था।

त्रिशकु ने एक बार एक कन्या को विवाह-मण्डप से भगा दिया। उसके पिता बीसवी शताब्दी के भारतीय जन नेता तो थे नही, अत उन्होंने पुत्र का बचाव न करते हुए उसे देश निकाला दे दिया। कुछ दिन राज करने के बाद पिता भी वानप्रस्थी बने, अत गुरु वसिष्ठ ने राज सभाला। उधर सत्यव्रत और भी बिगडता चला गया। वसिष्ठ से ईर्ष्या करने वाले विश्वामित्र कान्यकुब्ज देश के निवासी थे। सत्यव्रत उनके आश्रम मे आश्रय के लिए गया। वहा अभक्ष्यभक्षण करने मे भी उसे झिझक नही थी। शकु का अर्थ है सीग अर्थात् पाप। सत्यव्रत के तीन पाप माने गये। कन्या भगाना, पिता की अवमानना करना तथा अभक्ष्य-भक्षण करना, इसलिए वह तीन पाप करने वाला त्रिशकु कहलाने लगा।

पापी व्यक्ति पश्चात्ताप भी कर सकता है। सत्यव्रत के साथ भी यही हुआ। पश्चात्ताप से दग्ध होकर वह आत्महत्या करने पर उतारू हुआ। इस कारण वानप्रस्थी होने पर भी उसके पिता परेशान हुए। वसिष्ठ ने जाकर सत्यव्रत को समझाया तथा पिता से अनुमति लेकर सत्यव्रत को राजभार सौपा। राज्य पाने पर उसने व्यावहारिक उद्दण्डता छोड दी। परन्तु अब उसमें सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा जगी। वह अयोध्या का राजा तो था ही, अत यज्ञ और तप के माध्यम से स्वर्ग-लोक जाने की उसकी आकाक्षा बढती गई। गुरु वसिष्ठ ने उसे बहुत समझाया और उनके पुत्रो ने भी। पर सत्यव्रत जिद्दी जो ठहरा। अब उसने इस काम मे भी

वचन के अनुसार विश्वामित्र राजमहल में पधारे। हरिश्चन्द्र ने स्वयं को अयोध्या का राजा बताते हुए विश्वामित्र से कहा कि वे चाहे जो माग लें, राजा अपने वचन की पूर्ति अवश्य करेंगे। विश्वामित्र ने कन्यादान के बदले में संपूर्ण राज्य मांगा। क्षण भर का भी विलंब न करते हुए हरिश्चन्द्र ने संपूर्ण राज्य विश्वामित्र को दान में दे दिया। कितना अति मानवीय परिवर्तन हरिश्चन्द्र में हुआ होगा?

विश्वामित्र राज्यप्राप्ति से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने कहा—"दान तो यज्ञ-क्रिया होती है और यह तो कन्या के बदले में दान है। यज्ञ की दक्षिणा अभी शेष है। सर्वस्व दान देने के पश्चात् भी दक्षिणा शेष रहती है। दक्षिणा चुकाने के बाद ही दान सार्थक होता है।" यहां पर दान व दक्षिणा का अन्तर तथा दक्षिणा का विशेष महत्त्व ध्यान देने योग्य है।

हरिश्चन्द्र सोचने लगे। उन्होंने विश्वामित्र से दक्षिणा की राशि पूछी। विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के तौल के बराबर स्वर्ण की मांग की। हरिश्चन्द्र संपूर्ण राज्य का दान कर चुके थे। विश्वामित्र के अनुसार अयोध्या की एक कौड़ी पर भी हरिश्चन्द्र का अधिकार नहीं था अतः उन्होंने विश्वामित्र से एक मास का समय मांगा। परन्तु वह समय भी समाप्त होने को आया। हरिश्चन्द्र को लगा कि स्वयं को बेचकर ही दक्षिणा दी जा सकती है। वचनपूर्ति न होने से हरिश्चन्द्र और तारा को आंखों से आंसू निकल आये। उन्हें देखकर सारी प्रजा की आंखें आंसुओं से भर गईं। वसिष्ठ भी सहायता नहीं कर सकते थे, क्योंकि विश्वामित्र उनसे ईर्ष्या करते थे।

तब हरिश्चन्द्र बोले—इस राज्य में तो मुझे या तारा को कोई दास नहीं बनायेगा, अतः वाराणसी चलकर परिवार सहित स्वयं को बेचकर दक्षिणा दूंगा। वाराणसी जाते समय रोहित को प्यास लगी। वह प्याऊ पर पानी पीने जाने लगा। हरिश्चन्द्र ने रोहित को रोककर कहा कि मैंने तुम्हें तीर से धरती फाड़कर निकले हुए जल से प्यास बुझाते रहे, उनके बजाय तुम दान का पानी पीओगे? रोहित का क्षत्रियत्व जाग उठा। वे प्यासे ही आगे बढ़े। तारा की जिद के कारण वाराणसी के बाजार में प्रथम तारा की नीलामी लगने लगी, राजा हरिश्चन्द्र स्वयं कह रहे थे, "है कोई लेने वाला इस दासी का?"

एक ब्राह्मण ने बोली लगाई और तारा को लेकर वह चलता बना। कहते हैं वह विश्वामित्र ही था। वसिष्ठ के शिष्य के उदर से रक्त था। रोहित जोर से रोने लगा। ब्राह्मण को दया आई रोहित को भी मूल्य देकर और दोनों को साथ लेकर ब्राह्मण चला गया। फिर भी दक्षिणा की अपेक्षित राशि पूरी न हुई। तब हरिश्चन्द्र ने स्वयं को बोली पर लगाया। श्मशान के एक ठेकेदार चाण्डाल ने उसे खरीदा। तब जाकर अपेक्षित दक्षिणा पूरी हुई। हरिश्चन्द्र भाग्य समझकर

शांत भाव से चांडाल के साथ चले गये। वचनपालन, सत्यपालन, धर्मपालन कैसा और कितना कठोर होता है, यह इसका उदाहरण है।

चाण्डाल ने हरिश्चन्द्र को श्मशानघाट पर कफन की कर वसूली का काम दिया। भाग्यचक्र जब उल्टा चलता है तब वह रुकता नहीं। आदमी के धैर्य की वह पूरी परीक्षा लेता है। बच्चों के साथ खेलते-खेलते रोहित को साप ने काट लिया। वह मर गया। उसे हाथ पर उठाकर रोती बिलखती तारा श्मशान-घाट पहुची। वहा पत्नी को देखकर हरिश्चन्द्र का दुख सीमा लाध गया। पति को देखकर तारा की आँखों से अश्रुधारा वह चली। तारा ने शका प्रकट की—क्या दया, धर्म, दान, अतिथिसेवा, सत्यपालन का यही फल होता है।

धर्मचर्चा सरल होती है, धर्मपालन कठिन कार्य है। पर इसी से सबकी धारणा होती है। सत्य धर्म की परीक्षा भी ऐसे ही समय होती है। हरिश्चद्र ने बिना शुल्क चुकाये तारा को चिता बनाने की अनुमति नही दी, क्योंकि वह कर्तव्यबधन मे था। तारा का पति या रोहित का पिता नही अपितु चाडाल का सेवक था। परन्तु चाण्डाल को बात का पता चलने पर सेवक से प्रभावित होकर उसने नि शुल्क चिता बनाने की अनुमति दे दी। इस पर हरिश्चन्द्र के मन मे विचार आया कि हम तीनो साथ-साथ चिता पर चढें। उसके आगे अलौकिक वर्णन प्रारभ हुआ।

रोहित के साथ जब दोनो चिता पर चढ़ने ही जा रहे थे, तभी यम, इन्द्र, वरुणादि दिग्पाल आये। रोहित जीवित हो गया। वे हरिश्चन्द्र को स्वय अपने साथ स्वर्ग ले जाना चाहते थे। पर हरिश्चद्र ने कहा कि जिस प्रजा ने मेरे धर्म कार्य मे सदा साथ दिया उस राज्यभक्त प्रजा का त्याग करना ब्रह्महत्या या गोहत्या के समान है। अत प्रजाजनों को छोड़कर वे अकेले स्वर्ग नही जाना चाहते थे उन्होंने कहा—"यदि मेरा पुण्य इतना अधिक हो तो उसे मेरी प्रजा मे बांट दो। मेरे समेत मेरी प्रजा को एक-एक दिन स्वर्गसुख मिले इसी मे मेरा पूर्ण कल्याण है।" लोकपालक राजा का यह आदर्श उदाहरण है। राम ऐसे कुल मे ही तो जन्म ले सकते थे।

किरण-४

सगर से अ शुमान

हरिश्चन्द्र के कुछ पीढी बाद इसी कुल मे सम्राट बाहु या असित पैदा हुए थे। असित भी विविध गुणो मे अपने पुरखो से कम नही थे। परन्तु वे वृत्ति से अधिक सात्विक थे। उन दिनो उत्तरी भारत के राजाओ मे आपसी वैमनस्य बहुत बढ गया था। अत पारस्परिक वैमनस्य मे खुलमना असित को पसन्द नही था। वे अपनी दोनो पत्नियों सहित वन मे चले गये। वहा उनकी पत्नी कालिन्दी गर्भवती हुई। जब ईर्ष्या-द्वेष का विष समाज मे फैलता है तो कोई घर बचता नही। फिर राजपरि-

लग कैसे बचे ? कालिन्दी की पुत्रहीन सौत को उससे ईर्ष्या हुई। उसने कालिन्दी को ऐसा विष दे दिया कि उसे पुत्र ही पैदा न हो सके।

राजा असित जहां तपस्या कर रहे थे, वहां पास में ही और्व मुनि का आश्रम था। उनके आश्रम में आयुर्वेद पर शोधकार्य चल रहा था। समाजसेवा के योग्य सभी विद्याएं व कलाएं पढ़ना-पढ़ाना भी ईश्वराराधना ही तो है क्योंकि सभी का अधिष्ठान भगवान् ही है। इसलिए ऐसे सभी काम तप कहलाते थे। कालिन्दी के कष्ट सुनकर और्व मुनि ने उसके पास जाकर उसे आश्वस्त किया। योग्य समय पर कालिन्दी ने बालक को जन्म दिया। और्व मुनि की औषधि से जो बालक पैदा हुआ था उसके पेट में मां को दिया गया विष स्थानबद्ध (लोकलाइज्ड) किया गया था। अत 'गर' अर्थात् विष सहित पैदा होने के कारण बच्चे का नाम 'सगर' रखा गया।

राम के पूर्वजों में जो अनन्यसाधारण पुरुष हुए उनमें सगर भी एक है आपसी वैमनस्य के परिणामस्वरूप विरक्त होकर असित ने राज्यत्याग किया था, अत सगर का जन्म भी अयोध्या से दूर जंगलों में हुआ। किशोरावस्था में सगर के सामने कितनी कठिन स्थिति रही होगी। सौतेली मां का वैर और बढ़ गया था। छोटे-छोटे राज्यों ने भी निन्दा करना प्रारम्भ कर दिया था। हैहय और तालजंघ वंश तो विशेष उद्दण्ड हो गये थे। मानसिक त्रास के कारण असित ने देहत्याग कर दिया। सगर यह सुनकर कष्ट पा रहा था। उसने मां से पूरी-पूरी बात जान ली। अकेला और असहाय तथा वनवास में होने पर भी वह सूर्यवंश का वंशज और भावी राम का पूर्वज था। और्व मुनि ने ही उसे वेदशास्त्र एवं भार्गव नामक आग्नेयास्त्रों की शिक्षा दी।

उसने शक्तिसंग्रह कर प्रारम्भ में हैहय और तालजंघ-वंशियों पर आक्रमण कर उनका जड़ से नाश किया। स्वाभाविक ही यवन कम्बोज, पारद, पल्लवगण आदि भी हतोत्साह होकर सगर के कुलगुरु वसिष्ठ की शरण में आये। वसिष्ठ ने सगर से इन राजाओं की सिफारिश की और कहा—जीतेजी मेरे शरणागत को क्यों मारा जाये ? ये शरण आये हैं। इन्हें कुछ दण्ड देकर मुक्त किया जाये। सगर ने किसी के सिर मुडवाये, किसी को अर्धमुंडित किया एवं किसी के वेश उतरवा दिये। सबसे बलवान दुष्ट पर विजय पाने से शेष दुष्ट नरम हो जाते है, अत सगर अपराजित सेना सहित अयोध्या लौटे तथा पुन सप्तद्वीपा पृथ्वी का शासन करने लगे।

सब और धाक जमाने के बाद सगर ने अश्वमेध का आयोजन किया। सारी प्रजा ही राजा को पुत्रवत् प्यारी थी। प्रजा भी राजा पर अत्यधिक प्रसन्न थी। यज्ञ का अश्व निकल पड़ा। नरलोक में तो किसी में शक्ति थी नहीं कि वह सगर का अश्व रोकता। देवताओं में चिन्ता हुई। देवगण और विशेषकर इन्द्र पर ध्यास

पर प्रतिरोधक बने रहते थे। कोई किसी भी प्रकार का जप तप करे इन्द्र को सदा भय होता रहा है। राजनैतिक सत्ताधारियो का इन्द्र सही-सही प्रतिनिधित्व करता है। सगर का अजेय अश्व इन्द्र कैसे सहन करता ? उसने अश्व चुराकर पाताल-लोक मे पहुचा दिया।

सगरपुत्रो ने घोडे के पदचिह्नो को देखकर चोर का पीछा करने का प्रयत्न किया तो उन्हे पता लगा कि वह पाताल लोक मे पहुचा है। पृथ्वी खोदते-खोदते वे पाताल लोक तक पहुचे। वहा पर सांख्य-दर्शन के प्रणेता कपिल मुनि समाधि मे लीन थे। उनके निकट ही यज्ञ का अश्व धास-चरता हुआ घूम रहा था। सगर के पुत्रो को लगा कि कपिल मुनि ही अश्व को ले आये है। उन्होने उनके विरुद्ध शोर मचाना प्रारभ किया। तपस्या भग होने से कपिल मुनि के आखें खोलते ही सगर-पुत्र भस्म हो गये। भागवत के अनुसार चौबीस अवतारो मे कपिल की भी गणना होती है। जब यह समाचार सगर के पास पहुचा तो उसने असमजस के पुत्र अशुमान को अश्व लाने का काम सौंपा। जाते समय सगर ने अंशुमान को सावधान किया कि जहा साधु अथवा सत्पुरुष मिलेंगे, उन्हे वन्दन करना और यदि उद्दण्ड मिलें तो उनका नाश करना।

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च हत्वा विघ्नकरानपि ।
सिद्धार्थ॰ सनिवर्तस्व मम यज्ञस्य पारगः ॥ बालकाड ४१/४

पृथ्वी के भीतर बडे-बडे बलवान जीव रहते है। उनसे टक्कर लेने के लिये अपने साथ तलवार और धनुष भी लेते जाओ।

भस्म हुए युवक सगर के पुत्र तथा अशुमान के चाचा थे। उन्होंने पाताल का मार्ग तो बनाया ही था। अशुमान उसी मार्ग से गया। मार्ग मे उसे कुछ श्रेष्ठ तापसी लोग मिले। उन्होने अशुमान को अश्व सहित शीघ्र लौटने का आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद से उत्साहित होकर वह बढता गया। जब वह कपिल मुनि के पास पहुचा, तो एक ओर उसने घोडा देखा और दूसरी ओर अपने चाचाओ की राख का ढेर दिखाई दिया। ढेर देखकर उसे बहुत दुख हुआ। पर अशुमान तो अश्व लेने आया था। विरह के कारण मुख्य कार्य को भूलना या उसकी उपेक्षा करना वीर पुरुषो को उचित नही। अत वह चाचाओ को जलाजलि देकर शीघ्र जाना चाहता था। उसी समय उसे चाचाओ के मामा(सुमति के भाई) गरुड मिले।

गरुड ने अशुमान से कहा—"तुम्हारे चाचाओं का वध जगत के कल्याण के लिए हुआ है। उनके उद्धार के लिए सुरलोकगामिनी गगा को धरती पर लाना होगा। वे कपिल मुनि के शाप से भस्म हुए है, अत साधारण जल मे उनका उद्धार न हो सकेगा।" गरुड से आशीर्वाद लेकर अशुमान अश्व लेकर लौटा तथा अपने पितामह का यज्ञ पूरा करवाया। यज्ञ पूरा होने पर राजा सगर अयोध्या लौटे। अयोध्या जाने के बाद गगा का अवतरण किस प्रकार हो, इसका चिन्तन प्रारम्भ हुआ। परन्तु हर

एक मनुष्य की आयु की एक सीमा होती है। गंगा-अवतरण का उपाय राजा सगर न कर सके। अनेक वर्ष राज्य कर राजा सगर इहलोक छोड़ कर चले गये।

अंशुमान अत्यन्त पराक्रमी तथा योग्य शासक थे। सिंहासन का मोह उन्हें नहीं था। हजारों लोग रेगिस्तानी धूप में तड़प-तड़प कर मरते थे। प्रलय के समय तीसरी बार हिमालय के ऊपर आने के साथ-साथ बीच का समुद्र पूरब और पश्चिम में खिसक गया था। कच्छ से बंगाल तक सम्पूर्ण क्षेत्र राजस्थान के समान वालुकामय बना था। इसीलिए प्रजा का पिता होने के नाते हिमालय से गंगा कैसे आयेगी, यही उनके लिए भी चिन्ता का विषय रहा। अतः अपने पुत्र दिलीप को सहज भाव से राज देकर अंशुमान स्वयं गंगा की खोज में हिमालय पर गये। उस काल के अनुसार दीर्घकाल तक गंगा का शोध यानी तप चलता रहा। अंशुमान ने भी अपना जीवन इसी काम में खपाया, अतः गंगा लाने का भार दिग्विजयी राजा दिलीप पर आ पड़ा।

किरण-५

दिलीप

अंशुमानपुत्र दिलीप कुल का नाम सार्थक करने वाले ही निकले। रघुवंशियों में किसी भी राजा को मानो राज्यलोभ छू भी नहीं गया था। चिन्ता थी तो केवल प्रजाहित की, अतः गंगावतरण दिलीप के सामने भी प्रमुख विषय बना। धरती हरी-भरी कैसे हो, प्रजा का कष्ट दूर कैसे हो यही एक विचार था, परन्तु राजा दिलीप के मन में एक और भी कष्ट था। दिलीप भी सन्तानहीन थे। अतः परंपरा कौन चलायेगा? रघुकुल की धारा अखण्ड कैसे रहेगी, यह भी चिन्ता उन्हें थी। इसलिए दिलीप ने गोव्रत लेने का निर्णय किया। गोव्रत भारत की विशेषता है। पूछा जा सकता है कि ईश्वर को प्रसन्न करने की बात समझ में आ सकती है, पर गौ बीच में कैसे आ गई?

विषय के संदर्भ में यहां संक्षेप से विचार करेंगे। भारत में गौ को माता मानते हैं। शायद निजी माता से भी श्रेष्ठ। निजी माता शैशवावस्था में दूध पिलाती है, गौ जन्म भर पिलाती है। कृषिप्रधान देश में गोपुत्रों से ही कृषि हो सकती है। गोमूत्र तथा गोबर यह उत्तम औषधि तथा सर्वोत्तम खाद के नाते काम में आते हैं। मृत्यु के बाद भी उसके चर्म का उपयोग है। गौ का वात्सल्य है। बछड़े के लिए गाय शेर का मुकाबला करने भी खड़ी हो जाती है। इतनी निर्भय होने पर भी गो सौम्य तथा वत्सल होने से किसी भी परिवार की सदस्या बन जाती है। प्राणिमात्र के प्रति स्नेहभाव, अहिंसाभाव के विचार तथा विकास का प्रतीक होने के नाते भारतीय ऋषियों ने गोभक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया है। जिह्वा के स्वाद के

लिए अहिंसक व मूक पशुओ को मारने की दानवता को दबाकर मानवता को उठाने वाला तथा देवत्व की ओर ले जाने वाला मार्ग गो-सेवा माना गया।

जब किसी आराध्य की समाज मे स्थापना करनी होती है तो उसकी शैली होती है। यहा के ऋषि-मुनि इस मनोवैज्ञानिक कला मे प्रवीण थे। भारतीय मन मे विद्यमान आस्तिकता से वे परिचित थे। विविध गुणो की वृद्धि का ही ऋषियो का प्रयास रहता था। अत वे गाय को प्रतीक रूप मे आराध्य बनाना चाहते थे। भारतीय मानस के अनुसार सपूर्ण चराचर मे परमात्मा का वास है। अतः सभी कुछ पूजनीय है। पीपल का वृक्ष हो या शख हो, साप हो या चूहा हो, भारत मे सभी की पूजा की जाती है। ऋषियो ने सभी मे किसी न किसी देवता का वास बताया है। हमारे यहा हिमालय को देवतात्मा कहते है। इस पृष्ठभूमि मे भाव, व्यवहार, सस्कार अथवा उपयोगिता के नाते गाय सबसे ऊपर दीखती है, अत ऋषियो ने गाय मे सभी देवताओ का वास बताया है।

गाय के पिछले भाग मे लक्ष्मी का वास है, ऐसी मान्यता है। दक्षिण भारत मे गाय के पिछले भाग की ही पूजा की जाती है। गाय का दूध, गोमूत्र तथा गोबर ये तीनो मानवजीवन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी वस्तुए गाय के पिछले भाग से ही मिलती है। स्वाभाविक ही वहा लक्ष्मी का वास मानना युक्ति-युक्त है। इसी प्रकार गाय के अलग-अलग सभी अगो मे सभी श्रेष्ठ देवताओ के वास की कल्पना की गई है। एकाग्र होकर ऐसे किसी भी आराध्य की सेवा तथा आराधना की गई तो सर्वशक्तिमान का प्रसन्न होना अवश्यभावी है। और परमेश्वर तो वाछित फल देने वाला है, इसीलिए दिलीप को भी गोव्रत का परामर्श दिया गया।

दिलीप ने भी पूर्ण निष्ठा के साथ व्रत प्रारम्भ कर उसे कठोरता के साथ निभाया। सुरभि (देवलोक की गौ) की पुत्री नन्दिनी को दिलीप ने सेवा के लिए आराध्य बनाया। जब तक वह खडी रहती थी तब वे खडे रहते थे। वह बैठती तो वे बैठते, जब वह लेटती तो वे लेटते। उसके खाने-पीने की व्यवस्था के बाद उसी से प्राप्त दुग्ध को उसके बछडे के लिए छोड़ कर शेष को दिलीप अपने काम मे लाते। दिन मे वह जहा-जहा जाती वहा-वहा वह साथ जाते। यही उनका नित्यक्रम था। ऐसा व्रत वर्ष भर किया जाता है। गरमी हो या वर्षा, शीत हो चाहे बरफ पडती हो, व्रती को व्रत निभाना पडता है। दिलीप ने इस व्रत का पालन किया, क्योकि इसी से उनके इच्छित लक्ष्य प्राप्त होने वाले थे। (पुत्र प्राप्ति तथा गगावतरण यही वे लक्ष्य थे)। अत्यन्त कठोरता के साथ दिलीप का व्रत चलता रहा। एक दिन घास चरते-चरते नन्दिनी पर एक सिह ने आक्रमण कर उसे धर दबोचा। दिलीप ने सिह को मारने के लिए तूणीर से बाण निकालना चाहा परन्तु मन्त्र प्रभाव से उन का हाथ वही रुक गया।

दिलीप असमन्जस में पड़ गये। उन्हें लगा कि यह कोई सामान्य सिंह नहीं है। उन्होंने सिंह से प्रार्थना की कि वह दिलीप का शरीर लेकर नन्दिनी को छोड़ दे कालिदास ने रघुवंश में इस परिसंवाद का बहुत करुणापूर्ण परन्तु प्रेरक वर्णन किया है। सिंह कहता है कि तू अयोध्या का राजा है, तू बचेगा तो लाखों नन्दिनियों का पालन कर सकेगा, तथा दान भी कर सकेगा। परन्तु दिलीप ने कहा, "व्रत भंग करते हुए अपमानित होकर मैं किस मुंह से शासन दान कर सकूंगा, अतः प्राण देना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है। वचन के लिए प्राण देना यही मेरे वंश की रीति है।" दिलीप को निर्भय, अनासक्त तथा दृढ़व्रती देख कर सिंह ने नन्दिनी को मुक्त कर दिया। स्वाभाविक ही नन्दिनी भी दिलीप पर प्रसन्न हुई। उसी के कारण वंश का नाम बढ़ाने वाला तथा भस्मीभूत पितरों का उद्धार करने वाला पुत्र हो, यह वरदान उन्हें मिला। आज तक भारत-भर में दिलीप अपनी गोभक्ति के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार क्षति(नाश)से त्राण(रक्षा) करने वाला यानी 'क्षत्रिय' इस व्याख्या को सार्थक करने वाले दिलीप थे। दिलीप के राज्य में "चोरी" शब्द सुनने मात्र के लिए रह गया था। अतः दिलीप के यश को अन्य राजा कैसे प्राप्त करते? (रघु १ १७) प्रजा की रक्षा करने, नीति सिखाने तथा पालन करने के कारण ही दिलीप वास्तव में प्रजा के पिता थे। प्रजा के माता-पिता केवल जन्म देने वाले थे। ज्ञान में मौन, सामर्थ्य में क्षमा तथा दान में प्रशंसा की अपेक्षा न रखना ऐसे गुण दिलीप में प्रारम्भ से ही विद्यमान थे। उन्होंने पृथ्वी का दोहन तो किया पर केवल यज्ञ के निमित्त। प्रजा से कर लिया तो पर हजार गुना लौटाने के लिए। कालीदास के शब्दों में आकार के समान बुद्धि, बुद्धि के समान शास्त्रज्ञान, ज्ञान के समान उद्योग और उद्योग के समान उत्कर्ष, यही दिलीप का यथार्थ वर्णन है। इसीलिए वाल्मीकि लिखते हैं कि ऐसा पराक्रमी, कर्तव्यदक्ष होने पर भी गंगावतरण कराने की विफलता चिन्ता में वे जर्जर और अन्ततः दिवंगत हो गए। उनकी आकांक्षा का प्रभाव पुत्र पर दृढ़ रूप से पड़ा और वह पिता तथा पितामहों का संकल्प पूर्ण करने में सफल हुआ।

किरण-६

भगीरथ

दिलीप का यह महान् पुत्र भगीरथ के नाम से प्रसिद्ध है। सगर की पांचवी पीढ़ी में भगीरथ आये थे। सगर के समय में भस्मीभूत तथा बाद में प्रति वर्ष ग्रीष्मकाल में झुलसने वाले सहस्रों सागरपुत्रों का उद्धार कैसे हो, यही चिन्ता भगीरथ के मन में थी। अतः गंगाजी को धरती पर लाने का उन्होंने संकल्प किया।

राज-पुरोहित को राजकार्य सौंप कर भगीरथ स्वयं गंगावतरण के लिए दिव्य पागलपन से (एकाग्र तप करते हुए) अभिभूत होकर अनुसंधान में लगे।

हिमालय में भ्रमण करते-करते बर्फीली चोटियों के उस पार भगीरथ को मानसरोवर जैसे बड़े-बड़े जलाशय दिखाई दिये। यह त्रिविष्टप देश था (आज का तिब्बत) वाल्मीकि के अनुसार यही देवलोक था—"त्रिविष्टप देवलोकम्" (१.५७.७) वहां का राजा इन्द्र होने पर भी उनके आराध्य ब्रह्मा थे। नरलोक के इस भगीरथ की इस एकाग्रनिष्ठा से ब्रह्मा प्रसन्न हुए। भगीरथ को बताया गया कि गंगा धरती पर आ सकती है। बाधा अगर है तो हिमालय की चोटियों की। इन चोटियों को पार कर गंगा नीचे मैदान की ओर कैसे आयें, यह समस्या थी। वाल्मीकि जी ने भगवान शंकर की जटाओं को हिमालय की श्रेणियों की उपमा दी है—'हिमवत्प्रतिमे रामजटामण्डलगह्वरे' (१.४३.८)

भगीरथ की निष्ठा, मानवीय प्रयत्न की पराकाष्ठा, पर्वतीय अभियान्त्रिकी (माउंटेन इंजीनियरिंग) का ज्ञान एवं भगवान पर अनन्य आस्था सभी का भगीरथ को सहारा लेना पड़ा। उसका दूसरा तप प्रारम्भ हुआ और अन्त में भगीरथ को उसमें भी सफलता मिली। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी—ये गंगा की तीन मंगलमयी धाराएं पूर्व की ओर गयी तथा सुचक्षु, सीता और महानदी सिंधु—ये तीन धाराएं पश्चिम की ओर प्रवाहित हुई। अलकनन्दा, मंदाकिनी गंगा आदि-आदि अनेक धाराओं में स्वर्गीय जल धरती की ओर चल पड़ा। दक्षिण की ओर आने वाले जल-प्रवाह जहां-जहां मिले वहां-वहां एक-एक प्रयाग बसता चला गया। नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग और अन्त में देवप्रयाग, यहां पर गंगा की भिन्न-भिन्न नामों वाली धाराओं का संगम होता गया है। यहां से पूर्ण गंगा के रूप में यह जलधारा हरिद्वार की ओर बढ़ी है। इसी रूप में भगीरथ ने शंकरजी की प्रसन्नता का प्रसाद पाया है। इस सारी प्रक्रिया में आगे-आगे भगीरथ और पीछे-पीछे गंगाजी दौड़ती हुई धरती की ओर चल रही थी। इक्ष्वाकुवंशीय राज्य की प्रजा की तड़पन सदा के लिए समाप्त हुई।

भगीरथ हिमालय में किसी स्थान पर आंखें बन्द कर बैठे हों और उनके वहीं बैठे-बैठे ब्रह्मा और शंकर की प्रसन्नता से गंगा धरती की ओर आई, यह कल्पना भक्तिमार्गियों के लिए ठीक हो सकती है। कर्ममार्गी भगीरथ से कुछ कर्म की भी प्रेरणा लेते हैं। भगीरथ ने अपनी बुद्धि, अपनी शक्ति, अपना ज्ञान तथा अपनी योग्यता दांव पर लगाकर, सम्पूर्ण हिमालय का अनुशीलन कर, हिमालय के उत्तर की ओर की जल-राशि को धरती की ओर लाने का मार्ग खोज निकाला होगा। जैसे आज के अभियान्त्रिक (इंजीनियर) जलप्रवाहों को, कितनी ही दूर तक ले जाने में सफल होते हैं, उसी प्रकार आधुनिक साधनों के अभाव में भगीरथ का यह प्रयत्न अतुलनीय व अद्वितीय था। राष्ट्र को गंगा के रूप में स्थायी जीवन (जल को

'जीवन' भी कहते हैं) प्राप्त कराने वाले भगीरथ का भारत सदा ऋणी रहेगा।

उत्तरी भारत का रेगिस्तान, प्रजा के हित के विचार से गंगा तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा जिस काल में हरा-भरा बनाया गया, कम-से-कम उस काल में इस देश में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ ऐसा यदि माना जाये तो भी यह गणना सहस्त्रों वर्षों की हो जाती है। आज का बुद्धिवादी कितना भी नास्तिक क्यों न हो, गंगा के आगमन का स्मरण करने के बाद भारत की राष्ट्रीयता के जन्मदाता अंग्रेज थे, यह कभी स्वीकार नहीं करेगा। भूमि के कण-कण में, वायु के हर झकोरे, में जल प्रवाह की हर लहर में, पवित्रता स्थापित कर इस भूमि से यहां के समाज का रिश्ता कम-से-कम गंगा के आगमन के पूर्व समय से स्थापित हो चुका था। तभी तो गंगा की पवित्रता भारत में इतनी अधिक मानी जाती है कि उसके दर्शनमात्र से मुक्ति की कल्पना हम कर सकते हैं—"गंगे तव दर्शनात्मुक्तिः"। क्या किसी अन्य राष्ट्र में, अपनी भूमि आदि के साथ इतनी तन्मयता कहीं दिखाई देती है? अंग्रेजीदां इस भक्तिभाव को नहीं समझ सकेंगे।

आज तो बसें गंगोत्री से एक मील पूर्व तक चली जाती हैं। गोमुख वहां से भी १२ मील उत्तर की ओर है। भगीरथ के समय वहाँ जाना कितना कठिन रहा होगा? १२०० वर्ष पूर्व आद्यशंकराचार्य एक दो शिष्यों के साथ किशोर आयु में इस समूचे क्षेत्र में पैदल घूमे। उन्होंने स्वयं पदयात्रा कर इस तपोभूमि की पवित्रता का स्मरण भारतपुत्रों को कराया है। उनके हजारों वर्ष पूर्व राजकुल में पैदा हुए भगीरथ जैसे व्यक्ति को अकेले ही जलाशयों का शोध, मार्गों का शोध, आवश्यक मात्रा में अभियांत्रिकी का ज्ञान तथा मन-बुद्धि की एकाग्रता कितनी मात्रा में करनी पड़ी होगी, इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। और यदि इसे तप न कहें तो क्या कह सकते हैं? ऐसे तप को जिस तृतीय शक्ति की (परमेश्वर की) साक्षी से सफलता मिलती है उस शक्ति का स्मरण भारतीय मनीषी सदा ही करते रहे हैं। इसीलिए माना जाता है कि शंकर प्रसन्न हो गये और गंगा को उन्होंने अपनी जटाओं से मुक्त किया।

गंगा को इस प्रकार तपस्यापूर्वक लाने वाले भगीरथ के नाम पर गंगा 'भागीरथी' कहलाती है। भारत के कोने-कोने में लोग गंगा-किनारे आकर जीवन में कम-से-कम एक बार भागीरथी में स्नान करना चाहते हैं। यदि संभव न हुआ तो कम से कम मृत्यु के पूर्व गंगाजल की दो बूंदें मुख में पड़ जायें यह अभिलाषा हिंदू मात्र रखता है। गरीब से गरीब हिन्दू के घर में खाना बनाने वाले बरतन भले ही टूटे-फूटे हों पर गंगाजल की बोतल बहुत ही सम्मानपूर्वक रखी जाती है। कितनी भक्ति जगाई है हमारे पूर्वजों ने? परन्तु उस भक्ति का आधार भगीरथ का प्रयत्न ही रहा है। राम के जीवन में जो चरम कमठता दिखाई देती है, उसके पीछे उनके पूर्वज भगीरथ की तपस्या अवश्य रही होगी।

किरण-७

अम्बरीप

भगीरथ की चौथी पीढी मे प्रख्यात सूर्यवशी राजा नाभाग हुए। प्रथा के अनुसार ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर जब वे गुरुगृह से लौटे तो उनके बडे बधुओ ने राज्य की समस्त भूमि तथा सम्पत्ति आपस मे बाट ली थी। नाभाग सबसे छोटे थे। बडे भाइयो ने कहा—तुम्हारे हिस्से मे केवल पिताजी है। नाभाग पिता के पास गये। पिताजी ने कहा—चिन्ता मत करो, धर्मानुसार आचरण करो, धर्म ही तुम्हारी रक्षा करेगा, धर्मो रक्षति रक्षित। उस समय कुछ ऋषि यज्ञ कर रहे थे। पिता ने नाभाग से कहा कि तुम भी यज्ञ मे जाकर वहा साक्षी रहो तथा दो मंत्रो का उच्चारण करो। ऋषि जब जाने लगेंगे तो वे बची हुई सम्पदा तुम्हें दे देंगे। नाभाग ने पिता की आज्ञानुसार काम किया। ऋषियो ने भी यज्ञावशिष्ट धन नाभाग को दे दिया तथा वे चले गये।

उस काल मे एक और भी अलौकिक प्रथा थी। यज्ञ अवशेष् रुद्र का भाग माना जाता था। नाभाग जब अपना हिस्सा लेकर चलने लगा तो रुद्र का प्रतिनिधि वहा आया उन दोनो मे धन को लेकर विवाद खडा हुआ। प्रतिनिधि ने कहा कि "तुम्हारे पिता ही जैसा निर्णय करेंगे वैसा मान्य होगा।" दोनो मिलकर नाभाग के पिता के पास गये। पिता सूर्यवशी राजा थे। उन्होंने पुत्र का पक्ष नही लिया। उन्होंने धर्म का, न्याय का पक्ष लिया। रुद्र के प्रतिनिधि की बात सच निकली। नाभाग ने पूरा धन उसको अर्पित कर दिया। लौकिक दृष्टि से भी यह घटना अनेकागी प्रकाश डालने वाली है। सूर्यवश की मिट्टी कैसी बनी थी, उसका यह प्रमाण है। धनहीन पुत्र धन पाये, बीच मे दूसरा आकर अधिकार बताये और पिता न्याय के कारण, धर्म के कारण, पुत्र को धन लौटाने के लिए बाध्य करे और पुत्र को भी लौटाते समय किंचित भी लोभ-मोह न हो। क्या यह बात विचारणीय व अनुकरणीय नही है ? स्वयं रुद्र ने प्रसन्न होकर अतिरिक्त सम्पदा के साथ पूरा धन वापस किया।

अम्बरीप इन्ही नाभाग के पुत्र थे। जो ब्रह्मशाप कही न रुका हो वह भी अम्बरीप को स्पर्श न कर सका—"नास्पृशत् ब्रह्मशापोऽपि" भागवत (९.४.१३) सप्तद्वीपा पृथ्वी, अमित सम्पत्ति और अतुल ऐश्वर्य को अम्बरीप एक स्वप्न से अधिक महत्त्व नही देते थे। भोग सामग्री भगवान को अर्पित कर वे अपना जीवन चलाते थे। अत उनके राज्य की प्रजा स्वर्ग की भी इच्छा नही करती थी—"स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रिय" (९४४ भागवत) एक बार उन्होंने पत्नी के साथ वर्ष भर एकादशी का निर्जला व्रत धारण किया। एकादशी को पूर्ण लघन

तथा द्वादशी को निश्चित समय पर पारण, यह व्रत का नियम था। वर्ष के अन्त में अम्बरीष ने एक बड़ा यज्ञ भी किया और व्रत समाप्ति पर ब्राह्मण आदि का भोजन कराकर वे प्रसाद पाने ही वाले थे कि ऋषि दुर्वासा आ गए। राजा ने उनको भी भोजन के लिए प्रार्थना की। दुर्वासा तैयार हुए तथा स्नान करने नदी पर चले गये। उनके लौटने में देर हो रही थी, उस कारण द्वादशी के पारण का समय निकला जा रहा था, अतः पुरोहित की सलाह से अम्बरीष ने जलपान से आचमन कर व्रत का पारण किया। दुर्वासा को लौटने पर पता चला कि अम्बरीष ने पारण कर लिया है। वे तो क्रोधमूर्ति थे ही। क्रोध के कारण अम्बरीष के नाश के लिए उन्होंने कृत्या निर्माण की। अलौकिक कथा के अनुसार अम्बरीष की रक्षार्थ विष्णु के चक्र ने उस कृत्या का नाश किया और फिर वह चक्र दुर्वासा के पीछे पड़ा। वे भागे-भागे ब्रह्मा, शंकर और अन्त में विष्णु के पास गये। विष्णु ने कहा कि मैं भक्त के अधीन हूं। तुम अम्बरीष के पास ही जाओ। ब्राह्मण-शक्ति भक्ति के सामने नतमस्तक हुई। दुर्वासा को लौटने में एक वर्ष का समय लगा। वापस लौटकर उन्होंने देखा कि इतने काल तक (एक वर्ष) अम्बरीष बिना भोजन किये उनकी प्रतीक्षा में है।

भारत में अतिथिसेवा का क्या स्थान था कैसा व्यवहार था, भक्ति का क्या रूप था आदि अनेक बातें कथा से ध्यान में आती हैं। अन्त में दुर्वासा ने स्वयं अम्बरीष को धन्य कर दिये। राजा होने पर भी अम्बरीष ऋषि थे। वे केवल शासन चलाने वाले राजा नहीं थे, प्रजा का पारलौकिक कल्याण करने की क्षमता रखने वाले असली पिता थे। उनकी आस्तिकता के परिणामस्वरूप उनके राज में कभी अकाल न पड़ा, व्यक्ति पर काल का प्रभाव तो होता ही है परन्तु व्यक्ति भी काल को प्रभावित करता है इसीलिए सहस्राब्दियों के बाद हम उनका स्मरण करते हैं। उनके आचरण से प्रभावित उनके प्रजाजन भी इतने श्रेष्ठ भक्त बने कि वे भी अम्बरीष के साथ-साथ स्वर्ग जा सके।

किरण-८

रघु

अम्बरीष के १०-१२ पीढ़ी पश्चात् खट्वांग नामक राजा अयोध्या के सम्राट हुए। युद्ध में कोई भी उन्हें जीत नहीं सकता था। सूर्यवंश की परम्परा के अनुसार देवताओं की युद्ध में सहायता करने उन्हें भी जाना पड़ा। अन्तिम बार के युद्ध में खट्वांग ने असुरों को पूरी तरह पराजित किया। देवताओं ने प्रसन्न होकर खट्वांग से वर मांगने को कहा। उन्होंने देवताओं से अपनी शेष आयु जाननी चाही। उसे पता चला कि उसकी आयु केवल दो घड़ी शेष है। देवताओं के वर

के मोह मे न पडकर वे सीधे कर्मभूमि (मृत्युलोक) अर्थात् भारतभूमि मे आए। मुमुक्षु को मोक्ष प्राप्ति के लिए देवलोक छोड़कर कर्मभूमि (पृथ्वी) पर ही आना पड़ता है। यह नियम देवलोक निवासियों के लिए भी है। धरती पर आकर खट्वाग ने अपना सर्वस्व त्यागकर, मन भगवान मे लगाया। बचपन से ही उसका मन कभी भी अधर्म मे नही लगा था। ब्रह्मज्ञानी उसे प्राणो से भी अधिक प्रिय होते थे। भगवान के अतिरिक्त उसने कही कुछ देखा नही। यहा तक कि देवताओ के वर की भी लालसा उसने नही की। ऐसे विचार अन्त समय उसके मन में आने लगे। स्वाभाविक ही वे भगवत्स्वरूप बन गये। अन्तकाल मे जैसे विचार आते है वैसी ही गति होती है। यह खट्वाग ने प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाया। सूर्यवंशी राजा किस धातु के बने थे, इसका यह भी एक उत्तम उदाहरण है।

खट्वाग के पुत्र दीर्घबाहु हुए। वैसे कही-कही खट्वांग को द्वितीय दिलीप भी कहा गया है। शायद कालिदास ने इसीलिए उन्हें रघु का पिता तक कह दिया है। पर रघु उनका पोता और दीर्घबाहु का पुत्र था। पुत्र के पृथ्वीपति होने के लक्षण मा के दैहिक लक्षणो (गर्भलक्षण) से ही प्रकट होते थे। मा को मिट्टी सूघने की इच्छा होती थी, मानो पृथ्वी पर किसी भी दिशा मे अन्त तक पुत्र का रथ रोका न जा सके। पुत्र शास्त्रों में पारंगत हो तथा शत्रु के भी पार जावे इस आकाक्षा से पुत्र का नाम रघु रखा गया। सस्कृत मे रघि धातु का अर्थ चलना होता है। बालक बडा हुआ तो उसका उपनयन हुआ। बालक प्रतिभावान था ही। अल्पकाल मे ही आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति आदि चारो विद्याए रघु ने सीख ली। जैसे शरीर बढने लगा वैसे रघु में गभीरता भी आने लगी। परन्तु शरीरयष्टि पिता से बडी होने पर भी उनकी नम्रता भी बढ़ती गई। सहज ही उन्हे युवराज घोषित किया गया।

जब सम्राट दीर्घबाहु के अश्वमेध का अश्व इन्द्र ने चुराया तो अश्व-रक्षक रघु ने इन्द्र को रोका और कहा, "आप स्वय यज्ञ के भोक्ता हैं अत: यज्ञकर्ता पिता का कार्य क्यो बिगाडते हैं? आप यज्ञवैरियो को दण्ड देने वाले हैं, फिर आप ही धर्म-कार्य मे बाधा क्यो बन रहे हैं जिससे धर्मनाश हो रहा है?" रघु के प्रश्न से चकित इन्द्र ने कहा—"सौ यज्ञों का याजक केवल मैं हू। तेरे पिता शतयज्ञो का यश प्राप्त करना चाहते है, इसलिए मैं बाधा बना। तू बीच मे न पड। सगरपुत्रो का स्मरण कर।" रघु ने इन्द्र को आह्वान करते हुए कहा, "बिना युद्ध के तुम अश्व नही ले जा सकोगे।" द्वन्द्वयुद्ध मे रघु ने इन्द्र के छक्के छुडा दिये। अत. इन्द्र ने रघु पर वज्रप्रहार किया। रघु वज्रप्रहार की व्यथा को सहकर पुन. युद्ध के लिए खडा हुआ। इन्द्र आश्चर्य के साथ प्रसन्न हुआ। उसने रघु से अश्व छोडकर अन्य कोई भी वर मागने को कहा। रघु ने कहा कि "अश्व भले ही न छोडो परन्तु पिता को अश्वमेधपूर्ति का फल दो। साथ ही यह सूचना भी पिता को मिल जाये।"

रघु जब वापस लौटा तो पिता सहित सबने उसका स्वागत किया। अश्वमेध स्वर्ग जाने की सीढ़ी मानी जाती थी। "सोपानपरम्परा मिव" रघु ३ ६९। उसके पिता ने १०० में से ९९ सीढ़ी पार कर ली थी। अतः राजा ने स्वयं को ढलती आयु समझकर इक्ष्वाकु वंश की रीति के अनुसार पुत्र को राजा बनाया और वे स्वयं वानप्रस्थी हो गए। राज-सिंहासन के साथ चारों ओर के वैरीमण्डल को भी रघु ने दबा दिया। पुण्यवान राजाओं द्वारा भोगी हुई पृथ्वी रघु के प्रभाव में पूर्णतया नई सी बनी। मानो पञ्चमहाभूतों के गुण भी बढ़े हों। रघु ने चारों दिशाओं में दिग्विजय करना प्रारम्भ किया। उसने प्रारम्भ पूर्व दिशा से किया। कालिदास लिखते हैं, "सेनासंचालन से धूल उड़ने के कारण आकाश धरती जैसा और हाथियों की अधिकता के कारण धरती का रंग आकाश जैसा दिखाई देता था।" पूर्व में वंग देश आदि पार करते हुए रघु स्याम देश तक विजय करते गये। उसके शत्रु बेंत के समान झुकते और पनपते थे।

रघु वापस आकर कलिंग की ओर बढ़ गए। वहां से वे दक्षिण दिशा की ओर कावेरी तक गये। दक्षिण में सूर्य का तेज कम होने पर भी पाण्ड्यदेशीय लोग रघु का तेज सहन न कर सके। उत्तर से पश्चिम में मलयाद्रि की ओर प्रस्थान किया। बीच में केरल की नारियों ने आरतियां उतारी। वहां से उत्तर की ओर परशुराम भूमि (कोंकणपट्टी) से आकर वह पारसियों को जीतने के लिए स्थलमार्ग से पारस की ओर बढ़े। आगे बढ़कर पश्चिमदेशीय घुड़सवार यवनों से भीषण युद्ध कर रघु ने उनके दाढ़ी वाले सिरों से पृथ्वी ढक दी। रक्षे-सब पगड़ी उतारकर शरण आ गये। वहां से वे उत्तर की ओर चले। मार्ग में काबुल, कश्मीर आदि में हूणों को परास्त कर उनसे स्वर्ण, अश्व आदि भेंट पाकर वे हिमालय पर चढ़ गये। पर्वतों पर चलते-चलते लोहित्या पार कर पांचाल, कामरूप आदि देश के राजाओं को नतमस्तक कराकर सम्पूर्ण भारतभूमि में एकछत्र साम्राज्य स्थापित किया। राम के प्रपितामह के समय के भारत का यह दर्शन कितना प्रेरक है? "अंग्रेजों ने भारत को एक बनाया",—यह कहने वालों को रघुविजय पढ़ने पर पुनर्विचार करना ही पड़ेगा।

इस प्रकार चारों दिशाओं को जीत कर अजेय रघु वापस लौट आए। अपने प्रिय सम्राट् के विश्वविजेता बनकर लौटने पर उनका कैसा स्वागत हुआ होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। पर सत्पुरुषों की विजय तथा धनसंचय आदि स्वयं का नाम या कोष बढ़ाने के लिए नहीं होता। इस दिग्विजय के बाद रघु ने सर्वस्वदक्षिणा वाले विश्वजित यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के अन्त में सभी राजा अपने-अपने देश को सानन्द वापस चले गये। सर्वस्वदक्षिणावाला यज्ञ होने से राजा ने घर में भोजन बनाने के लिए मिट्टी के बर्तन छोड़कर सर्वस्व दान कर दिया। क्या पाठक इस महान् दान की कल्पना कर सकेंगे?

इस निष्काचन स्थिति मे वरतन्तु ऋषि के शिष्य कौत्स, रघु के पास याचक बनकर आए। उस समय सोने के पात्रों के स्थान पर रघु मिट्टी के पात्र मे अर्घ्य लेकर बैठे थे। रघु ने ब्रह्मचारी का स्वागत कर ऋषि का कुशलक्षेम पूछा। अन्त मे रघु ने कहा, "आपके आने से ही मन तृप्त नही, कुछ अपेक्षा या आज्ञा जानने की भी इच्छा है।" कौत्स ने कहा, "आप जैसे पुरुषो के राज्य मे अकुशल कैसे ? सूर्य के रहते अधेरा कैसे ? पूज्यो की भक्ति से आप अपने कुल में सबसे आगे हैं। मैं ऐसे समय आपके पास याचना लेकर आया, इसका मुझे दु ख है। सत्पात्रो को धन बाटकर आप शरीर से सुशोभित हों, दानयज्ञ से उत्पन्न निर्धनता आपको शोभा ही देती है। मैं गुरु-दक्षिणा के लिए आपसे कुछ मागने आया था, पर अब यह याचना अन्यत्र ही करूगा।"

रघु ने उन्हे रोक कर पूछा, "गुरु को कितनी दक्षिणा देनी है ?" कौत्स ने कहा, "मेरे गुरु ने मेरी भक्ति ही दक्षिणा मे मागी थी। परन्तु मेरे बार-बार पूछने पर उन्होंने कहा है कि चौदह विद्याओ में करोडगुना धन लाओ। आपके मिट्टी के अर्घ्यपात्रो को मैंने देख लिया है, अत अब मैं अन्यत्र यजमान ढूढता हूं।" इस पर रघु ने कहा, "एक वेदपारगत विद्वान् मेरे पास आकर भी निराश होकर वापस लौटे, यह निन्दा का अध्याय मेरे चरित्र मे न जोडें। दो दिन का समय दें। आपके अर्थ की सिद्धि का उपाय करता हूं।" ब्रह्मचारी ने विनय स्वीकार की। दूसरे दिन प्रात काल कुबेर पर धावा बोलने की तैयारी कर रघु रथ मे ही सोये।

देवो के कोषाध्यक्ष कुबेर को रघु से युद्ध स्वीकार नही था, अत उन्होंने रात मे ही अमित धन रघु के पास भिजवाया। रघु ने उसे कौत्स के लिए आया धन मानकर सभी कौत्स को अर्पित किया, परन्तु कौत्स ने दक्षिणा से अधिक लेना पूर्णतया अस्वीकार कर दिया। इस कारण अयोध्यावासियो को रघु और कौत्स दोनो ही सराहनीय लगे। गुरु की दक्षिणा से अधिक न लेने वाला याचक और याचना से अधिक देने वाला दाता। भारतीय परम्परा मे भी दोनो ही अनुकरणीय माने गये।

कौत्स वाछित दक्षिणा पाकर प्रसन्न हुए। उन्होने कहा, "राजा, तुम्हारे हित के लिए आशीर्वाद देना पुनरुक्ति मात्र होगी, क्योकि तुम्हारे पास कोई अभाव नही है। तुम्हे आत्मसदृश गुणो वाला पुत्र प्राप्त हो, यही परमात्मा से प्रार्थना है।"

महाकवि कालिदास ने सूर्यवश को 'रघुवश' कहकर पराक्रमी, दिग्विजयी तथा दानी रघु का नाम निस्सन्देह अमर कर दिया। राम इन्ही रघु के प्रपौत्र थे। रघु के बाद के वशजो को रघुवशी नाम से अधिक पहचाना जाता है। राम को तो अनेक स्थानों पर राघव नाम से ही पुकारा जाता है।

रघु का विश्वजीत यज्ञ 'सर्वदान' (पीछे शिष्य) —"महाराज ! आप तो अपने कर्म से ही शोभित हैं। अर्घ्य के लिए भी मिट्टी का पात्र शेष है। फिर आप दक्षिणा ?

किरण-९

दशरथ

रघु के पुत्र अज अपने पिता से सौन्दर्य, पराक्रम, ओजस्विता, शक्ति आदि मे कम नहीं थे। अज को समस्त शस्त्रशास्त्रो की शिक्षा देने वालो ने स्वयं गौरव का अनुभव किया। वह इतने प्रतिभाशाली तथा दक्ष थे। विवाहयोग्य आयु के होने पर विदर्भराज भोज की ओर से उन्हे भी स्वयवर का आमत्रण आया। पिता ने भी उत्तम योग जानकर अनुमति दी। कुछ सेना तथा मन्त्रियों को साथ लेकर अज स्वयवर के लिए चल पडे।

एक सरोवर के पास सेना का पड़ाव था। सब लोग दोपहर के भोजन की तैयारी मे थे। सरोवर मे क्रीडारत एक जगली हाथी सेना मे त्रस्त होकर बाहर आया। सेना मे भगदड मच गई। मत्री भी घवडा गये। अज अविचलित रहे। उन्होंने हाथी के मस्तक पर बाण मारा और देखते-देखते हाथी जमीन पर गिरकर मर गया। अज के शौर्य व साहस से प्रसन्न होकर गधर्वों ने उन्हें 'समोहन अस्त्र' की शिक्षा दी।

विदर्भ पहुचने पर वहा भी उनका अपने ढंग का निराला स्वागत हुआ। कामरूप, अग, कलिंग, अवन्तिका आदि नरेशो के होते हुए भी विदर्भकुमारी इन्दुमती ने अयोध्या के राजकुमार अज के गले मे माला डाल दी, अत सभी राजा ईर्ष्यावश क्रोधित हुए। जब इन्दुमती को लेकर अज ने विदर्भ की सीमा पार की, सबने मिलकर अज पर धावा बोल दिया। इन्दुमती को मत्रियो की रक्षा मे सौंप कर, अज ने अकेले ही सबका प्रतिकार किया। अन्त मे सभी को समोहनास्त्र से मूर्च्छित कर अज इन्दुमती के पास आये। जाते समय रक्त से भीगे हुए बाण की नोक से अज ने सभी पराजित राजाओ के मस्तक पर लिख दिया था—"मैंने आपका यश हरण किया है, प्राण नही। आप अपने-अपने घर लौटिये। घर पर आपकी रानिया आपकी बाट देख रही हैं।"

अयोध्या पहुचने पर रघु ने स्वय अज का स्वागत किया। और जैसी सूर्यवश की परम्परा थी, पुत्र के योग्य होते ही उन्हे राज्य सौंप कर रघु ने वानप्रस्थ लिया। अज के बहुत आग्रह करने पर वे नगर के बाहर कुटिया मे रह कर अज का कर्तृत्व सराहते रहे। नगर के निकट रहने पर भी वानप्रस्थी रघु ने लक्ष्मी का भोग नही किया। अनेक वर्ष बिताने के बाद रघु ने शरीर त्यागा।

अज के राजा बनने मे पृथ्वी बहुरत्न प्रसविनी हुई। इन्दुमती ने भी वीर पुत्र को जन्म दिया। दसो दिशाओ मे ख्यातिमान यह बालक दशरथ कहलाया। राम को जन्म देकर दशरथ ने स्वय को तथा जगत को कृतार्थ किया।

सत्यसधता, पौरुष, पराक्रम, उदारता और लोकव्यवहार आदि अनेक गुणो

मे दशरथ रघुवंश के अनुरूप ही थे। कैकय देश (अखण्ड भारत का सरहद प्रान्त) से लेकर कामरूप यानी वर्तमान आसाम तक नरलोक के राजा उनका लोहा मानते थे। इनके बीच जब कभी कोई विवाद या युद्ध हुआ तो दशरथ से ही बीच-बचाव की तथा सहायता की अपेक्षा रहती थी। न्यायपक्ष देखकर दशरथ यह सहायता करते भी थे। देवगण कभी-कभी दशरथ की सहायता लेते थे।

उस समय की प्रथा के अनुसार अन्यान्य कारणों से दशरथ ने भी अनेक विवाह किये थे। परन्तु किसी भी व्यवहार से वे स्त्रीलम्पट सिद्ध नहीं होते। वाल्मीकि रामायण का बारीकी से अध्ययन करने से, ठीक इसके विपरीत ही निष्कर्ष निकलता है।[1] राम के पूर्व ईश्वरीय शक्ति विशेष रूप से प्रकट करने वाले परशुराम के कारण यद्यपि सभी सात्त्विक, सज्जन, क्षत्रिय राजागण आमद अपना पूर्ण सामर्थ्य प्रकट न कर पाते हों। और इसीलिए रावण का होना संभव हुआ होगा। यदि योग्य संयोजन हुआ होता तो अन्य राजाओं समेत दशरथ स्वयं भी रावण से निबट लेते। घटना हजारों वर्ष पुरानी है और उपलब्ध सामग्री कम है, अतः सही-सही दिशावर्णन करना कठिन है। फिर भी रघुवंश की संपूर्ण तेजस्विता, मनस्विता पुरुषार्थ, साहस, प्रामाणिकता, शब्दपालन, औदार्य, दानशीलता तथा त्याग, संयम आदि सभी गुण चरम सीमा तक रामजीवन में उतारने वाला दशरथ इन गुणों से रहित था यह कहना मानव वंश, विज्ञान अथवा जीव-विज्ञान के पूर्णतः विपरीत है, यह कोई भी स्वीकार करेगा।

इस पृष्ठभूमि में रामकथा पढ़ने से पूर्व हम दशरथ के जीवन का अवलोकन करें। कैकेयी वाली घटना की ओर उंगली दिखाकर उसी परिप्रेक्ष्य में हर बात को आंकने का प्रयत्न न करें। कैकेयी के साथ हुई बात को भी यदि हम पूरे सन्दर्भ में समझने का प्रयत्न करें तो हमें दिखाई देगा कि व्यावहारिक कारणों से सर्वाधिक प्रिय रानी को एक ही झटके में सदा के लिए दूर करने की कठोरता दशरथ ही प्रकट कर सकते थे।

भवितव्यता कितनी प्रभावी होती है, इस दृष्टि से श्रवणकुमार की कथा ध्यान

---

1 इसी कारण दशरथ की मृत्यु पर गुरु वशिष्ठ ने भरत को शोक करने से रोका। गोस्वामीजी का कहना है कि दशरथ शोक करने योग्य भूपति नहीं हैं। उन्होंने ठीक ही लिखा है—

सोचनीय नहि कौसल राऊ। भुवन चार दस प्रगट प्रभाऊ॥
भयऊ न अहइ न अब होउनहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
विधि हरि हरु सुरपति दिसि नाथा। बरनहि सब दसरथ गुनगाथा॥
कहहु तात केहि भांति कोउ करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥

(रामचरितमानस २-१७)

देने योग्य है। अंधे वानप्रस्थी माता-पिता का पुत्र श्रवण उनकी सेवा मे रहता था। जिस नदी के किनारे उनका आश्रम था, वही पर शिकार खेलते-खेलते दशरथ आ पहुचा। रात मे पानी पीने के लिए जानवर के आने पर उसे मारने का विचार लेकर दशरथ एक पेड पर जाकर बैठे। सयोगवश श्रवणकुमार जल भरने के लिए नदी पर आया। नदी मे घडा डुबोने से उसमे से आवाज निकली, उसकी ओर सकेत कर दशरथ ने जानवर समझकर बाण छोडा। दशरथ शब्दवेधी बाणविद्या मे निपुण थे। श्रवण बुरी तरह घायल हो गया। उसकी चीत्कार से दशरथ घबडाये। पेड से उतरकर वे मुनिकुमार के पास गये। श्रवण से बातचीत करने पर वे अत्यधिक दु खी तथा लज्जित हुए। मर रहे श्रवण के कहने के अनुसार वे जल लेकर उसके माता-पिता के पास गये। माता पिता के पूछने पर दशरथ ने साफ-साफ बात बता दी। दशरथ ने किसी प्रकार अपराध छिपाने के लिए असत्य बोलने का प्रयास नही किया, सूर्यवशी राजा जो था। माता-पिता को उनके आग्रह के कारण दशरथ श्रवण के पास ले गये। वृद्ध माता-पिता की विह्वलता किसी भी पत्थरहृदय व्यक्ति का भी हृदय पिघला सकती है। उस स्थिति मे उन्होने दशरथ को शाप दिया—"तुम भी पुत्रशोक से मरोगे।"

दशरथ तो पुत्रहीन थे अत. दु खद स्थिति मे दशरथ को यह शाप वरदान जैसा लगा। "पुत्र का मुह न देखने वाले के लिए आपका शाप वरदान ही है।" (रघुवश ९ ८०) इसलिए मैंने सयोग या होनी कहा। यदि उल्टा सोचा जाये तो विचित्र अर्थ निकलता है कि न दशरथ श्रवण को मारते और न राम का ही जन्म होता। इसीलिए अपने देश में मान्यता है कि अनजाने मे होने वाली गलती, उस कारण होने वाले कष्ट, यह किसी ईश्वरीय कृपा का रूपान्तर होते हैं। अत ऐसे समय में मन शान्त रखना चाहिए। श्रवण के माता-पिता ने स्वय भी अग्निप्रवेश किया और दशरथ अयोध्या लौटे।

वाल्मीकिजी ने दशरथ के राज्यशासन का बहुत उत्तम वर्णन किया है। कौशल राज्य को दशरथ ने पूर्ण मर्यादा मे रखा। उसके कारण प्रजा अधिक गुणवान हुई। कर्मचारियो के कष्ट कम करने वाले नरेशो मे दशरथ का नाम उल्लेखनीय है। दशरथ के समय उनके राज्य मे रोग भी प्रवेश नही कर सकता था, फिर वैरी कैसे प्रवेश करते ? समदर्शिता मे वरुण, दान मे कुवेर तथा दुष्टदमन मे यम के समान दशरथ थे। वे राज्य की समृद्धि के लिए सदा ही यत्नशील रहते थे। कालिदास ने यहा तक लिखा है कि न आखेट, न मदिरा, न यौवनसम्पन्न स्त्री उन्हे मर्यादा से बाहर आकर्षित कर सकी। उन्होने कभी दीनता ग्रहण नही की, न ही हसी मे कभी मिथ्या बात कही अथवा वैरियो मे कटु बात कही।

दण्डकारण्य मे शबरासुर दैत्य बहुत उद्दण्ड हो गया था। बीच-बीच मे वह देवताओ पर भी आक्रमण करता था अत इन्द्र ने उस पर धावा बोला। देवताओ की

सहायता करने के लिए राजा दशरथ को बुलवाया गया। उस समय कैकेयी भी उनके साथ गयी। शबरासुर से दशरथ का भीषण युद्ध हुआ। दोनों बेजोड़ योद्धा थे। फिर भी एक बार थोड़े समय के लिए राजा दशरथ अचेत हो गये। कैकेयी ने स्वयं बाणवृष्टि कर शबरासुर को मूर्च्छित किया तथा रथ की बागडोर अपने हाथ में लेकर कुशलता से दशरथ को युद्धस्थल से बाहर ले गई। थोड़ी देर में चेतना होने पर दशरथ वापस मैदान में आये और अन्त में शबरासुर का उन्होंने वध किया। कैकेयी के गुण से प्रभावित होकर दशरथ ने कैकेयी को दो वर मांगने को कहा। विनयशील तथा स्नेहमयी कैकेयी ने तत्काल वर न मांगकर बात टाल दी।

परन्तु दशरथ उन वरों से बंधे थे। दिये हुए वचनों का पालन क्षत्रियों की, विशेषकर रघुकुल वालों की रीति थी। वचन कैकेयी को या अन्य किसी को भी दिया गया हो, उसका पालन होना ही चाहिये। राम के अभिषेक के समय उनके सामने यही धर्मसंकट उत्पन्न हुआ था। इस प्रसंग का आगे यथास्थान वर्णन होगा ही।

अनेक गुणों से युक्त अत्यन्त कुशल प्रशासक, योद्धा, प्रजा के लिए पितृवत् ऐसा होने पर भी सन्तानहीनता यही दशरथ का सबसे बड़ा कष्ट था। इसी निमित्त अनेक प्रकार विचार-विनिमय के बाद विविध प्रकार के यज्ञों का आयोजन किया गया, उनके परिणामस्वरूप सारे संसार को प्रकाशित करने वाले मानवेन्द्र राम इस सूर्यवंश में उत्पन्न हुए।

उपसंहार

वाल्मीकिजी द्वारा दिये गये सूर्यवंश परंपरा का वर्णन पढते समय एक बात सहज ही ध्यान मे आती है कि तेजस्वी महापुरुषो की यह दीपमाला विश्व इतिहास मे अनुपम है। इनमे किससे किसको बडा कहे यह तुलना करना कठिन हो जाता है। एक-न-एक गुण मे प्रत्येक वीर पुरुष पिछले वालो को पीछे डाल देता है। स्थानाभाव के कारण लेखक को विवश होकर वाल्मीकि द्वारा दिये गये नामो मे से केवल १०-१२ के चरित्रो पर और यह भी सक्षेप मे प्रकाश डालना संभव हो पाया। स्वयं भागवतकार ने सूर्यवंश के १०० नामो की तालिका देने के बाद भी यही कहा कि यह अति सक्षिप्त सूची है।

"श्रूयता मानवो वंश. प्राचुर्येण परंतप।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्ष शतैरपि।"

इस स्थिति मे अल्पज्ञ लेखक को पाठक क्षमा करेंगे।

वाल्मीकि रामायण, विष्णुपुराण आदि ग्रथो ने भी अपने-अपने विषय से सबधित सूर्यवंश की छोटी-बड़ी सूची दी है फिर भी पुराणो की शैली के अनुसार यह बहुत छोटी है। वाल्मीकि रामायण मे राम से पूर्व ४५ नाम हैं, विष्णुपुराण मे ६० हैं। यदि हर एक राजा की आयु १०० साल से अधिक मानी जाये तब भी राम से पूर्व का इतिहास केवल ६,००० वर्षो का होता है। परन्तु अपना राष्ट्र-जीवन तो इससे कई गुना अधिक प्राचीन है। अतः रामजीवन से सबधित या उसे प्रभावित करने वाले कुछ ही कुलपुरुषो का उल्लेख इन ग्रथो ने किया है। इस आलोक मे तो हम केवल आठ-दस पुरुषो का ही चरित्र दे पाये हैं। सूर्यवंश की तालिका (अधिकृत) भागवत से उद्धृत ऊपर के वर्णन के अनुसार कल्याण के रामायण अक मे पृष्ठ २८८ पर उपलब्ध है। परन्तु रोचक बात यह है कि उसका सग्रहकर्ता एक विदेशी विद्वान् (श्री वेडर) है। क्या हम भी अपने पूर्वजो को समझने का प्रयत्न करना चाहेंगे? यह प्रेरणा जाग्रत हो यह भी इस आलोक को देने का एक हेतु है।

साधारणतया पुराणो मे अनेक राजाओ ने हजारो वर्ष राज्य किया ऐसा हम पढ़ते हैं। यह सख्या गणित-शास्त्र के हिसाब से समझना उचित नही, क्योकि पुराण गणित के ग्रंथ नही है। जैसे रामचरितमानस मे चद्र पर काला दाग यह रामभक्ति का द्योतक है, ऐसा हनुमानजी ने स्पष्टीकरण किया है। राम की

श्यामलता का दाग चन्द्र अपने हृदय में लिये हैं। यह भक्ति का वर्णन है, साहित्य का वर्णन है, वैज्ञानिक वर्णन नहीं। विज्ञान का विश्लेषण भिन्न प्रकार का होगा। अभी तक किसी विद्वान् ने पौराणिक आकड़ो के संबंध में अधिकृत टिप्पणी नहीं की है। हम इतना ही विचार करें कि हजारो वर्ष राज्य की बात गणित शास्त्रानुसार होती तो प्राचीन काल में 'जीवेम शरद शतम्' ऐसी प्रार्थना नहीं की गई होती। अतएव साधारणतया सौ वर्ष या उसके आस-पास की आयु मानना ही उचित है। हो सकता है यह वर्णन दीर्घकाल का सूचक हो। वैसे परिशिष्टों में एक दो दृष्टिकोण दिये गये हैं, जो केवल जिज्ञासा वृद्धि के लिए है। संभव है इसी में से शोध-छात्रों को कुछ दिशादर्शन हो।

साथ ही पुराण या प्राचीन ग्रन्थ पढ़ते समय हमें एक बात और ध्यान में रखनी होगी कि सूर्यवंश के समान ही रावण, वसिष्ठ, जनक आदि यह वंश के नाम है। वस्तुत जनक यह इक्ष्वाकु वंश की ही एक शाखा है तथा यह इक्ष्वाकु के पुत्र निमि से चल पड़ा है। निमि का पुत्र विशेष विधि से पैदा हुआ था इसलिए उसे मिथि कहते हैं। उसी ने मिथिला की स्थापना की थी। इस मिथि का पुत्र जनक हुआ जिसके नाम से यह वंश आगे चला। 'वंशो जनकानाम्' ऐसा वायु पुराण में उल्लेख है। सीता के पिता सीरध्वज जनक थे। वे वरिष्ठ जनक कहलाते थे।

भो भो राजन् जनकाना वरिष्ठ।
प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसु। वा रा ७१-४

प्रथम जनक के बाद में आयस आगे सब जनक। इसी प्रकार लोगों को रुलाने वाला रावण वंश कहलाता था।

इसी प्रकार उस काल में बहु विवाह प्रथा के अनेक कारण हो सकते हैं। आज के संदर्भ में यह प्रथा अन्याय मूलक अत लाछन याय लगती हो परन्तु उस काल में राजघरानों में यह एक प्रचलित पद्धति थी। सन्तान न होने से दूसरा विवाह, नये राज्यों से संबंध जोड़ने के लिए विवाह प्रतिष्ठा के लिए विवाह, राजाओं में प्रतिस्पर्धा के कारण विवाह, इत्यादि कितने ही कारण बहु-विवाह हुआ करते थे, दशरथ के साथ भी यही हुआ हो। परन्तु दशरथ के प्रसंग में हमने जो गोस्वामी के प्रणसाद्गार उद्धृत किये है उनसे पाठक परिचित होगे। राम के अत्यधिक एकनिष्ठ भक्त होने के कारण वे राम की ही प्रशंसा करते नहीं अघाते, यह तो समझ में आने लायक बात है, पर उनके आराध्य राम को वनवास देने वाले पिता का भी 'ऐसा राजा कभी हुआ न होगा' ऐसा वर्णन करना यह निश्चित रूप से दशरथ के संबंध में शंका करने वाले सभी के लिए विचारणीय प्रश्न है।

इस वंशावली को पढ़ते समय यह बात भी ध्यान में आती है और वह है भारत की प्राचीनतम भौगोलिक व्याप्ति की। एक सामनतागत अथवा राजनैतिक

इकाई के नाते स्याम देश से गाधार तक की भूमि अनेक सूर्यवशी राजाओ के अन्तर्गत थी। इक्ष्वाकु ने स्वय उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के रूप मे दो भागों मे भारत की शासन-व्यवस्था अपने पुत्रो के द्वारा चलवाई थी। बाद मे भी पृथु, माधाता, सगर, रघ, अज, दशरथ सभी का भारत के उत्तर से दक्षिण एव पूर्व से पश्चिम छोर तक प्रभाव था। भारत को अग्रेजों ने राजनैतिक एकता प्रदान की ऐसा मानने वालो के लिए यह एक उत्तम औषधियुक्त सामग्री है।

सूर्यवश के विवरण यह स्पष्ट कर देते हैं कि यद्यपि उस काल मे राज-तत्र था, तब भी राजा भोगी न होकर जनसेवक तथा जनरजक के नाते भारतीय शासक प्रजाजनो को पिता जैसा प्रेम दिया करता था। इसीलिए जनता भी उसे पितृवत् प्यार करती थी। ये राजा गुण मे सभी एक दूसरे से बढचढकर थे ही। महान् सूर्यवश मे जन्मे राम को यह सभी गुण मानो अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार मे ही प्राप्त हुए थे। उसी राष्ट्र-निर्माता का प्रेरक जीवन हम अगले आलोको मे पढेंगे।

आलोक-४

बालकाण्ड

किरण-१

रामजन्म के पूर्व की स्थिति

राम की दोनो कुल-परम्पराओ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेकानेक गुणो से युक्त मर्यादा पुरुषोत्तम राम का व्यक्तित्व कोई आकस्मिक घटना नही था। इक्ष्वाकु कुल मे इस प्रकार का पुरुष उत्पन्न होना यह जीवशास्त्रीय, समाजशास्त्रीय अनिवार्यता रही है। महान व्यक्तियो के लिए प्रसिद्ध सूर्यवंश मे अवगुणी सन्तान की अपेक्षा नही की जा सकती। ऐसा उत्तम कुल भाग्य मे ही मिलता है।

गुण या अवगुण ऊपर से नीचे जाते है।[1] हम राम-भरत जैसी सन्तान तो चाहते है पर रघु, हरिश्चन्द्र, दशरथ जैसे गुण अपने मे लाना नही चाहते, इसलिए वाल्मीकि द्वारा लिखित ग्रन्थ के प्रारम्भ मे कुछ भिन्नता रखकर राम के बिखरे हुए पूर्वजो की संक्षिप्त झांकी हमने पाठको के सामने प्रस्तुत की है। अब राम के आने के लिए मंच तैयार हो गया है। हम उसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करे। जिस प्रकार राम का आगमन यह समाजशास्त्रीय अनिवार्यता थी वैसे ही वह ऐतिहासिक आवश्यकता भी थी।

परशुराम के पराक्रम के कारण भारत का सत्प्रवृत्त क्षत्रिय समाज या शासकवर्ग कुछ आतंकित हो गया था। जब मनुष्य के पौरुष को पराक्रम का अवसर नही मिलता तो वह किसी मात्रा मे विलास मे उसे व्यय करता है। साधारणतया नरलोक के राजागण इसी दिशा मे बढ गये थे, मानो भारत का क्षात्र-तेज लुप्त हो गया हो। स्वाभाविक ही रावण जैसे कुशल राक्षस के नेतृत्व मे उसके नातेगोतेदार बहुत सक्रिय हो उठे। कहा रावण की लंका और कहा अवध या जनकपुरी? रावण के सवधी मारीच, सुबाहु आदि अपनी मा ताडका के नेतृत्व मे ताडका वन मे (आज-

---

१ इसीलिए जब आयु मे वृद्ध लोग सदा नवीन पीढी पर आरोप करते रहते हैं तो उन्हें यही कहना पडता है कि वह सन्तान अपनी है, अपने जैसी है। समूचे समाज मे अनुशासनहीनता का वातावरण पनपे और सामज चाहे कि उसकी सन्तान अनुशासनबद्ध हो तो यह कैसे सम्भव है?

कल जिसे छपरा जिला कहते हैं) अड्डा जमाये हुए थे। यह स्थान अयोध्या एवं जनकपुरी के बीच मे था। इसी प्रकार दण्डकारण्य का उत्तरी द्वार रावण ने खर, दूषण तथा त्रिशिरा के नेतृत्व मे सुरक्षित किया था।

एक ओर रावण का यह प्रबल योजनाबद्ध सगठन और दूसरी ओर थी नरलोक और देवलोक की जैसे-तैसे जीवित रहने की नीति। देवलोक को भोगभूमि कहा गया है। अत वहा के लोग स्वभाव से ही भोगी थे, जब कि राक्षस भोगवादी थे। भोगवादी व्यक्ति कर्मठ तथा उद्यमशील होता है परन्तु भोगी तो भोग करना ही जानता है। देवलोगों ने स्वयं कोई स्वतत्र अथवा सतत युद्ध नही किया, उनके राजा इन्द्र (वैदिक इन्द्र नही) को तो अपने सिंहासन की ही पडी रहती थी।

एक बार तो रावणपुत्र इन्द्रजित इस इन्द्र को नागपाश में बाधकर ले जा रहा था। ब्रह्मा ने बीच-बचाव किया तब जैसे-तैसे छूट कर आया था। शेष अष्ट दिग्पाल भी जैसे तैसे रावण से जान बचाये फिरते थे। केवल यम था जिसे बताया गया कि वह रावण को न मारे, क्योंकि उस वश का जडमूल से नाश होना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में रावण कितना अनियन्त्रित होकर सिर पर चढ रहा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। वस्तुत आपदाए किसी राष्ट्र का नाश नही करती। अपितु विलासिता, भोगेच्छा, शैथिल्य, साहसहीनता, आत्मविश्वास का अभाव आदि अवगुण राष्ट्रो के नाश का कारण बनते हैं। जीवन में सादगी शक्ति की द्योतक है और जीवन मे, बोलचाल मे, भय की वाणी दुर्बलताजन्य होती है। इस स्थिति में रावण की सत्ता को जड से समाप्त करने वाले पुरुष की आवश्यकता थी।

यह पुरुष कौन हो? परशुराम के कारण तत्कालीन राजाओ मे तो ऐसा साहस किसी मे था नही। इस कार्य के लिए स्वय स्फूर्ति से आकाक्षायुक्त और योजनाबद्ध पराक्रम करने वाले नवीन युग-पुरुष की आवश्यकता थी। अत ऐसे पुरुष के जन्म के लिए वातावरण बनता गया। मानो समस्त समाज मे, समाज-धुरीणो मे, ऋषि-मुनियो मे, राजाओ व सामन्तो मे यही एक चाह पैदा होती गई। उसी से विशिष्ट प्रकार की सन्तान प्राप्ति के लिए, दशरथ ही कोई यज्ञ करें, यह निर्णय हुआ। सूर्य-वश को ही इस योग्य माना गया क्योंकि रावण का नाश नरलोक के वीर पुरुष द्वारा ही होना था। देवलोक भोगभूमि होने से इसके अयोग्य था।

इस प्रकार पौरुषपूर्वक विचारमथन के लिए यज्ञो मे अश्वमेध ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। यह केवल पान्त्रिक विधि या हवनमात्र नही थे। 'मेध' धातु के मेधा, हिंसा तथा सगति तीन अर्थ होते है। विविध शक्तियो की सगति बिठाना या मेल करना, बुद्धि बढाना या ठीक करना तथा इसके द्वारा विघ्नकर्ता का नाश करना, ये सभी अर्थ अश्वमेध से निकलते थे। ऐसे कर्म मे बाधक मानवीय शत्रु का हटाना यह नरमेध का अर्थ है। तात्पर्य यह है कि यह यज्ञ एक प्रकार से योजनाबद्ध सम्मेलन होते थे जिनमे विविध विषयो पर चर्चा होती थी अथवा योजना बनती थी।

दशरथ के अश्वमेध में सभी सत्प्रवृत्त राजागण, ऋषिमुनि तथा देवलोक के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। किस-किस को बुलाये, इस सबंध में वसिष्ठ ने कहा कि जो धार्मिक राजा हो उसे बुलाओ, केवल ब्राह्मणों के ही नही शूद्रो के भी अग्रणी बुलाये गये थे। दशरथ के विशेष स्नेही राजाओं मे मिथिला के जनक, अंगदेश के रोमपाद, दक्षिण कोशल के भानुमान, कैकय के राजसिंह, मगध के प्राप्तिज्ञ, काशी के राजा आदि को स्वयं सुमंत्र ने जाकर निमंत्रण दिया था। पूर्व देशों के अतिरिक्त पश्चिम में सिंधु सौवीर एवं सौराष्ट्र के राजा भी निमंत्रित थे। यहां तक कि दक्षिण भारत के राजा भी बुलाये गये थे।

द्राविड सिंधु सौवीरा सौराष्ट्रा दक्षिणापथा ।
वंगांग मगधा मत्स्या समृद्धा काशि कोशला ॥ १ १० २७

यज्ञ में हवन की वेलायें होती थी। हवन के पश्चात् भोजन के बाद अवकाश के समय विचार-विनिमयार्थ लोग एकत्र होते थे। वैदिक साहित्य में अश्वमेध से तात्पर्य राष्ट्र या समष्टि के संयोजन से भी माना गया है। राष्ट्रं वै अश्वमेध, वै राष्ट्र अश्वमेध आदि उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलते हैं। इस यज्ञ-द्वारा जहां दशरथ ने अनेक लोगों में अपना स्थान बनाया वहां भावी सन्तान के लिए सभी से आशीर्वाद प्राप्ति के साथ-साथ सहयोग की अपेक्षा भी प्रसारित की। इस यज्ञ से राजा के सब पाप (न निभाया हुआ उत्तरदायित्व या की हुई गलतियां) नष्ट होते हैं ऐसी धारणा थी। राजा का स्वयं का आत्मविश्वास भी ऐसे यज्ञों से जाग्रत होता है तथा सब ओर विश्वास का वातावरण भी उत्पन्न होता है।

अश्वमेध समाप्ति से आवश्यक वातावरण बना ही था। अतः अब पुत्रकामेष्टि यज्ञ की व्यवस्था की गई। ऋषि-ऋष्यशृंग विशेषज्ञ होने से इस यज्ञ के प्रधान पुरोहित थे। वे बहुत मेधावी तथा वेदों के ज्ञाता थे। मान्यता के अनुसार इस यज्ञ के द्वारा वांछित संतति प्राप्त की जा सकती है। उस समय विशेष औषधियों से युक्त चरु(पायस अथवा खीर)पकाया जाता था तथा भारत की परम्परा के अनुसार भगवान को अर्पण कर (यज्ञ के द्वारा) उसका सेवन कराया जाता था। राजा को स्वयं दो वर्ष संयम से रहना पड़ा था। रानियों ने भी व्रत रखा था। ऋषि ऋष्यशृंग ने भी राजा दशरथ को चार पुत्र होने का आशीर्वाद दिया था। यज्ञ में श्रौत-विधि से आहुति डाली गई थी। परिणामस्वरूप सभी देवता, सिद्ध, गंधर्व, महर्षि अपना-अपना भाग ग्रहण करने यज्ञ में पधारे। यज्ञसभा में उपस्थित होकर उन्होंने ब्रह्माजी से विचारमंथन भी किया। सभी ने ब्रह्माजी को रावण के अत्याचारों का स्मरण कराते हुए उसे मारने योग्य पुत्रप्राप्ति इस यज्ञ-द्वारा होनी ही चाहिये ऐसी इच्छा प्रकट की।

यहां पर कथा का अलौकिक भाग प्रारम्भ होता है। अब देवलोकवासी भी रावण से रक्षा चाहने लगे। ब्रह्मा ने सबकी विनती स्वीकार की। नरलोकवासी

तो पीड़ित थे ही, अत: उन्हे धारण करने वाली पृथ्वी ने गौ का रूप धारण किया और सर्वशक्तिमान से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने भी देवलोक के लोगों की सिफारिश की। परमेश्वर ने उनकी विनती स्वीकार कर पृथ्वी का भार हरण करने के लिए अवतार लेना स्वीकार किया। इस अलौकिक भाग को सभी माने यह आवश्यक नही। सूर्यवंश मे दशरथ को पुत्रप्राप्ति हो इस दृष्टि से विधिवत औषधियुक्त पायस तैयार कर रानियो को सेवन कराया गया था।

इदं तु नृपशार्दूलं पायसं देव निर्मित।
प्रजाकरं गृहाणत्वं धन्यं आरोग्यवर्धनम् ॥ १.१६.१६

दशरथ ने भी दो वर्ष का समय सयम से बिताया था। परन्तु जिस उद्देश्य से पुत्र अपेक्षित था, उस उद्देश्य की पूर्ति मे ऋषि-मुनियो के आशीर्वाद की तथा परमात्मा की कृपा की आवश्यकता थी। योग्य विधि से सब कुछ करने के पश्चात् भी फल का सम्बन्ध किसी तीसरी शक्ति से होता है। उसे क्या नाम देना चाहिये यह प्रत्येक की अपनी-अपनी श्रद्धा का विषय है—चाहे उसे 'परमात्मा' कहे या 'काल' या अन्य कोई नाम दे। भारत में उसे 'परमात्मा की कृपा' कहा गया है।

परन्तु इस अवसर का लाभ उठाकर ब्रह्मा ने एक महत्त्व का काम किया। उन्होंने देव लोगो से कहा कि परमात्मा इसी शर्त पर अवतार लेंगे कि आप लोग भी अपनी भूमिका बदलेंगे। पीछे कहा गया है कि पुण्यसंचय से जीव देवलोक मे जाता है वहा उसका काम केवल भोग भोगना होता है। परन्तु कर्म के लिए उसे मनुष्य-जन्म ही लेना पड़ता है। मनुष्य रावण का वध मनुष्य द्वारा ही हो सकता था इसलिए परमेश्वर भी मनुष्य रूप मे ही रावण को मार सकते थे, चमत्कार से नही। इसलिए ब्रह्माजी ने देवों से कहा कि वे वानरलोक मे जाकर अपने समान वानररूपधारी पुत्रो की सृष्टि करें।

सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रास्तुल्य पराक्रमान्। १ १७ ६
जनयामासुरेवन्ते पुत्रान्वानररूपिणः। १.१७.८

ब्रह्मा का यह परामर्श विचारणीय है। उन्होंने देवो को अन्य स्थानों पर जाने को नही कहा, क्योकि रावण के अत्याचारो का सबसे अधिक सहारा तो वाली ही था। लका जाने के पूर्व बाली का नाश तथा वानरो की सहायता रावणनाश मे सबसे महत्त्व की बात थी।

ब्रह्माजी ने देवताओ से जिस प्रकार के वानर पुत्र पैदा करने के लिए कहा वह भी जानना तथा उस पर चिन्तन करना यह पाठको के लिए लाभदायक रहेगा। उनके गुणो का वर्णन करते हुए ब्रह्मा ने कहा है कि वह बलवान, इच्छारूपी, माया जानने वाले, वायु के समान गतिशील, बुद्धिमान, अजेय, नीतिज्ञ, विविधि उपायो के जानकार, अस्त्रविद्या सम्पन्न तथा दिव्य शरीरधारी हो। उपर्युक्त गुणो से युक्त 'वानर' शब्द से वाल्मीकि का क्या तात्पर्य हो सकता है, ,यह समझने

मे कठिनाई नही होगी। सहस्रो वर्ष पश्चात् भी किसी वानर टोली मे जीवशास्त्र की दृष्टि से क्रमबद्ध विकास होते-होते इतने गुणो से युक्त एक नही तो सहस्रो वानर तैयार होना यह शास्त्र तथा तर्क के विरुद्ध लगता है। वे लोग वनवासी थे, अत वनचर कहलाने होंगे।[1] यहा तक कि रीछ गोलांगूल भी मनुष्य ही थे। वाल्मीकि ने लिखा है—जो देवता गोलांगूल के रूप मे आये थे वे देवतावस्था मे अधिक पराक्रमी थे। वे दांतों तथा नखो से लड़ने के साथ सभी अस्त्रविद्याएं भी जानते थे—

नखदंष्ट्रायुधा सर्वे सर्वे सर्वास्त्रकोविदा । (१ १७ २६)

रामजन्म के पूर्व उनकी सहायता के लिए वानर सब जगह फैल गये थे।

किरण-२

राम-जन्म तथा शिक्षण

यज्ञदीक्षा से निवृत्त होकर राजा दशरथ नैमिषारण्य मे कुछ दिन रहने के बाद रानियां समेत अयोध्या को लौट आये। अन्य राजागण, ऋषि आदि अतिथिगण राजा दशरथ से योग्य सम्मान पाकर, वसिष्ठ तथा ऋष्यशृंग को प्रणाम कर विदा हुए। बाद मे राजा दशरथ ने ऋष्यशृंग मुनि की पूजा की तथा उन्हे अनेक प्रकार की भेंट प्रदान करते हुए उनका सम्मान किया। राजा से सम्मानित होकर मुनि ऋष्यशृंग भी अपने स्थान अगदेश के लिए चल पड़े। राजा दशरथ कुछ दूर तक उन्हे विदा करने गये। अन्य अनेक ऋषि होने के बाद भी पुत्र कामेष्टि के विशेषज्ञ के नाते राजा दशरथ ने स्वय अगदेश जाकर ऋषि ऋष्यशृंग को बुलाया था। अत उनकी विशेष विदाई भी स्वाभाविक थी।

यज्ञ समाप्ति को छ ऋतुएं बीत गई थी। बारहवें मास मे चैत्र शुक्ल नवमी के दिन मध्याह्न मे सारे ससार को दीप्त करने वाले राष्ट्रपुरुष राम ने जन्म लिया। उसके बाद कैकेयी ने भरत को जन्म दिया और तत्पश्चात् सुमित्रा ने लक्ष्मण एव शत्रुघ्न को। जन्म के तेरह दिन बाद चारो पुत्रो का विधिवत् नाम-सस्कार हुआ। तुलसीदासजी लिखते हैं कि ससार को रमाने वाले, आकर्षित करने वाले तथा स्वय भी लोकों मे रमण करने वाले कौशल्या पुत्र 'राम' कहलाये। ससार का भरण करने वाले 'भरत' तथा उत्तम लक्षणो के धाम लक्ष्मण कहलाये। शत्रुदमन करने वाले शिशु का नाम 'शत्रुघ्न' रखा गया।

अयोध्या जैसी श्रेष्ठ नगरी और दशरथ जैसे सुयोग्य शासक पर वाल्मीकिजी

---

1 बालकाण्ड के सत्रहवें सर्ग मे वानरों की योग्यताओं के सम्बन्ध मे और भी अधिक मननीय सामग्री मिलती है।

ने सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है—सरयू नदी के किनारे उत्तर कौशल नामक जनपद है। उसमें बारह योजन लम्बी तथा तीन योजन चौडी अयोध्या नगरी समस्त लोको मे विख्यात है। राजा का शासन धर्म एवं न्याय पर आधारित है, इसलिए वह महान् राष्ट्र की वृद्धि तथा रक्षा करने वाला है। अयोध्या मे पृथक् वस्तुओ के पृथक् बाजार है। वहा सभी प्रकार के वस्त्र, यत्र तथा अस्त्र-शस्त्रो का भी सचय है। खाद्यसामग्री की वहा कमी नही, अत 'अकाल' शब्द केवल शब्द कोष में मिलता है। सभी कलाओ के शिल्पी वहा विद्यमान हैं। नगर के बीच तथा चारो ओर अनेक उद्यान हैं। अयोध्या मे ऐसी भी नाटक मडलिया हैं जिनमें स्त्रिया ही काम करती हैं। पुरी के चारो ओर बहुत चौडी खाई खुदी हुई है, जिसे लाघना असभव है अत वह नगरी दुर्जेय है।

महलों का निर्माण रत्नो से हुआ है। गगनचुम्बी प्रासाद पर्वताकार लगते हैं। उनमे कुछ सात-सात चौक वाले महल हैं। कुछ महलो मे तीन-चार चौक तक रथ मे बैठकर पार किये जाने योग्य विशाल द्वार हैं। अयोध्या की जनसख्या बहुत घनी है। वहा की प्रजा दशरथ को बहुत प्यार करती थी। तीनो लोको मे राजा दशरथ दिव्यगुण सम्पन्न राजर्षि थे। वे बलवान, शत्रुहीन, मित्रयुक्त तथा इन्द्रियविजयी थे। धर्म, अर्थ एवं काम का सम्पादन कर वे अयोध्या का पालन करते थे। अत. पुरी के निवासी धर्मपरायण, निर्लोभी, सत्यवादी, बहुश्रुत तथा सन्तुष्ट जान पडते थे। अयोध्या मे कही कोई कामी, कृपण, क्रूर या नास्तिक नही मिलता था। वहा कोई भी व्यक्ति मुकुट या कुण्डलो से रहित नही था। सभी साफ सुथरे रहते थे। अपवित्र खाने वाला, दान न देने वाला, मन को न जीतने वाला, वहा कोई दीखता नही था। चारो वर्णों के लोग देवता तथा अतिथि के पूजक, कृतज्ञ, उदार शूर तथा पराक्रमी थे।

माताओ के प्यार-दुलार मे तथा पिता के सरक्षण मे राम, भरत आदि बडे होने लगे। वाल्मीकि रामायण मे कृष्ण के समान राम की बाललीलाओ का वर्णन नही है। प्रादेशिक भाषाओं मे यत्रतत्र कृष्ण के सबध मे सुनी-सुनाई बातें भिन्न सदर्भ मे राम के साथ जोड दी गई हैं। उदाहरण के लिए राम के मुख मे कौशल्या को विश्वरूप का दर्शन होना (रामचरित मानस) आदि। परन्तु वाल्मीकि सभी के लिए अनुकरणीय राम का युवावस्था से आगे का चरित्र सुनाना चाहते थे। अत उन्होंने बाल्यावस्था का सक्षिप्त (केवल एक सर्ग मे) वर्णन किया है।

यहा एक बात और भी ध्यान मे आती है कि राम के साथ लक्ष्मण का सहज प्यार तथा अनुयायित्व था। इसी प्रकार शत्रुघ्न की भरत के साथ घनिष्ठता थी, यद्यपि प्रत्यक्ष मे लक्ष्मण एव शत्रुघ्न सहोदर थे। राम भी लक्ष्मण को सीता से अधिक प्यार करते थे, ऐसा उल्लेख दो बार युद्धकाण्ड मे राम के मुख से ही आया है तथा वे प्रत्यक्ष मे अपनी देह भी लक्ष्मण के बाद ही छोडते हुए दिखाई देते

है। राम लक्ष्मण को बाहर विचरने वाला अपना दूसरा प्राण समझते थे—लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहि प्राणइवापर। (१ १८ ३०) लक्ष्मण के बिना राम को नीद नही आती थी। वे जब घोडे पर शिकार को जाते थे तो लक्ष्मण उनके शरीर की रक्षा करते हुए पीछे-पीछे जाते थे। श्रीराम को वनों मे सरयू के किनारे प्राणियों का शिकार करना पसन्द नही था। उन्हे उसका दु ख होता था। राम ने कहा है कि—

नात्यर्थमभिकाक्षामि मृगया सरयूवने।
रतिर्ह्येषा तुलालोके राजर्षिगणसम्मता ॥ (१ ५० १५)

केवल वह राजर्षिसम्मत था, इसीलिए व शिकार को जाते थे।

गुरु वसिष्ठ श्रीराम के कुलगुरु थे। उन्ही के आश्रम मे चारों भाइयो ने शस्त्र एव शास्त्र दोनो की शिक्षा उत्तम प्रकार से प्राप्त की। भगवत्प्रसादरूप जन्म लेने के कारण वे जन्मत प्रज्ञावान् तथा प्रतिभावान् थे। अत औरो की तुलना मे उन्होंने बहुत कम समय मे अनेक विद्याए प्राप्त की। घोडो की सवारी, हाथी की सवारी तथा रथ आदि चलाने मे भी वे निपुण हुए। श्रीराम धनुर्वेद का विशेष अभ्यास करते थे। बचे हुए समय मे पिताजी के काम मे हाथ बटाने मे तथा प्रजा की सभी प्रकार की पूछ-ताछ एव देख-भाल करते थे। इसीलिए वे छोटी आयु मे ही अयोध्या की प्रजा मे प्रिय होते चले गये। प्रजा ने उन्हे इसी आयु मे भावी राजा मानना प्रारम्भ कर दिया। राजा के पुत्र के नाते नही अपितु स्वय के व्यवहार से ही राम ने उनका हृदय जीता था।

शस्त्र-शास्त्र आदि की शिक्षा समाप्त होने पर वाल्मीकि द्वारा लिखे गये योगवासिष्ठ ग्रन्थ के अनुसार रामचन्द्र जी को देशदर्शन की इच्छा हुई। राजा दशरथ ने पूरे प्रबंध के साथ श्रीराम को तीर्थयात्रा को भेजा। राम केवल मामूली तीर्थ यात्री नहीं थे। तीर्थयात्रा से राम के मस्तिष्क मे विचारो की आधी पैदा हो गई। इस यात्रा मे उन्हे अनुभव हुआ कि शासक तथा प्रजा अच्छे एव सच्चे होने के बाद भी सब पर आतक छाया हुआ है। धर्म मे प्रजा का विश्वास कम होता जा रहा है, क्योकि धर्म के पालन के बाद भी अर्थ तथा आवश्यकताओ की रक्षा नही होती थी। अत कार्य भी निश्चितता से नही हो पाते थे। मानो प्रजा इहलोक के जीवन से ऊब रही हो। इसका कारण भी उन्हे पता लग गया। परन्तु जब विचारो का तूफान पैदा होता है तब केवल वह सात्त्विकता का ही पोषण नही करता अथवा वह केवल कर्मठता जगावे यह भी आवश्यक नही। मस्तिष्क मे वह द्वन्द्व भी उत्पन्न करता है। राम के साथ भी यही हुआ।

वे सोचने लगे कि यह सृष्टिजीवन किस प्रकार प्रारम्भ हुआ, इसका मध्य तथा अन्त क्या है? दृश्य जगत कितना सत् तथा कितना असत् है? क्या जीवन दु खमूलक है? इस प्रकार अनेक मौलिक प्रश्न क्रमबद्ध होकर मस्तिष्क मे निर्माण

होने लगे। निर्बल व्यक्ति के मन मे ऐसे विचार आने से वह पलायनवाद स्वीकार करता है। राम स्वय चिन्तनशील थे और उन्हे गुरु वसिष्ठ का मार्गदर्शन प्राप्त था। परिणामस्वरूप उनके मस्तिष्क का आन्दोलन समाप्त होकर उन्हे क्या करना चाहिये इसका वे ठीक-ठीक निर्णय कर सके। श्रीराम के प्रश्नो की गहराई को स्वीकार करते हुए गुरु वसिष्ठ ने कहा कि वास्तव मे दृश्य जगत पूर्णतया क्षणभगुर तथा नित्य परिवर्तनशील है। यह जलाशय पर उठने वाली लहरो के समान है। इन लहरो का उत्पत्ति-स्थान, उनका आधार तथा उनका विलयस्थान जलाशय ही होता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आदि, मध्य और अन्त उस परम तत्व मे ही निहित होता है। परन्तु मानव एक जीवमात्र इकाई है जिसके जन्म-मरण का सम्बन्ध उसके कर्म से जुडा है। अत नित्य निरन्तर रहने वाला अनादि, अनन्त सत्तत्व एक मात्र परमात्मा होने के बाद भी, उसी के अंश से निर्मित यह जगत् भी सापेक्ष्य सत्य है। इस सदा परिवर्तनशील (लगातार गतिशील) को 'जगत' कहते है इसकी धारणा के लिए (थामने या बांधने के लिए) धर्म निर्मित हुआ है। यह धर्म व्यक्ति से लेकर परमेष्टि तक सभी के व्यवहार का आधार होता है। सभी उसके अनुसार चलते है, जिसमे वे पूर्ण सत्य के साथ जुड सकें (विलीन हो)। इस कर्म का सबध प्रत्येक व्यक्ति से है। वह कभी भी कर्मरहित नही हो सकता। श्वास लेना भी तो कर्म ही है। उससे भी कीटाणु मर सकते है। अत. मनुष्य विवेक बुद्धि का उपयोग कर जान-बूझकर पाप न कर उत्तरदायित्व को निभाये। कर्म से भागना भी पाप ही है। अत कर्म का या जिम्मेदारी का सही निर्वाह ही सत्कर्म है; धर्म है तथा करने योग्य है। इसलिए राम कर्महीनता के चक्कर मे न पडते हुए विवेक का उपयोग कर धर्मानुसार कर्म करने को ही मुक्ति का मार्ग समझने लगे।

योग्य शिष्य को योग्य गुरु मिलने पर सही रास्ते पर चलने मे उसे कठिनाई नही होती। राम को जीवन-दिशा मिल चुकी थी। शिक्षा का यही परिणाम अपेक्षित रहता है। जिस ग्रन्थ मे राम एव वसिष्ठ के बीच का परिसवाद है उसका नाम 'योगवासिष्ठ' है। इस परिसवाद से राम के जीवन को नई दिशा मिली। यहा से उनके जीवन-सग्राम का श्रीगणेश हुआ।

साधारण लोग व्यक्तिगत जीवन तथा परिवार निर्वाह में आने वाली बाधाओं मे जूझने को जीवन-सग्राम कहते है। राम का सग्राम प्रत्यक्ष धनुषबाण से प्रारम्भ होता है और वह भी स्वय की रक्षा के लिए या किसी को पीडा देने के लिए नही, साधुओं की तथा धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने धनुष धारण किया था। इसीलिए अधिकाश भारतीय उन्हे अवतार भी मानते हैं।

किरण-३

वसिष्ठ और विश्वामित्र

राम की अन्यमनस्क स्थिति में राम वसिष्ठ के पास आवें, ऐसा सुझाव विश्वामित्र (जो वसिष्ठ के प्रतिद्वन्द्वी थे) ने दिया। प्रतिरोधी होने के बाद भी दूसरों के गुणों का आदर करने के लिए उदार-हृदय आवश्यक होता है। साधारण मानवीय जीवन में कोई अध्यापक, अधिवक्ता, चिकित्सक, अभियंता अपने साथी की योग्यता स्वीकार करने में भी सकुचाते दीखते हैं। मर्यादारहित अहंकार एवं छोटा मन, यही इस व्यवहार के पीछे कारण होते हैं।

अयोध्या और जनकपुरी के बीच अरण्य में विश्वामित्र का आश्रम था। वहां पर जब वे दीक्षा लेकर यज्ञ में बैठते थे तो रावण-द्वारा पोषित, मारीच, सुबाहु दैत्य आकर उनके यज्ञ में बाधा डालते थे। शस्त्र तथा अस्त्र के प्रयोगों में निपुण होने के बाद भी यज्ञ की दीक्षा लेने के कारण विश्वामित्र उनका प्रयोग नहीं कर सकते थे। अतः यज्ञ की रक्षा का निमित्त बनाकर (संभवतः पूर्वनियोजित योजनानुसार) विश्वामित्र अयोध्या आये। उस समय राजा दशरथ राम आदि के विवाह योग्य होने के कारण उनके विवाह के संबंध में विचार कर रहे थे। विश्वामित्र के आने से वसिष्ठ को भी आनन्द हुआ। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि अश्वमेध यज्ञ के समय आपस में हुए विचार-विमर्श के अनुसार ही सम्भवतः यह घटना-क्रम चल रहा था। यहां विश्वामित्र एवं वसिष्ठ के आपसी संबंधों को समझ लेना लाभदायक रहेगा।

विश्वामित्र का वसिष्ठ के साथ एक प्रकार से परम्परागत वैमनस्य था। हरिश्चन्द्र के समय विश्वामित्र ने वसिष्ठ से बदला लेने के लिए हरिश्चन्द्र को कष्ट दिया था, वही द्वन्द्व आगे चलता रहा। वाल्मीकि ने यह कथा गौतम ऋषि के पुत्र शतानन्द द्वारा जनकपुरी में कहलवाई है। इस कुत्सित संघर्ष के कारण वसिष्ठ को विश्वामित्र के आने पर हर्ष नहीं होना चाहिए था। परन्तु वसिष्ठ भी विश्वामित्र की योग्यता से भली-प्रकार परिचित थे। विश्वामित्र स्वभाव तथा प्रवृत्ति से क्षत्रिय थे। एक बार वे सेना के साथ वसिष्ठ के आश्रम पर गये। वसिष्ठ ने पूरी सेना का खूब जोर-शोर से स्वागत-सत्कार किया।

वसिष्ठ के इस सामर्थ्य से विश्वामित्र को आश्चर्य लगा कि एक आश्रमवासी के पास ऐसी विपुलता कहां से आई। इसका शोध करने पर विश्वामित्र को पता लगा कि वसिष्ठ के पास शबला नामक कामधेनु है। उसी के प्रभाव से यह सब स्वागत सम्भव हुआ था। विश्वामित्र ने शबला के बदले में एक लाख गायें देकर सहस्रार्जुन के समान वसिष्ठ से शबला की मांग की। वसिष्ठ ने कहा कि लाख गायें

तो क्या तुम चादी का पर्वत भी खडा कर दोगे, तो शबला मुझसे अलग नही हो सकती। मनस्वी पुरुष की कीर्ति के समान वह मेरे साथ ही रहेगी। मेरा अग्निहोत्र वन्हि, होम, सब कुछ यही गौ है। अतः आप जिद न करें। इस पर क्षात्र-प्रकृति के अनुसार विश्वामित्र क्रोधित हुए और सेना द्वारा जबर्दस्ती से गौ को ले जाने लगे। जिस शबला के प्रभाव से आदरातिथ्य हुआ था, उसी की कृपा से अडोसी-पडोसी तथा आश्रमवासी सभी वसिष्ठ भक्तो ने विश्वामित्र का सफल प्रतिरोध किया। उनकी निष्ठा के सामने विश्वामित्र की सम्पूर्ण अस्त्रविद्या बेकार सिद्ध हुई। तब उन्होंने महादेव से प्राप्त दिव्य-अस्त्र का प्रयोग किया। वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने वह दिव्य-अस्त्र भी विफल हो गया। तब विश्वामित्र निराश होकर सेना के साथ वापस लौट गये। ब्रह्मतेज के सामने क्षत्रियतेज फीका पड गया था और उन्होंने कहा—धिग्बल क्षत्रियबल ब्रह्मतेजोबल बलम्।

यह बात झूठे-अहकारी तथाकथित जातिगत ब्राह्मणों पर लागू नही होती अन्यथा शबूक के तपस्या करने से तथाकथित ब्राह्मण पुत्र मरता नही। इसीलिए विश्वामित्र के मन मे आया कि "मैं भी ब्रह्मर्षि बनूगा।" अतः राज्यशासन आदि छोडकर उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की। षड्रिपुओ से पूर्णतया मुक्त होकर, वास्तविक ब्राह्मण बनने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। केवल पठन-पाठन से न ब्राह्मण बनता है न माना जा सकता है। विश्वामित्र का विचार स्वाभाविक था। उनकी सेना शबला द्वारा निर्मित सेना के सामने ठहर न सकी। उनके पुत्र भस्म हो गये थे। उन्होंने भीषण तपस्या करके महादेव से तथा अन्य देवताओ से सभी शस्त्रास्त्र प्राप्त किये थे। परन्तु सभी दिव्यास्त्र वसिष्ठ के ब्रह्मदण्ड के सामने व्यर्थ दिखाई दिये तब विश्वामित्र को लगा कि वसिष्ठ की तपस्या उनकी तुलना मे श्रेष्ठ है। उन्हे लज्जा लगी कि आखिर माग-मागकर मैंने महादेव से साधारण अस्त्र प्राप्त किये। इस गलती को सुधारने के लिए अब उन्होने महर्षि बनने के लिए तप आरम्भ किया।

प्रारम्भ मे वे तपश्चर्या करने के लिए दक्षिण मे गये। वहा उन्होंने भीषण तप किया। इस बीच त्रिशकु ने याचना करते हुए शिष्यत्व स्वीकार कर स्वर्ग जाने की इच्छा प्रकट की। तपस्या से सिद्धि तो आती ही है। विश्वामित्र का अह जाग्रत हो गया। अत. ईर्ष्यावश अपनी सिद्धि का दुरुपयोग करते हुए वसिष्ठ को मात देने के लिए अपना पुण्य देकर विश्वामित्र ने त्रिशकु को स्वर्ग भेजना चाहा। वसिष्ठ ने उसको मना किया था। त्रिशकु का क्या हुआ था यह हम पहले पढ चुके हैं। परन्तु विश्वामित्र की सिद्धि कमजोर पड गई। अत उन्हे अपनी गलती समझ मे आई। तब वे पुष्कर तीर्थ पर जाकर तप करने लगे। प्रारम्भिक सिद्धि पर ब्रह्मा ने उनसे कहा था कि वे विश्वामित्र को 'ऋषि' कहते है पर वे न माने। उनकी सिद्धि बढती गई। अबकी बार ऋचिक ऋषि के पुत्र शुन शेप की रक्षा मे पुण्यक्षय हुआ।

अत पुन भीषण तप चालू किया।

'ऋषि' कहलाने के बाद भी उनको सन्तोष नही था। पहले अहं जगा। दुबारा ईर्ष्या जगी। सिद्धि बढ़ती गई। अब कामरूप मेनका आई। विश्वामित्र ने तप खो दिया। मेनका से समागम होने से शकुन्तला का जन्म हुआ। इस घटना में भी संयोग का परिचय मिलता है। शकुन्तला का पुत्र भरत प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा हुआ। विद्वानो की मान्यता के अनुसार भरत की मां के रूप मे इस देश का नाम भारत पड़ा। परन्तु शकुन्तला और भरत चाहे कितनी भी ख्याति प्राप्त कर गये हो, पर विश्वामित्र तो फिसल ही गये। अत वे उत्तर की ओर जाकर पुन तपस्या करने लगे। इस प्रकार उनकी दीर्घ तपस्या से देवताओं मे भय पैदा हो गया। उन्होंने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि विश्वामित्र को 'महर्षि' कहा जाये।

विश्वामित्र तो ब्रह्मर्षि बनने पर अड़े हुए थे। उनकी बात अस्वीकार करते हुए ब्रह्मा ने कहा—"अभी तुम पूरे जितेन्द्रिय नही हुए हो अत प्रयत्न करते रहो।" विश्वामित्र का तप अधिक कठोरता से प्रारम्भ हुआ। वे गर्मी मे भी पचाग्नि का सेवन करते थे। केवल वायु पीकर दोनो हाथ उठाकर बिना सहारे खड़े रहते थे। शीतकाल मे पानी मे खड़े रहकर तपस्या करते थे तथा वर्षाकाल मे खुले में खड़े रहते थे। सदा की भांति इस कठोर तप से इन्द्र घबराये। इन्द्र ने रम्भा नामक अप्सरा को भेजा।

अब तक विश्वामित्र काफी सम्भल चुके थे। अत वे काम से तो मुक्त हुए थे परन्तु अब उन्हें क्रोध आया। क्रोध मे उन्होंने रम्भा को शाप दिया। अत पुन वे तप से गिर गये। तप-भंग होने से उत्तर दिशा त्याग कर वे पूर्व दिशा में गये। वहा पूर्णत मौन रहकर काम तथा क्रोध पर भी विजय पाकर तप करने लगे। तप का समय पूर्ण होने के बाद पूर्ण आहुति के लिए यज्ञ का अनुष्ठान किया गया। पूर्ण आहुति के उपरान्त वे भोजन करने के लिए बैठने ही वाले थे कि इतने मे इन्द्र ब्राह्मण के वेश मे याचक बनकर आया। विश्वामित्र ने उसे भोजन परोसना प्रारम्भ किया। आगतुक ब्राह्मण ने बना हुआ पूरा-का-पूरा भोजन खा लिया फिर भी विश्वामित्र क्रोधित नही हुए अपितु शान्त बने रहे और उन्होंने अपना अनुष्ठान चालू रखा।

काम, क्रोध, लोभ आदि के सम्बन्ध मे सभी प्रकार से परीक्षाएं लेने के बाद, देवताओं ने ब्रह्मा से कहा कि अब विश्वामित्र मे कोई दोष शेष नही, अत उन्हें ब्रह्मर्षि कहा जा सकता है। तब ब्रह्माजी स्वय विश्वामित्र जहा तपस्या कर रहे थे वहा गये, और उन्होंने विश्वामित्र को 'ब्रह्मर्षि' कहकर सम्बोधित किया। इतने दृढ़ से साथ प्रत्येक बाधा को ऊपर चढ़ने की सीढ़ी मानते हुए व्यक्ति ऊपर उठ सकता है, इसका यह अद्वितीय उदाहरण है। इसीलिए इतने विस्तार मे यह कथा यहा दी है। इसका अलौकिक भाग भी प्रेरक है। साधारण मनुष्य के जीवन मे भी

बाधाओ का आना और उनका निराकरण होना इसका लौकिक दृष्टि से अर्थ लगाना सम्भव नही होता, अत- हजारो वर्ष पूर्व भारतीय मानसिकता से सुसंबधित शैली मे अलौकिकता का यह प्रकटीकरण सार्थक माना जाना चाहिये।

वाल्मीकि रामायण मे न होने पर भी इस कथा का एक और अन्तिम प्रसंग विशेष मार्गदर्शक है। विश्वामित्र की इच्छा थी कि उन्हें वसिष्ठ भी ब्रह्मर्षि कहे। अर्थात् ईषणा शेष थी। वे छिप कर वसिष्ठ के मन की बात जानने के लिए तथा उनसे ब्रह्मर्षि कहलवाने के लिए उनके आश्रम की ओर गये। उस समय वसिष्ठ अरुन्धती के साथ कुटिया के बाहर आगन मे खटिया डाल कर बैठे थे। शरद की चादनी रात थी। अरुन्धती का ध्यान चन्द्रमा की ओर गया तथा उसने उस शीतल स्वच्छ प्रकाश की प्रशसा की। इस पर वसिष्ठ ने कहा, यह प्रकाश तो विश्वामित्र की तपस्या के समान निर्मल तथा सुहावना है। विश्वामित्र कुटिया के पीछे छिपकर यह सवाद सुन रहे थे। उनका हृदय गद्‌गद् हो गया। वे आगन में आये और वसिष्ठ के आगे उन्होंने साष्टाग दण्डवत किया। वसिष्ठ ने भी उन्हे 'ब्रह्मर्षि' कह-कर उठाया। विश्वामित्र के मन मे रहा-सहा ईर्ष्या-भाव, अहंभाव इत्यादि जाते रहे। वे शुद्ध ब्रह्मर्षि हो गये। इस बात से एक और निष्कर्ष निकलता है कि, तपस्या से काम, क्रोध, लोभ आदि जीते जा सकते है; पर शायद अह बढता ही रहता है। अह पर तपस्या से भी विजय नही पाई जा सकती। उसके लिए वास्तव मे अह रहित श्रेष्ठ पुरुषो का सत्सग ही औषधि का काम करता है।

वसिष्ठ के मन में तो कुछ था ही नही। सात्विकता की यही विशेषता होती है। अत. उन्होंने सहज ही विश्वामित्र को प्रभावित किया। ऐसे किसी समय के प्रतिद्वन्द्वी अयोध्या आये थे, रामायण मे यह घटना सयोगवश दीखती है परन्तु इसके वर्णन मे बीच-बीच मे जो परिसवाद है उससे यह घटना केवल सयोग रूप मालूम नही पडती। योजना कहा और कैसी बनी, इसके प्रमाण देना सरल नही। परन्तु वसिष्ठ को भी राम का शिक्षण अधूरा लगता था तथा विश्वामित्र के साथ राम का जाना उन्हे आवश्यक लगता था। फिर विश्वामित्र ने भी दशरथ से इसी प्रकार आग्रह किया था। वैसे भी किशोर आयु तक बालको का घर मे पठन-पाठन एक सीमा तक अच्छा रहता है। पर उनके सर्वांगीण विकास के लिए घर मे बाहर जाकर योग्य वातावरण मे पढना आवश्यक होता है। इसलिए विश्वामित्र के आने पर स्वागत तो सभी ने किया पर वसिष्ठ को विशेष आनन्द हुआ।

किरण-४

विश्वामित्र के साथ प्रस्थान

विश्वामित्र के आगमन के पूर्व अयोध्या में राम आदि की योग्यता तथा

लोकप्रियता देखकर उनके विवाह के सम्बन्ध में विचार चल रहा था। उस काल की प्रथा के अनुसार यह ठीक ही था। राम सोलह वर्ष के होने जा रहे थे। कन्या अल्पायु हो सकती थी। हमारे देश में अंग्रेजी-शिक्षा की वृद्धि के साथ एक विशेष विचार-पद्धति चल पड़ी है। विशिष्ट प्रथाओं के बारे में हम लोग पहले अपना मत बना लेते हैं तथा बाद में ऐतिहासिक घटनाओं को उसके अनुसार तोड़ने-मरोड़ने का प्रयत्न करते हैं अथवा उनकी आलोचना करते हैं। इसी सन्दर्भ में विवाह के समय राम का २७-२८ वर्ष का बताने वाले भी विद्वान मिलते हैं।

भारत में विवाह को व्यक्तिगत बात नहीं माना जाता था अपितु पारिवारिक तथा सामाजिक, विधि तथा उत्तरदायित्व माना जाता था। विवाह के कारण कौन-कौन से परिवार निकट आवें? पुत्र के योग्य उचित पत्नी अर्थात् परिवार के योग्य उचित बहू के ठीक चुनाव का प्रश्न माता-पिता से सम्बन्धित भी था। घर में भाई-बहिनों में जो नैसर्गिक प्यार होता है, वह दिव्य प्रेम माना जाता है। उसी भाव से पालकों द्वारा पालितों के सर्वांगीण हित का विचार कर, अल्पायु में विवाह कर पति-पत्नी में परस्पर दिव्यप्रेम उत्पन्न करने की योजना की जाती थी। बचपन में बहू घर में आने से, कन्या के रूप में उसका विकास होकर, परिवार का वह अंग बन जाती थी। पति-पत्नी का नाता न जानने की स्थिति में दोनों का स्वस्थ विकास होता था। आजकल प्रेमोत्तर विवाह उचित समझा जाता है। उस काल में विवाह के बाद धीरे-धीरे एक ही परिवार के अंग के नाते, एक दूसरे के प्रति केवल प्रेम ही नहीं, परन्तु पूर्ण समर्पण का भाव भी उत्पन्न होता था। इसी आधार पर राम के विवाह का विचार हो रहा था।

इसी बीच विश्वामित्र के आगमन की सूचना मिली। वसिष्ठ को साथ लेकर राजा दशरथ स्वयं उनकी अगवानी करने गये। विश्वामित्र को देखते ही राजा ने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया और कहा, 'महामुने, स्वागत है। आपने अल्प समय में, एक ही जीवन में राजा से राजर्षि महर्षि, ब्रह्मर्षि बनने का सामर्थ्य प्रकट किया है। आपके आने के कारण अयोध्या पवित्र हो गई। मैं आपको पुन: नमस्कार करता हूं।" अपने योग्य सेवा पूछते हुए दशरथ ने कहा, "कौशल राज्य की समस्त सम्पदा आप अपनी ही समझें। आपकी जो भी आज्ञा हो वह शिरोधार्य है। इसी में मेरा, मेरे परिवार का तथा सूर्यवंश का कल्याण है।"

दशरथ के इस समर्पणभाव पर हर्षित होने के बाद भी, बात पक्की करने के लिए विश्वामित्र ने दशरथ से कहा कि, "तुमने अपने वंश के योग्य बात कही है। मुझे विश्वास है कि अपनी बात पूरी करने में तुम्हें कोई झिझक नहीं होगी।" दशरथ से पुन: आश्वासन पाकर विश्वामित्र ने अपनी मांग प्रस्तुत की। विश्वामित्र ने कहा कि, 'सिद्धाश्रम में उन्होंने एक यज्ञ का आयोजन किया है। रावण की प्रेरणा से ताड़का तथा उसके पुत्र सुबाहु, मारीच आदि यज्ञ में सदा विघ्न उपस्थित

करते हैं। अत. इस बार यज्ञ की रक्षा के लिए मैं राम और लक्ष्मण को ले जाने के लिए आया हू।" बुढापे मे विशेष आयोजनो से किसी को पुत्र प्राप्ति हो, और वह भी इतने उत्तम लक्षणो से युक्त हो, फिर उन्हे अल्पायु मे इस प्रकार युद्ध के लिए मागा जाये तो किसी भी पिता की क्या अवस्था हो सकती है, यह किसी को बताने की आवश्यकता नही।

दशरथ के मानो प्राण निकलने लगे। उनकी सारी इन्द्रिया शिथिल हो गई, नेत्रो की ज्योति कम हो गई, मस्तिष्क चक्कर काटने लगा। उन्होंने कहा, "अभी राम तो पूरे सोलह वर्ष के भी नही हुए हैं। यज्ञ रक्षा के लिए मैं स्वयं अपनी सेना के साथ चल सकता हू। आप कोमल आयु के बच्चो को लेकर क्या करेंगे? उन लोगो ने अभी युद्ध देखा भी नही है। यदि राम के लिए आग्रह हो तो भी सेना लेकर मैं साथ चलूगा। उसे आप अकेले न ले जायें।" परन्तु विश्वामित्र की योजना कुछ और ही थी। इसीलिए उनका नाराज होना भी स्वाभाविक ही था। उन्होंने तत्काल सूर्यवंश की परिपाटी का स्मरण दिलाते हुए कहा कि राजन् इससे तुम्हारी तथा तुम्हारे कुल की अपकीर्ति होगी। राम तथा लक्ष्मण का ही मेरे साथ जाना, उनके तथा तुम्हारे भी कल्याण के लिए आवश्यक है। मेरे रहते उनके जीवन को कोई धोखा नही होगा। यही से उनका युद्धाभ्यास प्रारम्भ होगा तथा उस निमित्त तैयारी होगी।

वसिष्ठ ने देखा कि दशरथ फिर भी झिझक रहे थे। इस पर वसिष्ठ ने विश्वामित्र की बात को सत्य बताते हुए दशरथ को समझाया कि, "राजन्! राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ जाना ही उनकी अधूरी शिक्षा पूर्ण करने के लिए आवश्यक है। आप विश्वास रखे कि विश्वामित्र के साथ रहते इनके प्राणो पर किसी सकट की सम्भावना नही। राम के भावी जीवन की तैयारी की दृष्टि से भी यह आवश्यक है। आप को पता होना चाहिये कि विश्वामित्र केवल अस्त्रो के ज्ञाता ही नही, वे तो नये अस्त्रो के निर्माता भी है। यह दीक्षा लेने के कारण विश्वामित्र स्वय अस्त्र प्रयोग नही कर पाते अन्यथा उन्हे राम की आवश्यकता ही नही पडती। वे राम के तथा समस्त जगत के कल्याण के लिए उसे माग रहे है।" यज्ञ-रक्षा के लिए विश्वामित्र द्वारा दशरथ को स्वीकार न करना, भावी जीवन के लिए राम की आवश्यक सिद्धता करना आदि बातो से स्पष्ट होता है कि विश्वामित्र किसी योजना से राम-लक्ष्मण को लेने आये थे। और इसीलिए वसिष्ठ का भी उन्हे पूर्णतया समर्थन था। यही देखकर दशरथ ने भी विश्वामित्र की माग स्वीकार की।

उस समय जब राम को बुलवाया गया तो उनके अन्यमनस्क होने का समाचार मिला। जीवन की सभी रुचिकर बातो मे उनकी रुचि हटी हुई थी। अत दशरथ को भी चिन्ता हुई। पर विश्वामित्र ने कहा कि इसमे भय करने की

आवश्यकता नहीं। राम की यह मानसिक स्थिति, दुर्बलताजन्य न होकर जिज्ञासा-जन्य है। उन्हें जीवन में जो उत्तरदायित्व उठाना है, उसके कारण यह अन्तर्द्वन्द्व है। इसका सही निराकरण होना चाहिए। विश्वामित्र के ऐसा कहने पर राम को आग्रहपूर्वक बुलवाया गया और एक प्रकार भरी सभा में राम ने अपने प्रश्न रखे। तब विश्वामित्र ने राम की प्रशंसा करते हुए कहा कि इनका समाधान गुरु वसिष्ठ ही कर सकते हैं। यह परस्पर प्रशंसा वाली बात नहीं थी अपितु लोक-कल्याण एवं उद्देश्य की समानता के कारण वसिष्ठ विश्वामित्र एक दूसरे के गुणों की ओर देख-कर उसका सबके कल्याण के लिए उपयोग कर रहे थे।

वसिष्ठ द्वारा राम का शंकासमाधान किया गया, इसका भाव पीछे आ चुका है। अब राम अत्यधिक उत्साह के साथ विश्वामित्र के साथ जाने को तैयार हुए। दशरथ ने राम-लक्ष्मण का स्वस्तिवाचन किया तथा उन्हें विश्वामित्र के साथ जाने को कहा। दोनों कुमार धनुषबाण लेकर युक्त होकर धनुषबाण लेकर चले थे। उनके कटिप्रदेश में तलवारें लटकी थी। हाथों में कवच रूप दस्ताने थे, मानो महादेव (विश्वामित्र) के पीछे स्कन्द (कार्तिकेय) तथा विशाख चल रहे हों। मार्ग में सरयू पर रुककर विश्वामित्र ने आचमन करवाया और वहीं राम को बला तथा अतिबला विद्याएं सिखाई। राम ने बाद में वे विद्याएं लक्ष्मण को पढ़ाई। विश्वामित्र ने कहा कि इन विद्याओं के कारण उन्हें कोई थकावट, रोग अथवा विकार न होगा, साथ ही उन्हें चातुर्य, ज्ञान, वाक्पटुता तथा भाग्यश्री भी प्राप्त होगी विद्या के प्रभाव से भूख-प्यास का कष्ट भी नहीं होगा। ऐसी विद्याएं पाकर राम ने जीवन-उद्देश्य के लिए आवश्यक प्राथमिक शक्तियां प्राप्त की। विश्वामित्र ने भी वे विद्याएं तपस्या से प्राप्त की थी। अतः तपस्या के पुण्य के साथ विश्वामित्र ने व श्रीराम को अर्पित की। प्रथम रात्रि में तीनों का विश्राम सरयू नदी के तट पर ही हुआ।

किरण-५

ताडकावन से सिद्धाश्रम

प्रातःकाल उठकर स्नान आदि से निवृत्त हो तीनों आगे चले। चलते-चलते शाम तक वे गंगा तथा सरयू नदी के संगम पर कामाश्रम में पहुंचे, जहां महादेव द्वारा कामदेव को भस्म किया गया था। शंकर की तपस्या का स्थान होने के कारण अब अनेक ऋषि भी वहां तप करते थे। ब्रह्मसर (मानसरोवर) से निकली हुई सरयू नदी तथा विष्णुपद से निकली गंगा जहां मिल रही थी, वहां मधुर-ध्वनि उत्पन्न हो रही थी। सभी का मन प्रसन्न हुआ। विश्वामित्र के कहने से राम-लक्ष्मण ने दोनों नदियों को प्रणाम किया तथा रात्रि में वहीं विश्राम किया। दूसरे

दिन प्रात काल वे गगातट पर आये तथा स्नानादि से निवृत्त होकर गगा मां से प्रार्थना कर आगे बढ़े। गगा पार होकर उन्हे एक भीषण जगल दिखाई दिया। वहा पहले मलद तथा करूप नामक दो उत्तम उपजाऊ प्रदेश थे। ताड़का ने जब से वहा निवास किया तब से उसे वीरान और भीषण बना दिया। यह ताडका इच्छा रूप धारण करने वाली यक्षिणी तथा सुन्दर दैत्य की पत्नी थी। इसके पुत्र इधर होने वाले यज्ञो मे बाधा डालते थे। अत इसी ताडका के नाम से यह वन ताड़का वन कहलाने लगा।

विश्वामित्र ने ताडका का इस प्रकार परिचय देकर राम से आग्रहपूर्वक कहा कि, "इस राक्षसी का आह्वान कर इसका वध करो। स्त्रीहत्या के पाप का मन मे विचार भी न आने दें। आवश्यकता पडने पर विष्णु ने भी स्वयं भृगुऋषि की पत्नी (शुक्राचार्य की माता) का वध किया था। अत. दया एव घृणा को त्याग कर मेरी आज्ञा से ताडका का वध करो। चातुर्वर्ण्य की रक्षा के लिए यदि स्त्रीहत्या भी करनी पडे तो पाप नही है। प्रजारक्षणार्थ क्रूर, पापयुक्त अथवा सदोष कर्म भी राजा को करना पडे तो भी राजा को झिझकना नही चाहिए।"

न हि ते स्त्रीवधकृते घृणाकार्यं नरोत्तम।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना॥
नृशंसं अनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा॥ (१ २५ १७.१८)

गौ, ब्राह्मण तथा देशहित के लिए ताडकावध के लिए श्रीराम तैयार हो गये। राम के धनुष की टंकार की चुनौती सुनकर ताडका दौडी आई। दो सुन्दर राजकुमारो को देखकर वह उन्हे खाने दौडी। उसका स्त्रीरूप देखकर राम को पुन दया आई। राम के मन मे आया—इसके केवल हाथ-पैर काटे जायें। परन्तु जब ताडका ने माया-युद्ध चालू किया, तो विश्वामित्र के आग्रह से श्रीराम ने बाण द्वारा ताडका की छाती विदीर्ण कर दी। ताडकावध से वह सम्पूर्ण क्षेत्र ही नही, देवलोक भी प्रसन्न हो गया। तीनो पुरुषो ने वह रात्रि उसी ताडकावन मे बिताई। दूसरे दिन प्रात ताडकावध के कारण विश्वामित्र बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने श्रीराम से कहा कि ताडका का वध कर तुमने अपनी विशेष योग्यता सिद्ध की है। मेरे विचार से मेरी सभी अपेक्षाए तुम निश्चित ही पूरी कर सकोगे। अत मैं तुम्हे सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्रो की शिक्षा देना चाहता हू।

प्राचीन ग्रन्थो के पाठको को यह पता होगा कि जो आयुध हाथ से चलाये जाते हैं उन्हे 'शस्त्र' कहा जाता है तथा जो फेंककर मारे जाते है वे 'अस्त्र' कहलाते है। इस दृष्टि से विश्वामित्र ने ५२ से अधिक विविध प्रकार के शस्त्र और अस्त्र तथा उनका निवारण श्रीराम को सिखाया। इस बात से विश्वामित्र की योग्यता का भी परिचय मिलता है। राम के भावी जीवन की आवश्यकताए, ध्यान

मे रखते हुए यह शिक्षा कितनी महत्त्वपूर्ण रही होगी, इसकी हम कल्पना कर सकते है। आज एटम बम, जहरीली वायु, अश्रुवायु आदि के युग मे अग्नि, जल, पत्थर, विविध शस्त्र आदि की वर्षा करने वाले अस्त्र हो सकते है यह समझना कठिन नही होगा। इसमे अलौकिकता मानने का कारण नही। यह केवल विज्ञान का विकास था। दस हजार वर्ष पूर्व केवल कल्पनामात्र से इसका वर्णन नही किया जा सकता था।

शस्त्रास्त्र-शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त तीनो पुरुष आगे बढे। ताटकावन से बाहर आने पर उन्हे सामने कुछ दूर पर पर्वत की तलहटी मे (आजकल का बक्सर जिला) उत्तम वृक्षो से घिरा हुआ एक आश्रम दिखाई दिया। राम के पूछने पर विश्वामित्र ने उसका नाम 'सिद्धाश्रम' बताया। यहा स्वय विष्णु ने तपस्या कर सिद्धि प्राप्त की थी। जब विष्णु तपस्या प्राप्त कर रहे थे तो उसी समय राजा बलि भी इन्द्र आदि को जीतने के लिए वही पर समीप मे अन्तिम यज्ञ कर रहा था। अत वामन अवतार के रूप मे बलि की योग्य दृष्टि तथा समझ देकर वही से पाताल लोक भेजा गया था। इस प्रकार यह वामन अवतार की भी भूमि थी। विश्वामित्र के आराध्यदेव भी वामन ही थे। इसलिए उन्होने भी अन्त मे सिद्धाश्रम को ही अपनी तपस्याभूमि तथा यज्ञस्थली बनाया।

विष्णु की तपस्या एव वामनावतार की कथा कहते-कहते विश्वामित्र श्रीराम आदि सिद्धाश्रम के पास पहुचे। विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा, "यह आश्रम जैसा मेरा है वैसा तुम्हारा भी है।" तत्पश्चात् बहुत स्नेहपूर्वक दोनो भाइयो को वे आश्रम मे ले गये। आश्रम निवासी तथा सभी तपस्वी बहुत आनन्दित होकर एकत्र हुए। सभी ने विश्वामित्र की विधिवत् पूजा की तथा दोनो राजकुमारो का अतिथि सत्कार किया। दोनो कुमारो के आग्रह से विश्वामित्र ने उसी दिन यज्ञ की दीक्षा ली। यज्ञ मे बाधा डालने के लिए निशाचर कब आते है, यह भी राम ने जान लिया। दोनो भाई सावधान होकर शस्त्र लेकर यज्ञरक्षार्थ तैयार हो गये। माया युद्ध द्वारा धोखा देने का किंचिन्मात्र भी अवसर श्रीराम राक्षसो को नही देना चाहते थे। उन्हे ६ रात और ६ दिन जागरण करना था। बला व अतिबला विद्याए वे प्राप्त कर चुके थे। अत वे दोनो धनुर्धारी वीर विश्वामित्र के दोनो ओर पूर्ण समय खडे रहे।

देखते-देखते पाच दिन का समय बीत गया। राम ने लक्ष्मण को सावधान किया। छठा दिन प्रारम्भ हो रहा था। यज्ञ पूर्णता की सिद्धता करते हुए अग्नि अधिक प्रज्वलित की गई। उसी समय आकाश मे जोर का शब्द हुआ। वर्षाकाल के मेघो के समान आकाश को घेरकर मारीच और सुबाहु यज्ञमडप की ओर दौडे। उनके हजारो अनुचर भी साथ मे थे। उन्होने यज्ञ कुण्ड पर रक्त आदि बरसाना प्रारम्भ किया। राम ने तत्काल मनु द्वारा प्रयुक्त शीतेषु नामक मानवास्त्र से

मारीच को कोसो दूर फेंक दिया तथा सुबाहु का वध किया। यज्ञ मे बाधा बनने वाले राक्षसो का पूरी तरह नाश हुआ। अत आश्रमवासियो द्वारा राम का बहुत सम्मान हुआ। विश्वामित्र ने कहा मैं तुम्हे पाकर कृतार्थ हुआ। गुरु की आज्ञा का पालन कर श्रीराम ने सिद्धाश्रम का नाम सार्थक किया—दुष्टता का नाश अर्थात सिद्धि।

किरण-६

मिथिला की ओर

राम और लक्ष्मण ने यज्ञशाला मे ही रात्रि बिताई। प्रात. पवित्र होकर वे दीप्तिमान ऋषि विश्वामित्र के पास गये। ऋषि ने कहा, "हम लोग यहा से जनकपुरी को जायेगे। वहां राजा जनक ने एक विशेष धनुष-यज्ञ आयोजित किया है। राजा जनक के पास एक उत्तम धनुष है। उसकी प्रत्यचा को बडे-बड़े राजा, गधर्व, देवता, राक्षस आदि भी नही चढा सके। वह तुम्हे भी देखने को मिलेगा। जनक ने वह धनुष देवताओ मे प्राप्त किया है। सब लोग अर्थात् आश्रम के अन्य प्रमुख ऋषि आदि भी १०० गाडियो मे कुलगुरु के साथ चल दिये। यहा तक कि पशु-पक्षी आदि भी जाने लगे। मार्ग मे कुछ दूर जाकर विश्वामित्र ने सदा के लिए सिद्धाश्रम छोडने की घोषणा करते हुए साथ के पदयात्री एव पशु-पक्षियो को विदा किया। कितना प्यार करते होगे विश्वामित्र अपने आश्रम के पशु-पक्षियो से यह बात ध्यान देने योग्य है।

रात का विश्राम शोणभद्र नदी के किनारे हुआ। इसे आजकल सोन नदी कहते हैं। जहा प्रथम पडाव पडा था वह विश्वामित्र के कुल के आदि-पुरुष कुश का बसाया हुआ था। उसी के कारण विश्वामित्र कौशिक कहलाते थे। राम की जिज्ञासा देख-कर विश्वामित्र ने राम को, अपने कुल की अपने पिता गाधि ऋषि तक पूर्ण कथा बताई। आधी रात तक कथा चलती रही। बाद मे सबने विश्राम किया। नदी पार कर दूसरे दिन गगातट पर निवास किया गया। वही रात्रि मे अग्निहोत्र, आहार आदि के बाद राम की जिज्ञासानुसार गगावतरण की कथा बताई गई। यह कथा हम भगीरथ-चरित्र मे पढ चुके हैं। इसके बाद 'कूर्मावतार' की कथा बताई गई, अर्थात् समुद्रमथन द्वारा गरल, धन्वन्तरि, वारुणी (सुरा) अप्सरा, उच्चैश्रवा (घोडा), कौस्तुभ मणि, अमृत आदि की उत्पत्ति की कथा।

इस कथा मे रोचक बात यह है कि सुरा स्वीकार करने वाले 'सुर' कहलाये तथा अस्वीकार करने वाले 'असुर' कहलाये। व्यवहार से शब्द के अर्थ कैसे बदलते हैं, इसका यह नमूना है। दूसरो को सदा पीडा देते रहने के कारण असुर का अर्थ दैत्य या राक्षस हो गया और सुरा ग्रहण करने वाले सुर, देव तथा सभ्य माने जाने

लगे। वेद ने भी सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर को असुर कहा गया है। पारसियों का मुख्य देव 'अहुरमज़्द' कहलाता है। राजस्थान के पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर प्रान्तों में 'स' का उच्चारण 'ह' करते हैं। जैसे सप्ताह का हफ्ता आदि, वैसे ही असुर, 'अहुर' हुए।

मथन में निकले कुछ रत्न निम्न प्रकार वितरित हुए—उच्चैः श्रवा इन्द्र को दिया गया, शिव ने विषपान किया, कौस्तुभमणि विष्णु को दी गई, असली संघर्ष ता अमृत के लिए हुआ। इसीलिए भगवान को 'मोहिनी' अवतार लेना पड़ा। इस अवतार ने दैत्यों को अमृत से वंचित रखा, अन्यथा दुष्टता भी अमर हो जाती। इस कथा में मोहिनी अवतार के पूर्व दैत्य अमृत कलश न लें इसलिए गरुड़ वह कलश लेकर भागा था। मार्ग में उसने प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक में विश्राम किया था। यहां पर कलश के कुछ अमृतबिन्दु गिरे थे, ऐसी मान्यता है। कलश को कुम्भ' भी कहते हैं। और इसीलिए इन चारों स्थानों पर लौटा-फेरी से 'पूर्ण कुम्भ' तथा अर्ध कुम्भ' होते रहते है।

जहां अमृतमन्थन हुआ, वहीं दिति का तपोवन भी था। वहीं इक्ष्वाकुवंशीय राजा विशाल ने विशाला नगरी बसाई। उसी वंश के उस समय के राजा सुमति ने विश्वामित्र का आतिथ्य किया। सुमति द्वारा सम्मानित होकर रात में सभी ने वहीं विश्राम किया तथा दूसरे दिन प्रात मिथिला की ओर प्रस्थान किया। वैसे मार्ग में जो-जो विशेष लोग मिलते थे उन्हें विश्वामित्र राम-लक्ष्मण का यज्ञरक्षक के रूप में परिचय कराते थे। राजा सुमति को भी यह परिचय दिया गया। धीरे-धीरे चलते हुए सब लोग मिथिला राज्य में पहुंचे। मिथिला नगरी के उपवन में किसी समय का रमणीय परन्तु उन दिनों उजड़ा पड़ा आश्रम दिखाई दिया। स्वाभाविक ही राम ने उसके विषय में जिज्ञासा प्रकट की। यही महर्षि गौतम का आश्रम था।

विश्वामित्र ने राम को गौतम-अहल्या की सपूर्ण कथा बतलाई। पूर्ण यौवन में अहल्या पर मोहित होकर इन्द्र, गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में, गौतम के वेश में, समागम की याचना करते हुए आश्रम में आया। प्रत्यक्ष देवराज को आते देख कर अहल्या भी भ्रमित हो गई, और उसने मूक स्वीकृति दी। अहल्या से समागम कर इन्द्र वापिस जा ही रहा था कि, गौतम स्नानादि से निवृत्त होकर वापस आये। इन्द्र को देखकर ऋषि भाप गये। उसे जाते-जाते गौतम ऋषि ने अण्डकोश गल जाने का शाप दिया (बाद में इन्द्र को मेढे का अण्डकोश लगाने की भी कथा है)। कुटी में जाने पर ऋषि को अहल्या सिर नीचा किये खड़ी दिखाई दी। उसे भी उसी स्थिति में अनेक वर्ष तक वायु-सेवन कर, उपवास का कष्ट उठाते हुए, भस्म-शय्या पर पड़ी रहने का गौतम ऋषि ने शाप दिया था। श्रीराम से भेंट होने पर वह पुन पवित्र होगी ऐसा बताकर गौतम ऋषि हिमालय की ओर चले गये थे—

वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि ॥
यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः ।
आगमिष्यति दुर्धर्ष तदा पूता भविष्यसि ॥ (१ ४८ ३०-३१)

विश्वामित्र ने राम से कहा कि अहल्या मानो तुम जैसे पवित्र एवं लोकसेवक व्यक्ति की प्रतीक्षा में है। अपराध की तुलना में प्रायश्चित्त और तप पर्याप्त हो गया है। अहल्या को पुनः लोकमान्यता देनी है, तभी गौतम भी वापिस आयेंगे। करुणामूर्ति राम के नेत्रों में इस तपस्विनी महामाया को देखकर आंसू आ गये। वे दोनों गौतम मुनि के आश्रम में गये। वहां अहल्या अपनी तपस्या से देदीप्यमान हो रही थी। उसके तेज की ओर देखने का साहस मनुष्य तो क्या देवता भी नहीं कर सकते थे। अतः राम एवं लक्ष्मण ने प्रसन्नता से अहल्या के चरणों का स्पर्श किया। राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा (१ ४९ १७)। अहल्या अपनी तपोग्नि से विशुद्ध रूप को प्राप्त हुई, यह देखकर, देव, गंधर्व हर्ष मनाने लगे। उधर गौतम ऋषि भी लौट आये। दोनों एक दूसरे को पाकर सुखी हुए तथा दोनों ने राम का आतिथ्य सत्कार कर पुनः हिमालय की ओर प्रस्थान किया। इन सभी ने गौतम के आश्रम से यज्ञमण्डप की ओर प्रस्थान किया।

किरण-७

सीता समाह्वय

गौतम ऋषि के आश्रम से ईशान कोण में यज्ञमण्डप बना था। यज्ञमण्डप की रचना एवं व्यवस्था से राम बहुत प्रभावित हुए। वहां नाना देशों से आगत वेदों के स्वाध्याय से शोभित अनेक ब्राह्मण एकत्र थे। सहस्रों अन्य ऋषिगण भी सैकड़ों छकड़ों में पधारे थे। विश्वामित्र ने उनकी सुविधा देखकर एकान्त स्थान में डेरा लगवाया। उधर राजा जनक को भी यह समाचार मिला। गौतमपुत्र शतानन्द, जनक के मुख्य पुरोहित थे। राजा जनक ने उन्हें आगे किया तथा स्वयं अर्घ्य लेकर पीछे-पीछे चले। विश्वामित्र ने जनक से पूजा ग्रहण की तथा कुशल-क्षेम पूछी। जनक ने कहा 'महाराज' आपके आगमन से मेरा यज्ञ सफल हो गया। अब आप यज्ञ की पूर्णाहुति तक यहीं रुकें यह प्रार्थना है।

देवतातुल्य राजकुमारों का जनक द्वारा परिचय पूछने पर विश्वामित्र ने बतलाया कि ये राजा दशरथ के पुत्र हैं। आपके यहां धनुष देखने की इच्छा से ये मेरे साथ आये हैं। साथ ही विश्वामित्र ने अयोध्या प्रस्थान से लेकर अहल्या-उद्धार तक का वृत्तान्त जनक से निवेदन किया। पूज्य माता-पिता के पुनर्मिलन के समाचार

से शतानन्द के शरीर मे रोमाच हो आया। वह रामचन्द्र के दर्शनमात्र से विस्मित हुआ। उसने ऋषि विश्वामित्र से सब समाचार विस्तार से जानना चाहा। यह स्वाभाविक भी था। वह अपनी मा का एवं उस कारण पिता का दु ख देख चुका था। विश्वामित्र ने उसे आश्वस्त किया कि मैंने अपना कर्तव्य पूर्णत पालन किया है।

विश्वामित्र की बात से गद्‌गद् होकर शतानन्द ने राम का पुन. अभिनन्दन किया तथा किसी से पराजित न होने वाले विश्वामित्र का सम्पूर्ण जीवन-वृत्तान्त राम को सुनाया। वसिष्ठ-विश्वामित्र किरण में हम वह पढ चुके है। यहा पर विशेष बात यह है कि इस बार यह कथन विश्वामित्र के सामने हो रहा था। परन्तु विश्वामित्र के चेहरे पर हर्ष या विषाद का किंचिन्मात्र भी विकार नजर नहीं आया। वे वस्तुत ब्रह्मर्षि बन गये थे। अन्त में शतानन्द ने राम से कहा, विश्वामित्र सब मुनियो मे श्रेष्ठ, तपस्या के मूर्त रूप, धर्म के विग्रह एव पराक्रम की परम निधि हैं। जनक ने भी विश्वामित्र की बडी प्रशसा की तथा तीनों को यज्ञ मे पधारने का विधिवत् निमत्रण देकर विदा ली।

हम लोग एक विचार पहले भी पढ चुके हैं। यज्ञ केवल आध्यात्मिक साधना का भाग नही होता था। यज्ञ के लक्ष्य के अनुसार उससे फल प्राप्ति की (लौकिक फल प्राप्ति) भी अपेक्षा रहती थी। जैसे अश्वमेध, अजेय सिद्ध करने के लिए, होने के बाद भी, दशरथ के यहा वह यज्ञ पुत्र कामेष्टि की भूमिका रूप किया गया था। यज्ञो से राष्ट्र की भौतिक प्रगति का भी परिचय मिलता था। साथ ही समाज मे आधारभूत व्यवस्था एव धर्म के विविध अग कितनी जागरूकता से पालन होते है, इसका भी परिचय मिलता था। यज्ञ के निमित्त चारो ओर ज्ञानी, विरागी, विद्वान, नीतिज्ञ, पराक्रमी वीर एकत्र होकर समाज को कालानुरूप दिग्दर्शन भी करते थे। जनक के यहा का यज्ञ सीता के लिए योग्य वर की खोज के निमित्त था। जनक ने सीता का परिचय 'वीर्यशुल्का' के नाम से दिया है। वीरता मे श्रेष्ठता की परीक्षा लेकर जो ब्याही जायेगी। वह वीर्यशुल्का कहलाती थी।

इसीलिए भारत के बीसवी शताब्दी के अद्वितीय विद्वान प० सातवलेकर जी ने वाल्मीकि के नाम पर गलती से प्रचलित 'स्वयवर' शब्द मे संशोधन किया। स्वयवर शब्द के अर्थ के अनुसार तो सीता या द्रौपदी को इच्छानुसार वर प्राप्त करने के लिए स्वतत्र होना चाहिए था परन्तु ऐसा नही था क्योकि उनके विवाह की शर्त थी। जो उसे पूरा करे, उसी के साथ उनका विवाह होना था। इसीलिए उन्होंने स्पष्टीकरण दिया है। जड वस्तु जैसे धन, जायदाद, राज्य आदि दाव पर लगे तो वह द्यूत' (जुआ) कहलाता है। जहा कन्या को (जीवित वस्तु को) दाव पर लगाया गया है, अतः इसे 'समाह्वय'कहना चाहिये। सीता का भी 'समाह्वय' था। धनुष एव सीता का परिचय देते समय जनक ने यही स्पष्ट किया है।

जनक कुल के आदि पुरुष निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवराज के पास धनुष धरोहर के रूप में था। तब से यह (धनुष या धरोहर) इसी कुल में चला आ रहा है। एक बार खेत जोतते समय जोती जा रही भूमि से कन्या प्राप्त हुई। हल के फल को संस्कृत में 'सीता' कहते हैं इसीलिए कन्या का नाम सीता रखा गया। वेद आदि में भी सीता शब्द का ऐसा ही अर्थ है। ऐसी बातों को आधार बनाकर रामायण का विगाड़ने वाले कई विद्वानों में से एक ने रामायण को दक्षिणी भारत में कृषिशास्त्र के विस्तार की कथा बताया है। सीता अतीव सुन्दरी थी। शायद ब्रह्मा ने अपनी कला में कसर नहीं छोड़ी थी। तुलसीदास कहते हैं—बेचारा चांद भी सीता की छवि से क्या मुकाबला कर सकेगा? स्वाभाविक ही अनेक राजाओं की ओर से विवाह के लिए माग आई। पर जनक ने उन्हें बताया कि सीता वीर्यशुल्का है। इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने में सफल व्यक्ति से ही विवाह होगा। अनेक राजा इस धनुष को उठाने या हिलाने में भी असमर्थ रहे, अतः जनक ने सीता के विवाह को उनसे अस्वीकृत कर दिया।

जनक की अस्वीकृति से सभी राजा क्रुद्ध हुए। उन्होंने चारों ओर से मिथिला को घेरा। एक वर्ष तक घेरा पड़ा रहा। जनक के युद्ध के साधन क्षीण होते गये। देवताओं ने जनक की सहायता की। देवसेना के आने पर सभी राजा भाग खड़े हुए। जनक ने विश्वामित्र से कहा, "यदि राम प्रत्यंचा चढ़ा दें तो मैं सीता का विवाह राम से करने को तैयार हूं।" ऋषि विश्वामित्र ने जनक को धनुष दिखाने को कहा। धनुष के आकार तथा वजन का अनुमान हम इसी बात से लगा सकते हैं कि वह आठ पहियों की गाड़ी पर संदूक में रखा हुआ था। हम अपने शरीर के अनुपात में महाराणा प्रताप का डेढ़ मन का लोहे का कवच भी आश्चर्य से देखते हैं तो शिव धनुष के इस वर्णन को अतिशयोक्ति मानें तो आश्चर्य नहीं। पर यह सत्य बात थी। विश्वामित्र ने राम से धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने को कहा। राम ने ज्यों ही प्रत्यंचा कान तक खींची त्यों ही धनुष बड़ी भीषण आवाज के साथ टूट गई। ऐसा लगा मानो पर्वत फट रहे हैं अथवा भूकंप हो रहा हो। उपस्थितों में कुछ को मूर्च्छा तक आ गई।

धनुष भंग देखकर जनक ने कहा, "हे महामुनि, आज मैंने राम का पराक्रम स्वयं देखा। राम को पतिरूप में पाकर सीता जनककुल की कीर्ति का विस्तार करेगी। मेरी प्रतिज्ञा सफल हो गई। मैं अपनी पुत्री पराक्रमी राम को अर्पित करता हूं। विश्वामित्र से आज्ञा लेकर जनक ने अयोध्या को दूत भेजे। दशरथ को राम लक्ष्मण के कुशल समाचार के साथ सीता-विवाह का निमंत्रण भी भेजा गया।

मिथिलानरेश का निमंत्रण पाकर कौशलाधीश दशरथ आनन्द से फूल उठे। बड़े ठाठबाट के साथ दलबल सहित राजा दशरथ मिथिला पधारे। वसिष्ठ, कश्यप, मार्कण्डेय आदि प्रमुख ब्रह्मर्षि गण आगे-आगे आये थे। पीछे-पीछे राजा

दशरथ और उनके अन्य मत्री और बाद मे सेना थी। चार दिन की यात्रा के बाद बारात विदेह पहुची। जनक की ओर से भव्य स्वागत किया गया। दूसरे दिन प्रातः यज्ञसमाप्ति के बाद सीता-राम के विवाह के लिए निमत्रण दिया गया। दशरथ ने कहा, "प्रतिग्रह दाता के अधीन होता है अत आप जैसा कहेगे वैसा होगा। सभी बडे प्रसन्न हो गये। तदुपरान्त ऋषि विश्वामित्र के साथ राम एव लक्ष्मण पिता से मिले। पुत्रो से मिलकर दशरथ को कितना आनन्द हुआ होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। सभी ने बहुत प्रसन्नता से रात बिताई।

अगले दिन प्रात यज्ञकार्य कर जनक ने अपने बधु कुशध्वज को समाचार भेजा। वे इक्षुमती नदी के किनारे साकाश्या नगरी मे रहते थे। इस नगरी के चारो ओर शत्रुओ से रक्षा के लिए बडे-बडे यत्र लगाये गये थे। वार्यापलकपर्यन्ता पिबन्नि क्षुमती नदीम्॥ (१।७०।३) कुशध्वज शीघ्रगति से जनकपुरी आये। जनक ने अपने प्रमुख मत्री द्वारा दशरथ को बुलवा भेजा। वहा पहुचकर दशरथ ने नम्रता से कहा कि कुल की परम्परा के अनुसार गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से सब काम होगे। विश्वामित्र की आज्ञा हो तो वसिष्ठ ही मेरे कुल का परिचय देंगे। वसिष्ठ के द्वारा इक्ष्वाकुवश का परिचय देने के बाद जनक ने अपने वश का परिचय दिया और सीता और उर्मिला को राम एव लक्ष्मण को अर्पित करने की विधिवत घोषणा की। यह घोषणा शास्त्र के अनुसार उन्होने तीन बार दुहराई। प्रारम्भिक विधि समाप्त होने पर विश्वामित्र ने कुशध्वज की कन्याए माण्डवी और श्रुतकीर्ति क्रमश भरत और शत्रुघ्न को देने का सुझाव दिया। इस पर सीरध्वज जनक (सीता के पिता) ने कहा कि सूर्यवश के चारो कुमारो को कन्या देने योग्य मुझे समझा गया। यह मेरा सौभाग्य है, अत ऐसा ही हो। तब तक भरत के मामा युधाजित भी केकय देश से वहा पहुच गये।

दोनो ओर से पूर्ण तैयारी के साथ अभूतपूर्व विवाह सम्पन्न किये गये। दान की तो सीमा ही नही थी। इतना दान दिया गया था कि याचको की याचकता समाप्त हो गई। उस समय के उत्तर भारत के सर्वश्रेष्ठ दो कुलो का सम्बन्ध हुआ था। उस प्रसग की शोभा वर्णनातीत है। वाल्मीकि ने भी इसका चालीस श्लोको मे वर्णन किया है। विवाह सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न होने पर विश्वामित्र हिमालय मे कौशिकी नदी के तट पर अपने आश्रम को चले गये। राजा जनक ने बहुत अधिक धन, आभूषण, हाथी, घोडे, रथ आदि कन्याधन के रूप मे देकर दशरथ को वधुओ के साथ विदा किया। नगर के बाहर तक बारात को विदा कर दशरथ की आज्ञा लेकर जनक वापस आ गये। उधर अयोध्यानरेश राजा दशरथ ने महर्षियो को आगे कर अपने पुत्र आदियो के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

किरण-८

परशुराम का गर्व-भंग

सूर्य वंश के दिग्विजयी राजा दशरथ के लोकोत्तर पुत्रों की बारात थी। किसी का कोई प्रश्न ही नहीं था। ठाठ-बाट देखते ही बनते थे। इतने में हवा में किसी संकट के आने के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। भीषण गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी। सभी स्तब्ध थे। बारात में सेना ने युद्ध देखा नहीं था। यदा-कदा दशरथ अकेले ही युद्ध में सहायता करने जाते थे। अयोध्या में तो कोई युद्ध करने का साहस ही नहीं करता था। इसीलिए उसका नाम 'अयोध्या' पड़ा था। विवाह से लौटती बारात में बाधा के कारण दशरथ का मन सर्वाधिक शंकित था। इतने में दूर से भीषण परशुधारी, विशालकाय मानो यमराज ही पधार रहे हों, कुठार को घुमाते हुए स्वयं परशुराम आते दिखाई दिये। उनकी मुद्रा भी क्रोधयुक्त थी। उनका वह रौद्र रूप देखकर वीरों की जान तो दूर दशरथ स्वयं अनिनगात्र झुककर गिड़गिड़ाने लगे।

परशुराम का क्रोध राम द्वारा शिवधनुष तोड़े जाने पर था। दशरथ ने परशुराम से राम का जीवनदान देने की याचना की। दशरथ की याचना पर ध्यान न देकर परशुराम ने सीधे राम से बात प्रारम्भ की। परशुराम ने कहा, "तुमने शिव धनुष तोड़ा है। मैं विष्णुधनुष लाया हूँ। इसकी प्रत्यंचा चढ़ाने में सफलता मिली तो मैं तुम्हें अपने साथ युद्ध के योग्य समझूँगा अन्यथा सभी का नाश करूँगा। राम की शान्ति अटल थी। राम ने परशुराम से कहा, "महामुनि क्रोध शान्त कीजिए। आप जैसे वृद्ध तथा ब्राह्मण ही यदि क्रोध करेंगे तो हम लोग और शान्ति के लिए किसकी ओर देखेंगे?" राम की विनय से परशुराम प्रथम उत्तर में ही झेंप गये। राम ने आगे चलकर कहा कि मैं क्षत्रियकुलोत्पन्न अवश्य हूँ, पर जन्म लेना नियति के हाथ वाली होती है। मेरे हाथ नहीं, अतः इसमें मेरा दोष नहीं। परशुराम का चढ़ा हुआ पारा और नीचे उतर आया। यह राम-परशुराम संवाद बीच में लक्ष्मण को निमित्त बनाकर तुलसीदास ने बहुत रोचक ढंग से लिखा है।

उद्दण्ड क्षत्रियों का नाश कर पृथ्वी पर धर्मराज्य स्थापना था परशुराम का अवतार कार्य समाप्ति पर था। कार्तवीर्य अर्जुन को मारकर, समस्त पृथ्वी जीत कर परशुराम ने बहुत बड़ा यज्ञ किया एवं समस्त पृथ्वी कश्यप को दान में दी थी। वे स्वयं महेन्द्र पर्वत पर चले गये थे। विश्वकर्मा द्वारा बना अत्यन्त दृढ़ एवं श्रेष्ठ धनुष त्रिपुरासुर का वध करने के लिए शिवजी को दिया था। यही शिवधनुष नाम से सीरध्वज जनक के पूर्वज देवरात जनक के पास धरोहर रूप में था। राम के हाथ से प्रत्यंचा चढ़ाते समय वही धनुष टूट गया था, अतः परशुराम द्वारा धनुष तोड़ने का आक्षेप होते ही राम ने अत्यंत विनयशीलता से ... ... कठिन आयास

भरी बात कही। परशुराम के "किसने तोडा" इस प्रश्न का उत्तर धनुष तोडने वाला आपका ही कोई दास होगा यह कहकर राम ने परशुराम की योग्यता की प्रशसा की। फिर राम कहते हैं कि "मैं शिवधनुष तोडने मे कहा समर्थ हू? वह पुराना था। हाथ लगाते ही टूट गया।" परशुराम ने जहा कर्तापन का अहकार दिखाया है, वहा राम ने कर्ता के अहकार को तिलाजलि दी है।

गोस्वामीजी के अनुसार प्रारम्भ मे परशुराम अपने फरसे को देख देखकर बात करते थे। उसका कोई प्रभाव न देखकर वह परशु का नाम लेकर बात करने लगे। तब भी कोई प्रभाव न पड़ता देखा, तो परशु हाथ मे लेकर उसे दिखा-दिखाकर तथा अपने पराक्रम का स्मरण दिलाकर वे बात करने लगे। और अन्त मे तो परशु लेकर मारने दौडे। तब राम ने कहा, "ब्रह्मन्! शान्त होइये, लक्ष्मण बालक है, उसका आपके परशु की ओर नही, आपके जनेऊ की ओर ध्यान था। यदि आप परशु धारण की अपेक्षा ऋषि वेश मे आते तो लक्ष्मण इतनी भी अवमानना न करता। परशु उठाने का आपको अधिकार है। हमारे मस्तक आपके सामने झुके है। आप ब्राह्मण हैं। हम आप पर हाथ नहीं उठा सकते। यदि हमारे रहते ब्राह्मण को अभय न मिला तो उसकी रक्षा कौन करेगा? जहा तक क्षत्रिय कुल की बात है, वहा आप तो क्या प्रत्यक्ष काल भी मैदान मे आये तो रघुवशी पीठ नही दिखा सकते, फिर भी हम ब्राह्मण पर हाथ नही उठायेंगे।"

एक तो ब्राह्मण, दूसरे तपस्वी, फिर अवतार कार्य के लिए देहधारी, ऐसे पुरुष का सम्मान रखते हुए श्रीराम ने असीम धैर्य की मर्यादा प्रकट की तथा परशुराम की मर्यादाओ का भी रक्षण किया। दोनो ओर की मर्यादा की रक्षा का कार्य राम को कई बार करना पडा है। यही उनके मर्यादापुरुषोत्तम होने का प्रमुख लक्षण है अन्त मे परशुराम के आग्रह से "विष्णु-धनुष" की प्रत्यचा राम ने चढा दी। राम का सामर्थ्य देखकर परशुराम धरती पर उतर आये। उन्हे लगने लगा कि उनका कार्यकाल समाप्त हो चुका है। उन दिनो देश को जैसे पुरुष की आवश्यकता थी, वह उनके सामने खडा था। वाणी मधुर पर दृढ, शब्द विवेकपूर्ण पर सशक्त, अहकार शून्य, स्वाभिमान होने पर भी विनयशील, मर्यादाओ का रक्षक तथा शरीर बल के नाते मानो सर्वशक्तिमान-इस रूप मे राम को देखकर परशुराम ने प्रसन्नता के साथ पराजय स्वीकार की।

पर अब राम की बारी थी। राम ने कहा कि "मैं सहसा धनुष की प्रत्यचा चढाता नही। पर प्रत्यचा चढने के बाद लक्ष्यभेद किये बिना उतारता नही। अब आप ही बताइये यह बाण कहा छोडू? आपको मारने से मर्यादा भग होगी, परन्तु आपकी गति रोकी जा सकती है।" तब परशुराम ने राम से विनय की कि राम उनकी गति न रोकें अपितु उनके सचित पुण्य को समाप्त करें। परशुराम ने विनती की, "मैं पुन तपस्या द्वारा पुण्यसचय कर जीवन सार्थक कर लूगा। गति रुकने से

मैं निर्दिष्ट स्थान पर न जा सकूंगा।" राम ने वैसा ही किया। अब राम, वसिष्ठ और दशरथ से विदा लेकर परशुराम पुन महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने चले गये। परशुराम के चले जाने पर सभी ने राम की भूरि-भूरि प्रशंसा की और चौगुने उत्साह से बारात अयोध्या की ओर चल पड़ी।

यहां बालकाण्ड समाप्त होता है। राम का जिस कार्य के लिए जन्म हुआ था, उसका सूत्रपात इसी काण्ड में हुआ है। इसी दिशा में राम की आवश्यक शिक्षा-दीक्षा हुई है। ताड़कावध द्वारा रावण कुल को चुनौती दी जा चुकी है। साथ ही क्षत्रियों का तेज हरण करने वाले परशुराम को भी योग्य रास्ते पर लगाकर समूचे क्षत्रिय वंश का पराक्रम के लिए आह्वान किया है। अहल्या जैसी साध्वी को समाज में मान्यता दिलाकर सामाजिक क्रांति का सूत्रपात भी किया गया है। कैकय से जनकपुरी तक भिन्न राजवंश एकसूत्र में बंध गये हैं। इस पृष्ठभूमि में हम अयोध्या पहुंच रहे हैं।

उपसंहार

साधारण मान्यताओं की तुलना में वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड की कुछ बातें किंचित् भिन्न प्रकार में ध्यान में आती हैं। रामजन्म के पूर्व जो वातावरण बना था, उसे वाल्मीकि सहित कवियों ने पर्याप्त मात्रा में अलौकिक रूप देने का प्रयत्न किया है। यदि उसे साधारण लौकिक रूप से भी देखा जाये तो उस समय की परिस्थिति तथा वातावरण विशेष प्रकार के अतुलनीय मानवीय शक्ति का आह्वान करने वाला था, यह बात माननी पड़ेगी। इसी दृष्टि से दशरथ द्वारा अश्वमेध का और बाद में पुत्रकामेष्टि यज्ञ का आयोजन हुआ था। इस पृष्ठभूमि में तत्कालीन आधिभौतिक आधिदैविक विज्ञान की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है।

उस काल में यज्ञ-कल्पना केवल आध्यात्मिक या पारलौकिक कल्याण तक सिमित नहीं थी। उनका लौकिक जीवन से भी पर्याप्त सम्बन्ध था। विशेषकर राजाओं या गृहस्थों द्वारा आयोजित यज्ञ लौकिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, सम्मेलनों के लिए अर्थ वितरण आदि के लिए भी होते थे, ऐसा दीखता है। राम के जन्म की कामना वृहत् सभा द्वारा प्रकट हुई है तथा रावण के नाश के लिए कोई पुत्र हो, यह सभी का आशीर्वाद सा था। इसी योजना के अन्तर्गत देवता लोग वानर का रूप धारण कर दक्षिणी भारत में इतस्ततः बिखर गये हैं तथा आगे की घटनाओं से लगता है कि अगस्त्यजी के अतिरिक्त अन्य अनेक ऋषि भी अश्वमेध यज्ञ के बाद ही दण्डकारण्य में जाकर बसे हैं।

विश्वामित्र का आगमन भी आकस्मिक न होकर स्पष्ट रूप से पूर्वनियोजित दिखाई देता है। गंगावतरण, अमृतमथन तथा अन्य कथाओं के माध्यम से श्रीराम की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की गई थी। श्रीराम को उस समय उपलब्ध सर्वोत्तम शस्त्रास्त्रों की शिक्षा भी दी गई। यज्ञरक्षा के नाम पर प्रारम्भिक युद्धाभ्यास भी कराया गया तथा सीता-विवाह करवाकर ऋषि विश्वामित्र ने सभी से सदा के लिए विदा ली। विशेष ध्यान देने की बात है कि यह सब कार्य केवल एक मास की अवधि में सम्पन्न करवाये गये। इसी से विश्वामित्र का आवागमन पूर्वनियोजित था, यह सिद्ध होता है। विश्वामित्र की माग का वसिष्ठ द्वारा प्रबल समर्थन इसका दूसरा प्रमाण है।

राम के जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रशिक्षण विश्वामित्र के सान्निध्य में ही संभव था। इसीलिए वे यज्ञ का निमित्त बनाकर आये थे। यज्ञ में बाधा का तथा सुबाहु आदि के नाश का वर्णन वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि ने केवल १।२ सर्ग में किया है। अर्थात् यज्ञ का महत्त्व गौण दीखता है। राम के स्थान पर दशरथ या उसकी सेना विश्वामित्र को अस्वीकार थी, इतना ही नहीं तो राम के साथ भी दशरथ का आना उन्हें अस्वीकार था। अयोध्या जनकपुरी के बीच रावण के प्रहरी एवं पृष्ठपोषक प्रतिनिधि, ताड़का एवं उसके पुत्र मारीच, सुबाहु आदि नाश एवं उसके माध्यम से रावण वध की नीति और इस दिशा में राम की सिद्धता, यही विश्वामित्र के आगमन का मुख्य लक्ष्य स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। ऐसी सिद्धता कराकर तथा जनकपुरी एवं अयोध्या को शृंखलाबद्ध कर विश्वामित्र हिमालय पर चले गये।

अहल्या का पुनरुद्धार वाल्मीकि ने भिन्न प्रकार से दिखाया है। पूर्ण चेतनावस्था में तपस्यारत (शिलारूप नहीं) राख में बैठी थी। किशोर आयु में स्त्री के लिए सहज सम्भव अपराध के लिए उसके द्वारा प्रायश्चित्त पर्याप्त हो चुका था। समाज की मान्यता के अनुसार वह पतित थी। परन्तु समाज को उसकी तपस्या के बाद उसे श्रेष्ठ मानना चाहिए था। उसकी इस श्रेष्ठता को समाज में सामान्य स्थान दिलाने का काम राम ने स्वयं उसके पैर छूकर किया है। यही वाल्मीकि ने लिखा है। राम का जाने या अनजाने किसी शिला का पैर लगा और उसमें से अहल्या निकली, यह वाल्मीकि की मान्यता नहीं है। वैसे वाल्मीकि रामायण में शिला शब्द का प्रयोग ही नहीं है। 'भस्म' शब्द का प्रयोग है। अध्यात्म रामायण में 'शिला पर बैठी रहे' ऐसा शाप है। और साथ ही कहा गया है कि गर्मी वर्षा सहन करते हुए अहोरात्र निराहार रहो।

> दुष्टे त्वं तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम ,१।५।२७
> निराहारा दिवारात्रं तपः परमसंस्थिता।
> आतपानिलवर्षादि सहिष्णु परमेश्वरम् ॥१।५।२८

विश्वामित्र द्वारा तप पुनः ब्रह्मर्षि पद-प्राप्ति, हर एक पापी के लिए ऊंचे-से-ऊंचा उठने के लिए प्रेरणा देने वाली बात है।

> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः।
> प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति। ..

यह उक्ति विश्वामित्र ने सफल सिद्ध की है। इसी तपस्या में आत्मबल की शारीरिक बल पर विजय भी सिद्ध हुई है। किसी को निराश होने की आवश्यकता नहीं। इतनी दीर्घ तपस्या के बाद भी काम, क्रोध जैसे-जैसे काबू में आ भी जाये तो भी 'अहं' नियंत्रण में नहीं आता, यह भी विशेष ध्यान देने योग्य बात है। परन्तु पवित्र हृदय के सामने अन्त में 'अहं' भी झुक जाता है।

सीता के विवाह को साधारण मान्यता में स्वयवर कहा गया है। न वैसा वहा कोई आयोजन था और न वह स्वयवर था। उसे प० सातवलेकरजी ने 'समाह्वय' कहा है। पहले कभी कई राजा निराश होकर युद्ध हार कर गये थे। एकत्र आयोजन केवल यज्ञ का था। विवाह के लिए धनुष की प्रत्यचा चढाने की शर्त थी। जो उसे चढाता उसे सीता ब्याहती। सीता की इच्छा पर विवाह निर्भर नही था, अत स्वयंवर कहना युक्तियुक्त नही।

अन्त मे पूर्वावतार परशुराम की स्वयं की मर्यादा तथा सूर्यवश की मर्यादाए व स्वाभिमान रखते हुए, राम द्वारा मधुर भाषण, उचित तर्क, अमित बल और सतुलित व्यवहार के आधार पर परशुराम को उनका अवतार कार्य समाप्त होने की सूचना दिलाने वाला प्रसग बहुत प्रेरक है, साथ ही उससे शिक्षा भी मिलती है। इन चारो गुणो के आधार पर यदि प्रतिस्पर्धी मन से साफ हो तो जीता जा सकता है। दूषित मन वाले का तो नाश ही करना योग्य है, इसी पृष्ठभूमि मे राम का भविष्य मे राक्षसो के साथ व्यवहार ध्यान देने योग्य होगा।

आलोक-५

अयोध्याकाण्ड

किरण-१

अयोध्या

परशुराम-राम-प्रसंग के पश्चात् बारात सकुशल अयोध्या पहुंची। अनुवर्ती रामायणकार कितनी विविधता में अपनी भावना तथा संस्कारों के अनुकूल कथाओं की रचना करते रहे, इसके एक दो उदाहरण मनोरंजक रहेंगे। कृत्तिवास की बंगला रामायण के अनुसार जब परशुराम द्वारा विष्णु-धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने की बात कही गई तो सीता परेशानी में पड़ती है। सीता के मन में सन्देह पैदा होता है कि शिवधनुष तोड़ कर मुझसे विवाह हुआ है। अब विष्णु-धनुष के टूटने से एक और विवाह होगा और जब-जब राम द्वारा ऐसे धनुष तोड़े जायेंगे उनसे विवाह हुए तो मेरा क्या हाल होगा? विनोद की बात यह है कि गुरु गोविन्द सिंह ने 'गोविन्द रामायण' लिखी है, उसमें भी यही बात दोहराई गई है। वे लिखते हैं सार सरासन शंकर को जिमि माहि वर्यो तिमि और वरेंगे—पृष्ठ ३४।

शायद इसी प्रकार किंवदन्ती के आधार पर बौद्ध ग्रंथ दशरथजातक, भुशुण्डि-रामायण, सत्योपाख्यान आदि में राम के हजारों विवाह माने गये हैं। हनुमत्संहिता, बृहत्कोशलखण्ड आदि कुछ रामायणों में विवाह के बाद राज्याभिषेक के बीच के बारह वर्षों में राम अयोध्या में रासलीला करते हुए भी दिखाये गये हैं।[1] बारात की ही बात लें तो प्रान्त-प्रान्त की प्रथा के अनुसार बारात में महिलाओं का शामिल होना या न होना निर्भर है। सन्त एकनाथ की भावार्थ रामायण में दक्षिणी प्रथा के अनुसार दशरथ सभी रानियों समेत जनकपुर गये और बाद में सबके साथ लौटे। पर जैसा प्रारम्भ में कहा कि इन भिन्नताओं के कारण राम की ऐतिहासिकता में कमी नहीं आती।

राम की अत्यधिक लोकप्रियता ध्यान में लेते हुए अयोध्यावासियों द्वारा राम

---

१ जैनी रामायण में राम की हजारों पत्नियाँ मानी गयी हैं। वस्तुतः आचार्य तुलसीजी ने इसी की पृष्ठभूमि में सीता की सीमा में दाह दिखाकर माता की निन्दा करवाई है। आचार्यजी ने व्यंग्य के भाव बहुत उत्तम निभाए हैं।

के भव्य स्वागत की कल्पना हम कर सकते हैं। नगर मे सब ओर ध्वजा पताकाएं फहरा रही थी। भांति-भांति के वाद्यो से सारी अयोध्या गूंज उठी थी। राजा दशरथ के महल तक की सडक पर सुगंधित जल से छिडकाव किया गया था। उस पर विपुल मात्रा मे फूल बिखेरे गये थे। पुरवासी, बारात के मार्ग पर, हाथो मे मांगलिक कलश आदि देकर अपने-अपने द्वार के सामने खड़े थे। ऐसी अयोध्या मे जब राजा दशरथ ने प्रवेश किया तो श्रेष्ठ ब्राह्मणो के नेतृत्व मे नागरिको ने अगवानी की। उनके पीछे-पीछे चलकर राजा दशरथ अपने गगनचुम्बी महल की ओर बढते गये। प्रासाद के द्वार पर स्वजनो से मनोवांछित वस्तुएं भेंट स्वरूप प्राप्त कर दशरथ प्रासाद मे चले गये। कौसल्या, कैकेयी आदि ज्येष्ठ रानियां बहुओं को वाहनो से उतार कर अपने-अपने महलो मे ले गई।

विवाह का उल्लास कम होने पर शस्त्रास्त्र, विद्याओ एव नीति मे निपुण रामादि चारो भाई पिता की सेवा मे रहने लगे। भरत के मामा युधाजित् को आए कई दिन बीत गये थे। वे भरत को लेने आये थे। अतः दशरथ ने उन्हे अनुमति देते हुए शत्रुघ्न का भरत के प्रति लगाव देखकर उसे भी साथ ले जाने की अनुमति दी। भरत एव शत्रुघ्न अपनी तीनो माताओ से अनुमति लेकर अपनी ननसाल के लिए प्रस्थान कर गये। इधर राम और लक्ष्मण पिता की सेवा के साथ उनकी आज्ञा मे नगरवासियो के सब काम करवाने मे सहायता करने लगे। वे माताओ की इच्छाएं समान रूप से पूर्ण करते थे और गुरुजनो के भारी-से-भारी कार्य भी निपुणता से पूर्ण करते थे। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे राम गुरुजनो मे, माताओ मे तथा नगरवासियो मे स्नेह के केंद्रबिन्दु बनते गये।

श्रीराम, रूपवान, गुणवान् तथा अत्यधिक पराक्रमी होने पर भी अहंकार रहित थे। वे औरों के भी दोष न देखकर गुण ही देखते थे। उनकी बोली मधुर थी अतः सभी उनकी ओर सहज आकर्षित होते थे। किसी के उपकार से वे स्वय कृतज्ञ होते थे पर स्वय किये हुए उपकार का स्मरण भी नही करते थे। मधुरभाषी होने पर भी झूठी बात उनके मुह से विनोद मे भी नही निकलती थी। विद्वान् होने पर भी ज्येष्ठ पुरुषो का सदा सम्मान करते थे। निषिद्ध कर्मों मे उनकी कभी प्रवृत्ति नही होती थी। वर्णानुसार कर्म से ही स्वर्ग प्राप्ति मे उन्हें विश्वास था। वे छहो अगों सहित वेद के ज्ञाता, भिन्न-भिन्न विद्याओ मे निष्णात एव विशेषत. धनुर्वेद मे पिता से भी बढकर थे। जन-कल्याण करने वाले, सत्यवादी, साधु एव सरल थे। शास्त्रविहित धनोपार्जन एव व्ययकर्म का उन्हें ज्ञान था। इन गुणो के कारण राम ने सभी का हृदय जीत लिया था।

राजा दशरथ के आधिपत्य मे अयोध्या सब प्रकार सुरक्षित एव सुखी थी। जैसे अयोध्या मे कोई भी अकिरीटी या अकुण्डली नही था, वैसे ही वहा अपवित्र भोजन करने वाला, दान न देने वाला, मन पर काबू न पाने वाला अथवा यज्ञ न करने

वाला कोई नहीं था अर्थात् चारों वर्णों के लोग यज्ञ करते थे। यहां तक कि स्त्रियां भी यज्ञ करती थीं। अयोध्या में कोई क्षुद्र (छोटे मन वाला), चोर या सदाचारशून्य व्यक्ति नहीं था। उस समय के द्विजों में कोई भी नास्तिक, असत्यवादी, भोगवादी, शास्त्रज्ञान से रहित, ईर्ष्या करने वाला या दूसरों के दोष देखने वाला नहीं था। कोई भी श्रीहीन, रूपरहित या राष्ट्रभक्ति से रहित नहीं था। चारों वर्णों के लोग, देव एवं अतिथि पूजक, कृतज्ञ, उदार, शूरवीर एवं पराक्रमी थे। ऐसे इस नगर की रक्षा मनु के समान ही राजा दशरथ किया करते थे।

सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों से प्रकाशित होता है वैसे ही दशरथ-पुत्र रामचन्द्रजी समस्त प्रजा में अपने गुणों से प्रिय हो गये थे। मानो सदाचार सम्पन्न, अजेय, पराक्रमी, लोकपालों के समान तेजस्वी राम को, प्रजा के रंजन कारण पृथ्वी ने स्वयं ही राजा बनाने की कामना की थी। अनेक वर्ष राज्य करते रहने के कारण तथा बुढ़ापे के कारण दशरथ के मन में भी यही विचार जोर मार रहा था। अपने जीते जी रामचन्द्र राजा हो जायें, यही अब उनकी एकमात्र कामना थी। रघुवंश की रीति भी यही थी कि पुत्र के योग्य होते ही, राजगद्दी पुत्र को सौंप कर राजा वानप्रस्थ लेते थे।

विचार मन में आने पर राजा ने मन्त्रियों से परामर्श किया। अयोध्या के भूपाल ने राज्य के विभिन्न नगरों में निवास करने वाले प्रधान पुरुषों को एवं जनपदों के सामन्त राजाओं को विचार विमर्श करने के लिए बुलाया। इस अवसर पर कैकयनरेश एवं जनक को, समय के अभाव में दूर होने के कारण निमंत्रण न दिया जा सका। जब सब एकत्र हो गये तब राजा दशरथ ने राम को गद्दी सौंपने का प्रस्ताव रखा तथा सभा से अनुमति मांगी। एक की अपेक्षा अनेक का मन विशेष लक्षणों से युक्त होता है। उसमें पूर्वपक्ष एवं अपरपक्ष दोनों का विचार संभव होता है। यद्यपि राजा का प्रस्ताव सभी को हर्षित करने वाला था फिर भी सभी श्रेष्ठ विद्वान्, गुरुजन, सेनापति तथा नगर एवं जनपदों के प्रमुख पुरुषों ने एकत्र बैठकर विचार किया। विचार-विमर्श के बाद सबने राम को राज्य सौंपे जाने की अनुमति दी। इस पर सभासदों की परीक्षा लेने के लिए दशरथ ने एक विचित्र प्रश्न किया। राजा ने पूछा, 'मेरे स्वयं के सब प्रकार से योग्य रहते आप लोग राम को राजा क्यों बनाना चाहते हैं?'

इस पर सभासदों ने राम के गुण वर्णन से संबंधित अनेक प्रसंग बताये। विशेष कर राम को सत्यवादी सत्पुरुष बताते हुए उन्होंने कहा 'श्रीराम ने अर्थ के साथ धर्म को प्रतिष्ठित किया है। बाहर से अयोध्या लौटने पर वे पुरवासियों से स्वजनों की भांति उनके पुत्र, अग्निहोत्र की अग्नियों, स्त्रियों, सेवकों, शिष्यों का समाचार पूछते हैं। नगर के लोगों पर संकट आने पर उन्हें बड़ा दुःख होता है। हमारे घरों के उत्सवों में वे पिता की भांति सम्मिलित होकर प्रसन्न होते हैं। अतएव देवता,

नाग, असुर, गधर्व एव वृद्ध अथवा युवा स्त्रिया मिलाकर, जनपदो की समस्त प्रजा राम के लिए, बल, आरोग्य एव दीर्घ आयु की कामना करती है। इसीलिए हम उसे युवराज-पद पर विराजमान देखना चाहते है।"

अजलियो को कमलपुष्प की आकृतिरूप बनाकर उसे सिर मे लगाते हुए सभासदों ने राजा दशरथ के प्रस्ताव का समर्थन किया। राजा दशरथ ने उनकी यह पद्माजलि स्वीकार की। तदुपरान्त राजा दशरथ ने राजकुलगुरु महर्षि वसिष्ठ से आशीर्वाद ग्रहण कर सभी को सुनाई दे इस प्रकार वसिष्ठपुत्र वामदेव आदि ब्राह्मण वर्ग एव मन्त्रिगणों को युवराज्याभिषेक की तैयारी कराने की आज्ञा दी। गुरु वसिष्ठ से राजा ने विधि-विधान सबधी मार्गदर्शन मागा एव उनके द्वारा सेवकों को सूचनाए दिलवाई। सुमन्त के द्वारा राम को बुलाया गया। राम के आने पर दूसरे दिन प्रात: पुष्य-नक्षत्र मे उनके युवराज्याभिषेक की सूचना उन्हे दशरथ ने दी। साथ ही राजा के योग्य नीति की कुछ बाते भी दशरथ ने श्रीराम को बताई। राजा से सूचना पाकर रामचन्द्रजी अपने महल मे चले गये। जाते-जाते राम के मन मे चिंता व्याप्त हुई। चारो भाइयो के समान रहन-सहन, खानपान, गुणावगुण तथा सामर्थ्य के रहते उन्हे अकेले को राजगद्दी क्यो, यह उनकी चिन्ता का विषय था।

रात भर मे संपूर्ण नगर ध्वजा-पताकाओ से सजाया गया। सब ओर सुगधित द्रव्यो से छिड़काव हुआ। सभी देवमदिरो एव चैत्योमे वृक्षों के नीचे या चौराहे पर अथवा जो जो पूजने योग्य देवता थे वहा विशेष सफाई की गई थी। वहा पर प्रात ही भक्ष्य-भोज एव दक्षिणा दी जाने वाली थी। सूर्योदय होते ही स्वस्तिवाचन के लिए ब्राह्मणो को निमन्त्रित किया गया था। एक लाख ब्राह्मणो के भोजन की व्यवस्था की गई थी। नगर के सभी प्रमुख द्वारो को चन्दन एव मालाओ से सजाया गया था। सब तरफ धूप की सुगध फैल रही थी। इस प्रकार आने वाले प्रात. होने वाले राम के राज्याभिषेक की तैयारी पूर्ण हो गई थी।

किरण-२

कैकेयी और मथरा

यद्यपि अयोध्या जनपद का जन-जन राम के अभिषेक होने की योजना से अत्यन्त आनन्दित था, तब भी एक कोने मे कैकेयी रानी के महल की मथरा दासी को इस समाचार से साप सूध गया। इस मनोवैज्ञानिक घटना के सबध मे कई प्रकार से विचार प्रकट किये गये है। कुछ रामायणकारो के अनुसार देवताओ के कहने से सरस्वती ने मथरा की बुद्धि फेरी थी। अध्यात्मरामायण के अनुसार राम ने कैकेयी का मन अपना उद्देश्य सिद्ध करने हेतु बदला था। कुछ नवीन रचनाकारो के अनुसार देशहित मे स्वय कैकेयी ने बदनामी लेकर राम को नियत-कार्य के लिए भेजा। इन

अयोध्या मे इसकी संभावना हो सकती थी। कैकेयी के विवाह के अवसर पर केकय नरेश को दशरथ ने हंसी-हंसी मे एक बात कही थी. उसका दशरथ को स्मरण था। भले ही कैकेयी ने उसका कभी स्मरण न किया हो, न कराया हो। शास्त्रों मे भी विवाह के समय के ऐसे वचनों को विनोद माना गया है। परन्तु सत्ता-सघर्ष ऐसी लुभावनी घटना है कि अच्छे-अच्छे लोग सरलता से इसके फेर मे आ जाते है, अतः दशरथ का भय कारण-रहित नही था।

राम कौशल्या को सूचना देने गये। वहा सुमित्रा, लक्ष्मण, सीता सभी थे। कौशल्या नारायण का ध्यान किये बैठी थीं। मा से आशीर्वाद प्राप्त कर राम सीता सहित अपने महल मे आये। तब तक वसिष्ठ मुनि दशरथ के कहने से स्वय राम से अभिषेक सबधी बाते करने गये। राम का भवन श्वेत बादलों के समान उज्ज्वल था। वसिष्ठ मुनि सात चौक वाले भवन मे प्रथम तीन चौक तक रथ मे बैठकर ही पहुचे थे। उनका रथ ब्राह्मणो के चढने योग्य था। राम ने तीसरे चौक तक आगे बढकर हाथ देकर मुनि को रथ मे उतारा। महर्षि वसिष्ठ को राम महल मे ले गये। यथोपचार पाद्य-पूजा करने पर राम ने ऋषि से आगमन का हेतु जानना चाहा। राज्याभिषेक की यथाविधि सूचनाएं देने तथा उस निमित्त दीक्षा देने वे पधारे थे। राम और सीता को व्रतस्थ रहने की दीक्षा दी गई। तथा उन्हे व्रत-सम्बन्धी सूचनाए भी दी। उस समय राम के कुछ सुहृद भी वहा उपस्थित थे। दीक्षा-विधि के उपरान्त राम महल के अन्दर गये।

अयोध्यावासियो का आनन्द देखते ही बनता था। सभी मानो सूर्योदय की प्रतीक्षा मे थे। राम के महल से गुरु वसिष्ठ सीधे दशरथ के पास आये तथा उन्हे सब समाचार दिया। मार्ग पर इतने नागरिक एकत्र थे कि वसिष्ठ को रथ चलाना कठिन हो गया था। जैसे-तैसे वे अपने निवास पर पहुचे। अयोध्या मे चौराहे-चौराहे पर पुरवासी एकत्र होकर अभिषेक की चर्चा कर रहे थे। यहा तक कि बच्चों में भी यही चर्चा का विषय था।

यह सारा उत्साह का वातावरण मथरा ने देखा। मथरा कैकेयी की दासी थी। वह केकय देश की निवासिनी थी। शरीर न कुबडी बुद्धि से कुटिल थी। वह दासी होने की अपेक्षा स्वय को कैकेयी की परामर्शदात्री समझती थी। राम की धाय से जनोल्लास का कारण सुनकर वह बेचैन हो गई तथा उलटे पाव कैकेयी के पास दौड गई।

हांफते हुए कैकेयी के पास आकर मथरा बोली, "मूर्ख, उठ, यहा सो क्या रहा है? तुझ पर भीषण भय आ रहा है। मानो पहाड़ टूट रहा है। तुझे इसका कोई बोध नही होता? राजा दशरथ यहा आकर बडी-बडी बाते बनाकर प्रसन्न कर जाते है। परन्तु कल प्रात वे सपूर्ण राज्य राम को सौप रहे हैं। इसमे तेरा सौभाग्य मिट जायेगा। "इष्ट मे अनिष्ट का दर्शन करने वाली कुब्जा की बात सुनकर

कैकेयी दुखी हुई, कैकेयी ने राम को राज्य मिलने की बात पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट कर अपना नौलखा हीरों का हार मथरा की ओर फेंका। कैकेयी की प्रसन्नता देखकर मथरा और भी क्रुद्ध गई।

कैकेयी का साम्राज्ञी होने का अभिमान जगाते हुए बोली, "तुम महाराज की सर्वप्रिय रानी होने के बाद भी राजनीति नहीं समझती। महाराज तुमसे कितनी चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं, पर वे हृदय के क्रूर हैं। तुम सब बातें शुद्ध-भाव में लेती हो। उन्होंने भरत को ननसाल भेजा है और राम को युवराज बनाने जा रहे हैं ताकि उसकी अनुपस्थिति में कोई संकट न रहे। तुम जिसे पति समझती रही वह तुम्हारा शत्रु निकला। सर्पवत् बर्ताव करने वाले राजा को तुमने अपने अंक में स्थान दिया। राम को राज्य देकर दशरथ ने तुम्हें सबन्धियों सहित मौत के मुंह में डाल दिया है। मेरी बातों में विस्मय करना छोड़ो, और समय रहते सचेत हो जाओ। समय रहते अपने अधिकारप्राप्ति के लिए पग उठाओ। इसी में तुम्हारी, भरत की तथा मेरी भी रक्षा सम्भव है।"

मथरा द्वारा इतना उकसाने पर भी कैकेयी का मूलत सात्विक भाव विचलित न हुआ। इसका हर्ष वैसा ही बना रहा। उसने कहा, "मथरे! मैं राम और भरत में भेद नहीं करती। न ही राम माताओं में भेद करता है। और यदि राम भेद करता भी हो तो वह कौशल्या की अपेक्षा मुझसे अधिक प्यार करता है। मुझे ही अधिक आदर देता है। राम धर्म के ज्ञाता, गुणवान, जितेन्द्रिय सत्यवादी और पवित्र होने के साथ महाराजा के श्रेष्ठ पुत्र हैं, अत उनका ही राज्याभिषेक होना न्यायसंगत एवं श्रेयस्कर है। इसलिए मुझे भी बहुत प्रसन्नता हो रही है। ऐसे अभ्युदय प्राप्ति के समय तुम जलती क्यों हो? राम को मिला राज्य भरत को मिला हुआ ही समझो।"

कैकेयी की बातें सुनकर मथरा दुःख से व्याकुल हो गयी। उसे कैकेयी की मंद-बुद्धि होने पर तरस आ रहा था। यहां तुलसीदास ने मथरा के मुंह में ये प्रसिद्ध पंक्तियां कहलवाई हैं—

"कोउ नृप होहिं हमहिं का हानी।
चेरी छाडि न होइब रानी।।"

यह कोई स्थितप्रज्ञ का लक्षण नहीं है। हमारे देश के अनेक साधुसन्त, सन्यासी इन पंक्तियों की आड में अन्यायी शासन (यहां तक कि विदेशी शासन भी) सहन करते रहे हैं। वे मथरा के अनुयायी हो सकते हैं, राम के नहीं।

मथरा ने कहा, "तुम्हारी दुर्बुद्धि के लिए मुझे शोक हो रहा है।" तत्पश्चात् मथरा ने अन्तिम अस्त्र चलाया। स्त्रियों में सौत भाव शीघ्र तथा सरलता से जगाया जा सकता है। सात्विक, निर्मोही, गुणवती होने के बाद भी कैकेयी आखिर स्त्री ही थी। मथरा ने राम के राज्याभिषेक के बाद कौशल्या एवं उसकी

स्थिति की तुलना प्रारम्भ की। जैसे-जैसे मथरा कौशल्या की सुस्थिति तथा कैकेयी की दुर्गति का वर्णन करती जा रही थी वैसे-वैसे ही कैकेयी के चेहरे के भाव परिवर्तित होते जा रहे थे। मथरा इन भावो को देख-समझकर नपे-तुले तर्क शब्द प्रस्तुत कर रही थी। वह वाक्पटु तो थी ही, इसीलिए अन्त मे मंथरा विजयी हुई और कैकेयी धराशायी हो गयी।

कैकेयी का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। उसके मन मे आया कि भरत का राज्याभिषेक और राम का राज्य से निष्कासन होना ही चाहिये। पर क्या उपाय हो ? अब तक मथरा पूरी तरह से उसके मन पर छा गयी थी। अत कैकेयी ने उसी से उपाय पूछा। तब उसने कैकेयी द्वारा प्राप्त दो वरो का स्मरण दिलाया और कहा कि वे वर आज ही राजा से मागे जायें। पहले राजा को वचनबद्ध कर लिया जाये तभी वर प्राप्ति का लाभ है। यह करने के लिए चेहरे की या मन की सपूर्ण प्रसन्नता दूर की जानी चाहिये। मंथरा ने सुझाया कि कोपभवन मे जाकर आभूषण फेंककर कैकेयी वही राजा का स्वागत करे, और सपूर्ण निर्णय उसके पक्ष मे होने तक कोपभवन से बाहर न आये। भवन निर्माण कला का कितना विकास था, इसका हम, प्रासादो मे कोपभवन भी होता था, इससे कल्पना कर सकते है। कैकेयी मथरा का अनुसरण करते हुए कोपभवन मे अस्तव्यस्त रूप मे दशरथ की प्रतीक्षा करने लगी।

किरण-३

राम राज्य का शिलान्यास

बालकाण्ड के प्रारम्भ मे वाल्मीकि ने सपूर्ण रामायण काव्य को सीता का महान् चरित्र बताया है तथा इस काव्य का नाम 'पौलस्त्यवध' रखा है।

काव्य रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितं व्रत ॥ (१.४.७)

वाल्मीकि को पढते समय यह विचार बल पकडता है कि रामजन्म के पूर्व से उत्तरकाण्ड के मध्य तक सम्पूर्ण काव्य पर राम के समान ही रावण भी छाया हुआ है। स्वाभाविक ही रामराज्य के लिए रावण-वध यह प्रारम्भिक शर्त मानी जाती होगी। रावण-वध का महत्त्व किसी प्रकार कम नही। परन्तु शत्रु का नाश अथवा परायो का निराकरण तथा स्वराज्य का धर्मानुसार शासन यह पूर्णतः न्यायपूर्ण भिन्न क्षेत्र एव विषय हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध का एकमेव नायक (हीरो) चर्चिल, बाद मे हुए इग्लैंड के निर्वाचन मे शासन के लिए अयोग्य माना गया था यह सर्वविदित सत्य है।

रामायण तथा रामराज्य के आधार के सम्बन्ध मे भी अधिक गहराई से

सान्त्वना यहाँ उचित रहेगा। रामराज्य का आधार व्यक्तिविशेष का वध न होकर किन्हीं जीवन मूल्यों की मर्यादाओं की स्थापना तथा उनके लिए आजीवन कष्ट सहने वाले राम का जीवन दिखायी देता है। इसी दृष्टि से १४ वर्ष बाद प्रारम्भ होने वाले रामराज्य का शिलान्यास अयोध्या में १४ वर्ष पूर्व होता है। रामराज्य के लिए आवश्यक भाव-भावनाएं, नीति, व्यवहार, जीवनमूल्य, चरित्र, सत्यासत्य विवेक आदि का सुस्पष्ट दर्शन राम ने यहीं से व्यवहृत करना प्रारम्भ किया है। यदि हम कथासूत्र का अनुशीलन करें तो हमें यह सहज ही दिखाई देगा। इससे पूर्व का भी राम का जीवन निरर्थक नहीं था, परन्तु अयोध्या के राजपरिवार की तथा परिणामस्वरूप प्रजा की जो आंतरिक समस्या थी उसके निराकरण का उपाय यहीं से प्रारम्भ हुआ। रामराज्य की संस्थापना में इस प्रथम मोर्चे का या घरेलू मोर्चे का महत्त्व अधिक ही मानना पड़ेगा।

कैकेयी आभूषण आदि फेंककर कोपभवन के भूमितल पर अस्त-व्यस्त पड़ी थी। प्रातः होने वाले राज्याभिषेक का पूरा प्रबन्ध कर आनन्द की सूचना देने के लिए राजा दशरथ स्वयं कैकेयी के महल में आये। नित्य की भांति स्वागत तो दूर परन्तु कैकेयी अपने कक्ष में भी नहीं मिली। उसी समय दशरथ का मन सशंक हुआ। पड़ोस में खड़ी प्रतिहारी ने बताया कि रानी कोपभवन में है। रानी का समाचार सुनकर दशरथ आश्चर्य में पड़ गए। वे तेजी से कोपभवन में गये। कैकेयी की अवस्था देखकर वृद्ध राजा व्याकुल हो गये।

मंथरा ने कैकेयी को यह भी समझाया था कि राजा तुम्हें इतना प्यार करते हैं कि वह तुम्हारी बात पर आग में कूदने को भी तैयार होंगे। अतः तुम वचन लेकर ही दम लेना। कैकेयी-दशरथ का वार्तालाप मंथरा की इस बात की पुष्टि करता है। दशरथ यहां तक कहते हैं कि तुम्हें प्रसन्न करने के लिए किस अवध्य का वध किया जाय अथवा किस प्राणदण्ड मिले हुए को मुक्त किया जाये। फिर भी इस बात को उचित सन्दर्भ में एवं लोक व्यवहार के नाते देखना होगा। राम का अभिषेक दशरथ का उद्देश्य था। सामयिक बाधा को तात्कालिक रूप से दूर करने के लिए किस सीमा तक बात बढ़ाई जा सकती है, इतना ही इन बातों का आशय मानना होगा। दशरथ को इतना भोला मानने का कारण नहीं। फिर भी दशरथ की बातों का कैकेयी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। कैकेयी ने कहा, "न मुझे कोई रोग है, न किसी ने मेरा अपमान किया है। मेरा एक मनोरथ है। आप उसकी पूर्ति की प्रतिज्ञा करें। मैं केवल इतना ही चाहती हूं।" इस पर राम को सर्वाधिक प्रियतम बताकर दशरथ ने राम की शपथ लेकर प्रतिज्ञापूर्ति का वचन दिया। यहां भी तुलसीदास की प्रसिद्ध पंक्तियां स्मरण की जा सकती हैं, दशरथ कैकेयी से कहते हैं—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाय पर वचन न जाई॥

दुर्भाग्य से इसे अपनाने वाले राजनेता तो दूर धार्मिक नेता भी आज कम ही मिलते हैं।

राजा को इस प्रकार शब्दो मे बाधकर कैकेयी ने अपने दो वर माग लिये। "एक से भरत का राज्याभिषेक और दूसरे से राम को १४ वर्षों का वनवास।" मथरा ने समझाया था कि १४ वर्ष मे भरत राज्य पर पूरी तरह काबू पा लेगा। राम यदि अयोध्या मे अथवा आसपास ही रहे तो भरत की पकड ढीली रहेगी, अत. कैकेयी ने भरत को निष्कटक राज्य और राम को वल्कल सहित वनवास मांगा था। वाल्मीकि ने भी ११वें सर्ग मे दशरथ के लिए 'काममोहित' शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु कैकेयी की माग सुनते ही दशरथ पूर्णत भिन्न रूप में प्रकट होते है। वे क्रोधयुक्त हो चिंता करने लगे। उनकी सूझबूझ समाप्त हो गयी। उनकी आखो के सामने अधकार छा गया। स्वय का धिक्कार करते-करते वे मूर्च्छित हो गये।

मूर्च्छा हटते ही राजा ने कैकेयी को "दयाहीन, दुराचारिणी" शब्दो से संबोधित किया। उनकी वासना या कैकेयी के प्रति लम्पटता की मात्रा भी हम सरलता से समझ सकते हैं। दशरथ आगे कहते है, "क्या तू कुल का नाश करना चाहती है? राम ने तुझे सभी माताओ से अधिक प्यार दिया है। सम्पूर्ण जीव-जगत् राम से प्यार करता है। उसे मैं कैसे त्याग सकता हू? मैं कौशल्या को, सुमित्रा को या राज्यलक्ष्मी को भी त्याग सकता हू, पर राम को नही त्याग सकता हू, सूर्य के बिना ससार टिका रह सकता है, जल के बिना खेती हो सकती है, पर राम के बिना मैं नही रह सकता। तू इस दुराग्रह को त्याग दे। तू मेरा भरतप्रेम देखना चाहती है तो मैं उसका राज्याभिषेक स्वीकार करता हू। पर राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है? तू तो उसे भरत से भी अधिक प्यार करती थी। मेरे यहा हजारो नौकर है। एक ने भी कभी राम की शिकायत नही की। तू इक्ष्वाकु वश मे अन्याय करने जा रही है। सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या, गुरु-सेवा आदि सभी गुण राम के स्थायी स्वभाव हैं। ऐसे राम का त्याग करने वाली तू दुष्टा न बन।"

महाराज के बार-बार विनय-विलाप करने पर भी कैकेयी का हृदय न पिघला। रोष भरे शब्दो में उसने कहा, "दिये हुए वरो के लिए आप पश्चात्ताप करते हैं, फिर भी आप सूर्यवंशी कहलाते है? फिर ऋषि मुनियो को आप क्या उत्तर देंगे? जिसने आपकी रक्षा की, उसे दिये वर आप झुठला देना चाहते है? क्या यही आपकी सत्यप्रियता, धार्मिकता कही जायेगी?" कैकेयी ने प्रतिज्ञा पूर्ण करने वाले राजा शिवि आदि का उदाहरण देते हुए कहा, "आप धर्म को तिला-जलि देकर राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं तो अवश्य करें। परन्तु ऐसा हुआ तो मैं स्वयं विष पीकर मर जाऊगी।" भरत की शपथ खाकर कैकेयी ने राम

को देश निकाला मागा। कैकेयी को अनेक प्रकार के दूषण देते हुए राजा दशरथ बीच-बीच मे उसे समझा भी रहे थे। अत मे उन्होने अपनी भी कठिनाई उपस्थित की। दशरथ कहते है, "अनेक राजाओ के तथा ऋषियो के परामर्श से मैने भरी राजसभा मे राम का अभिषेक करने का निश्चय किया है। यदि वर पालन के लिए मैं राम को वनवास देता हू तो मेरा पूर्व निर्णय असत्य हो जाता है।" साथ ही राजा ने कैकेयी को फिरी हुई मति वाली बताते हुए कहा कि "स्त्रियो को धिक्कार है, क्योकि वे शठ और स्वार्थपरायण होती है।" फिर थोडा सभलते हुए उन्होने कहा, "यह बात सभी स्त्रियो पर लागू नही होती। केवल कैकयकुमारी तुम ही ऐसी हो।" इस प्रकार अनेक प्रकार से कैकेयी की निंदा करते-करते राजा बार-बार मूर्च्छित हो जाते थे।

कैकेयी अपनी बात पर दृढ थी। वह दशरथ की सत्यवादिता एव वर पूर्ति की प्रतिज्ञा का मजाक उडाने लगी। इससे राजा और भी अधिक व्याकुल हो गये। पर कैकेयी न पिघली। वह राजा को सत्य और धर्म का महत्त्व समझाने लगी। वह कहती है, "धर्मज्ञ को ही श्रेष्ठ समझते है। इसलिए मैं भी आपसे धर्मपालन का आग्रह कर रही हू।" दुष्ट आकाक्षा वाले सत्य और धर्म का कैसा दुरुपयोग कर सकते है, इसका यह उदाहरण है।

सत्यमेकपदब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठित ।
सत्यमेवाक्षया वेदा सत्येनावाप्यते परम् ॥ (२ १४ ६)

कैकेयी ने कहा, "सत्य प्रणवरूप परब्रह्म है। सत्य मे ही धर्म प्रतिष्ठित है। मेरा वर सफल होना ही चाहिये क्योकि आप स्वय उसके दाता है। धर्म के अभीष्ट फल की सिद्धि के लिए राम को राज्य से निकाल दें। मैं यह माग तीन बार दोहराती हू अन्यथा मै स्वय अभी प्राण दे दूगी।"

राजा दशरथ से न रहा गया। अग्नि की साक्षी मे जो विवाह के मत्र कहे थे और कैकेयी का हाथ पकडा था वह छोडने की बात कहते हुए दशरथ ने यहा तक कहा, "मेरी मृत्यु पर तू अपने पुत्र सहित मुझे तिलाजलि भी मत देना।" इस प्रकार बाते होते-होते रात बीत गई। प्रात होते-होते कैकेयी ने राजा को अन्तिम चेतावनी देकर राम को बुलवाने को कहा। इस पर दशरथ कहते है कि मैं धर्मवचन मे फसा हू। मेरी चेतना लुप्त हो रही है, अत मैं अपने धर्मपरायण पुत्र को देखना चाहता हू।"

उधर अभिषेक का समय होने से सभी लोग एकत्र हो गये थे। ऋषि वसिष्ठ भी मुनिगणो के साथ पधार चुके थे। वसिष्ठ ने महाराज के सचिव सुमत्र को राजा को सूचना देने को कहा। वसिष्ठ ने कहा कि राजा को बताओ कि गगाजल से एव समुद्र के जल से भरे कलश, भद्रपीठ आदि अभिषेक की सपूर्ण सामग्री एकत्र हो गई है, अत महाराज शीघ्र आवे। सुमत्र बिना रोक-टोक के राजा के (कैकेयी

के) महल मे गये। सदा की भाति राजा के पास खडे होकर वे उनकी स्तुति करने लगे। इससे राजा को कष्ट हुआ। राजा ने सुमंत्र को रोका तो वे आश्चर्य मे पड़ गये। तब कैकेयी ने कहा, "राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक के हर्ष मे रात भर जागते रहे, इसलिए अभी तक सो रहे है। तुम श्रीराम को शीघ्र बुला लाओ।" तब सुमन्त्र ने कहा, "मैं राजा की आज्ञा के बिना कैसे जा सकता हूं?" निःस्पृह सेवक का चरित्र स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहा था। तब राजा दशरथ ने स्वयं ही कहा, "मैं राम को देखना चाहता हू।" राजाज्ञा पाकर किसी गडबड़ की आशंका से शीघ्रगति से सुमंत्र श्रीराम को बुलाने चले गये।

मार्ग मे उन्हे अभिषेक के निमित्त पूर्ण तैयारी दिखाई दी तथा सडको पर अपार भीड भी हो गई थी। रामचन्द्र का महल भी भव्य था। सुमन्त्र रथ सहित ३-४ ड्योढियो को लाघकर अतःपुर के द्वार तक पहुचे। द्वार पर भी पुरवासी बहुत बड़ी सख्या मे उपस्थित थे। उन्हे पीछे छोडकर सुमंत्र सीधे एकात कक्ष की ओर गये। वहा एकाग्रचित्त और सावधान स्थिति मे राम के अंगरक्षक युवक उपस्थित थे। उसके अन्दर वाले द्वार पर बडी आयु वाले गैरिकवस्त्र धारी द्वारपाल थे। उनके द्वारा सुमन्त्र ने अपने आने की सूचना राम तक पहुचाई। राम ने उन्हे अन्दर बुला लिया। सुमन्त्र ने समयोचित विरुदावलि उच्चारण के बाद श्रीराम को सूचना दी कि कैकेयी के साथ बैठे हुए दशरथ उन्हे याद कर रहे हैं।

पिता द्वारा बुलाने का समाचार सुनते ही राम हर्षित हो गये। राम ने सीता से कहा, "मेरी अत्यन्त प्रिय माता कैकेयी अभिषेक के पूर्व मुझे कुछ सूचना देना चाहती हैं, ऐसा मुझे लगता है। अत मैं वहा जाकर शीघ्र लौटता हू, तुम भी तैयार रहो।" सीता की अनुमति लेकर उत्सवकालिक मगलकृत्य पूर्ण कर राम पिता से मिलने चल पडे। श्रीराम का रथ जनसमुद्र को पार करता जा रहा था, जो हर्ष से भरी लहरों के कारण बिखरा सा लग रहा था। कितने ही स्थानो पर राम के मित्रगण भी उन्हें शुभकामनाए भेंट कर रहे थे। वे आपस मे यही चर्चा कर रहे थे कि एक बार राम राज्यासीन हो तो फिर हमें परमार्थ स्वरूप मोक्ष से भी क्या लेना देना है। श्रीराम पर लोगो का इतना अधिक प्रेम उमड रहा था। ऐसी उल्लास भरी भीड मे से श्रीराम जैसे-तैसे कैकेयी के महल मे पहुचे।

अन्दर जाकर राम ने पिता के चरण छूकर माता कैकेयी के चरणो का स्पर्श किया। उस समय दशरथ के मुख से केवल 'राम' शब्द ही निकल सका। उनकी आखो से आसू निकल रहे थे, अतः न वे राम को देख सके न बात कर सके। राजा की यह भयकर स्थिति देखकर राम को मानो सर्प छू गया। राम सोचने लगे, 'आज पिताजी मुझसे प्रसन्न क्यों नही? मुझसे कोई अपराध तो नही हुआ? पिताजी को असन्तुष्ट कर या उनकी आज्ञा न मानकर मैं दो घडी भी जीवित नही रहना चाहता।" कैकेयी की ओर देखकर उन्होंने कहा, "माताजी, आपने राजा को कोई

तीखी बात तो नहीं कह दी ?"

कैकेयी ने कहा, "न राजा कुपित है, न ही किसी ने उन्हें कष्ट दिया है। वास्तव में तुमसे वे अप्रिय बात कहना नहीं चाहते। पूर्वकाल में राजा ने मुझे एक वचन दिया था। उस वचन का पालन कैसे करें, इस दुविधा में वे हैं। राम, सत्य ही धर्म की जड़ है। राजा जो बात कहना चाहते हैं वह शुभ हो या अशुभ, तुम उसे पालन करने को तैयार हो तो मैं कह सकती हूं।"

माता कैकेयी की बात सुनकर राम को बहुत व्यथा हुई। राम ने स्वयं को धिक्कारते हुए कहा, "देवी, मेरे प्रति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मैं महाराज के कहने से आग में कूद सकता हूं, विषपान कर सकता हूं, समुद्र में कूद सकता हूं। वे मेरे पिता, गुरु और हितैषी हैं। मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता ? जो राजा को अभीष्ट हो वह बताओ, मैं प्रतिज्ञापूर्वक उसे पूर्ण करूंगा। राम दो बार बात नहीं करता—करिष्ये प्रति जाने च रामो द्विर्नाभिभाषते। (२।१८।३०) राम के शब्दों से रामराज्य का मानो यह शिलान्यास ही हो रहा था।

कैकेयी ने कहना प्रारम्भ किया, "राम, पूर्वकाल में दिये हुए वर के अनुसार मैंने महाराज से दो वर मांगे हैं—एक से भरत को राज्य और दूसरे से तुम्हें चौदह वर्ष का वनवास। रत्नभरी वसुन्धरा पर भरत राज्य करेगा और तुम्हें दण्डकारण्य जाना होगा।" कैकेयी की बात से राम के चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं आया। इससे दशरथ और भी अधिक व्यथित हुए। परन्तु कैकेयी के द्वारा कहे गये अत्यन्त कष्ट तथा मृत्यु के समान भयंकर शब्दों से राम व्यथित नहीं हुए।

तदप्रियम मित्रघ्नो वचनं मरणोपमम्।

श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयीं चेदमब्रवीत। (२ १६.१)

सन्तुलन बनाये रखते हुए राम ने शान्त भाव से कैकेयी से कहा कि "मां, इतनी जरा सी बात के लिए तुमने राजा को क्यों कष्ट दिया ? मैं तो तुम्हारे कहने से ही भरत के लिए राज्य ही क्या, समूची संपत्ति, स्वयं के प्राण, यहां तक कि सीता को भी छोड़ने को तैयार हो जाता।"

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान धनानि च।

हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदित ॥ (२ १६ ७)

"तुम भी तो मेरी मां हो। फिर पिताजी आज्ञा दें और तुम उसमें प्रसन्न हो तो मैं फिर इन कामों को क्यों न करूंगा अब मेरी ओर से पूज्य पिताजी को तुम्हीं आश्वासन दो। उन्हें सकोच करने या सिर नीचा करने की कोई आवश्यकता नहीं। आज ही भरत को बुलाने के लिए दूत दौड़ाये जायें और मैं भी कुछ ही देर में वन के लिए प्रस्थान करूंगा। पिता की आज्ञा होने पर मुझे उस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता ही नहीं।" रामराज्य के भवन की नीव में यह पहली शिला रखी गई थी।

कैकेयी का प्रसन्न होना स्वाभाविक था। परन्तु अभी हृदय साफ नहीं हुआ था। उसने राम से कहा, "तुम्हे भरत की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। तुम्हे स्वय ही जल्दी है अतः शीघ्र ही वन को प्रस्थान करो। तुम जितना अधिक समय यहा रहोगे तुम्हारे पिता को उतना ही अधिक कष्ट होगा।" कैकेयी की बातें सुनकर राजा दशरथ ने आंखें खोली और केवल कैकेयी का धिक्कार किया। परन्तु कैकेयी की बात सुनकर राम अविचल रहे। उन्होंने कहा, "देवी, मैं धन का उपासक नही, धर्म का आश्रयी हू। पिताजी का प्रिय कार्य मेरे द्वारा हुआ ही समझो। यद्यपि पिताजी ने मुझे स्वय नही कहा है, तब भी मैं तुम्हारे कहने से ही निर्जन वन मे जा रहा हू। तुम निश्चिन्त रहो तथा भरत द्वारा यहां का राज्य, यहां की जनता तथा राजा की योग्य सेवा कराती रहो।" राम के वचन सुनकर दशरथ को बहुत कष्ट हुआ। वे फूट-फूटकर रोने लगे। अचेत पडे हुए पिता तथा कैकेयी के चरणो मे प्रणाम कर, राम कौशल्या के महल की ओर जाने के लिए निकल पडे।

किरण-४

कौशल्या के महल मे

कैकेयी के महल से निकलते समय, राम को वन को जाते देख रनिवास मे हाहाकार मचा। राम की लोकप्रियता कैकेयी की निन्दा मे परिवर्तित होने लगी। इसलिए राम शीघ्र ही प्रस्थान करना चाहते थे। पिछली किरण मे राम तथा दशरथ के कुछ शब्द सामान्यतः खटक सकते है। परन्तु लेखक या कवि, फिर यदि वह पुरानी शैली का हो तो एकाध बात पर बल देने के लिए वह सीमा तक उसे पहुंचाता है। किसी अवध्य का वध करने की बात दशरथ द्वारा कैकेयी को मनाने के लिए कही गई थी। भरत के लिए राम सीता तक छोडने के लिए तैयार थे। इस बात मे सीता को निर्जीव मानने की या निजी सम्पदा समझने की बात कल्पना मे भी नही आ सकती। यह तो कैकेयी के दुराग्रह की मनोवैज्ञानिक औषधिस्वरूप बातें थी, इतनी बात सब पाठक समझ सकते है।

राम के साथ लक्ष्मण भी कैकेयी के महल मे थे। लौटते समय वह साप के समान फुफकार रहे थे। कौशल्या के महल से पहले द्वार पर एक अति वृद्ध वन्दनीय पुरुष रक्षक था। दूसरे द्वार पर वेदज्ञ, सम्मानित, ब्रह्मवृन्द था। उन्हे प्रणाम कर राम तीसरे दरवाजे पर आये। यहां पर तरुण वीर-महिलाए रक्षक थी। अन्दर समाचार भेजकर पीछे-पीछे राम भी अन्दर गये। उस समय कौशल्या अग्नि में आहुति दे रही थी। राम ने मां के चरण छूकर प्रणाम किया। मा ने उन्हे आशीर्वाद देकर भोजन तैयार होने की सूचना दी। कौशल्या चाहती थी कि अभिषेक के पूर्व राम प्रसाद पा लें। राम ने विनय के साथ सिर नवाया और कौशल्या द्वारा

राम-कैकेयी सवाद 'अविचलित श्रीराम' (नीचे श्रीराम)—"मा ! तुम्हारे कहने से ही मैं वन को चला जाता। इतनी जरा-सी बात के लिए तुमने पिताजी को क्यों कष्ट दिया ?"

दिये हुए आसन को स्पर्शमात्र किया। वे इस उलझन में थे कि वनगमन का समाचार कौशल्या को कैसे दें?

गोस्वामीजी ने इस समय का बडा सरल सुन्दर वर्णन किया है। राम ने कौशल्या से कहा, "अवध का राज्य पिताजी ने भरत को देकर मुझे दण्डकारण्य का राज्य दिया है। फिर भी यह समाचार कौशल्या के लिए वज्र का आघात था। सबमे बडी रानी होने के बाद भी उसे कभी भी मान-सम्मान का सुख नही मिला था। वह राम के अभिषेक की प्रतीक्षा मे थी। नवीन समाचार के अनुसार अभिषेक तो दूर राम के साथ उसका रहना भी सभव नही हो रहा था। अतः वह मूर्च्छित हो गई। उसकी समूची बाते सौत द्वारा अपमानित होने से सबंधित थी। इसलिए वह घास खाकर भी राम के साथ जगल मे रहने को तैयार थी। त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम्॥ (२.२१.२६) दूसरी ओर उसने राम से यहा तक कहा, दशरथ पिता हैं, तो मैं तुम्हारी माता हू। मेरी अवज्ञा कर तुम जगल कदापि नही जा सकते।"

लक्ष्मण को यही चाहिये था। लक्ष्मण अपना रोष प्रकट करने लगा। पिता के लिए अपशब्द प्रयोग कर, वह उन्हे कैद करने या उनका वध करने के लिए भी तैयार था। न्याय के अनुसार राम को ही राज्य मिलना चाहिये यह उसका आग्रह था। उसके विचार से राजा की बुद्धि सठिया गई थी अत. वह नीति रहित हो गये थे। उसने श्रीराम से कहा, "वनगमन की बात फैलने से पहले आप राज्य पर अधिकार जमा लें। शेष सब लोगो मे मैं निपट लूगा।" इतना उसका आत्मविश्वास था। विशेषकर भरत के पक्ष के लोगो का वह सफाया करने पर उतारू था। उसने कहा, "कैकेयी के फन्दे मे पडकर पिताजी हमारे शत्रु बन रहे है, अत वह बन्दी बनने या वध के योग्य हैं।" उसने कौशल्या से कहा, "धनुष तथा यज्ञ की शपथ लेकर मैं कहता हूं कि यदि राम आग मे कूदेंगे तो मैं भी कूदूगा।"

लक्ष्मण की बातो से कौशल्या को साहस मिला। पुन. कौशल्या ने अपनी बाते दुहराई और अन्त मे कहा, "मुझे शोक मे छोडकर यदि तुम बन जाओगे तो मैं प्राण त्याग कर दूगी। इसमे तुम्हे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा।" तब राम ने पितृ आज्ञा पालन के लिए कई प्राचीन उदाहरण देकर मा को समझाया। राम ने कहा, "मैं पूर्व पुरुषो के मार्ग पर चल रहा हू। न करने योग्य ऐसा कोई काम मैं नही कर रहा हू। पिता की आज्ञा का पालन करने वाला कोई भी व्यक्ति धर्मभ्रष्ट नही होता।" उन्होंने लक्ष्मण को निमित्त बनाकर इस प्रकार से दोनो के हित की कुछ विचारणीय बातें कही।

श्रीराम ने कहा, "हे शुभलक्षण लक्ष्मण! मैं तुम्हारे प्रेम को जानता हू। इस समय जो मा को कष्ट हो रहा है, वह सत्य एव धर्म के मेरे अभिप्राय को न समझने के कारण हो रहा है। ससार मे धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है तथा धर्म मे ही सत्य की

प्रतिष्ठा है। पिताजी का वचन धर्म मे आश्रित होने से श्रेष्ठ है अत तुम केवल शास्त्र-धर्म का अवलम्बन करने वाली ओछी बुद्धि का त्याग करो तथा विवेक से काम लो। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति तथा तुम्हारे पराक्रम से मै परिचित हू। पर तुम भी मेरा अभिप्राय न समझकर मा के साथ होकर दोनो को पीडा पहुचा रहे हो, यह कहा तक ठीक है? धर्मपालन मे अर्थ और काम दोनो प्राप्त होते है। वैसे ही भार्या धर्म, अर्थ और काम तीनो को प्राप्त कराने वाली होती है। पति के अनुकूल अतिथि सत्कार आदि मे धर्मपालन, प्रेयसी के नाते काम साधन तथा पुत्र वती होकर उत्तम लोक की प्राप्तिरूप वह अर्थ की साधन होती है। धर्म का समावेश न हो वह काम कभी न करना चाहिये। केवल अर्थपरायण व्यक्ति संसार मे द्वेष का पात्र बनता है तथा धर्मविरुद्ध काम पूर्णत निन्दा की बात है।"

राम ने आगे कहा, "राजा दशरथ हमारे पिता, राजा और गुरु होने के साथ माननीय वृद्ध पुरुष हैं। मुझे, तुम्हे, मा को, सीता को, माता सुमित्रा को उनकी ही आज्ञा मे रहना चाहिये। वे हर्ष से, क्रोध से या काम से भी जो कुछ भी आज्ञा दे, उसे हम धर्म समझकर पालन करे। हम दोनो को आज्ञा देने मे वे गुरु हैं ही, परन्तु मा के तो वे पति, गति तथा धर्म हैं। अत मैं उनकी आज्ञा पालन से मुह नही मोड सकता। वे अभी जीवित हैं, उस स्थिति मे विधवा स्त्री के समान मा मेरे साथ वन मे कैसे जा सकती हैं?" इस प्रकार दोनो (माता और भाई) को करणीय धर्म समझाते हुए, राम ने अनुमति देने के लिए पुन मा से आग्रह किया। साथ ही आश्वासन दिया कि चौदह वर्ष बाद मैं वन से सकुशल लौट आऊगा। धर्महीन राज्य के लिए महान् फलदायक धर्मपालन स्वरूप सुयश को मैं पीछे नही ढकेल सकता। अधर्म से सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य भी मैं नही चाहता। इसलिए प्राणो की शपथ लेकर कहता हू कि मुझे जाने की अनुमति दो तथा स्वस्तिवाचन कराओ।"

फिर लक्ष्मण की ओर मुडकर राम ने कहा, "हे लक्ष्मण! तुम धैर्य धारण करो तथा मन से क्रोध को दूर करो। जिस उत्साह से अभिषेक की तैयारी की थी उसी उत्साह से वनगमन की तैयारी करो। मेरे अभिषेक के कारण मा कैकेयी को जो चिन्ता हो रही है, उसे कोई शका न रह जाये। उसके दुख को मैं दो घडी भी नही सहन कर सकता। अनजाने मे भी पिताजी या माताओ का मेरे हाथ से कोई अपराध हुआ हो तो वह मैं स्मरण नहीं कर पा रहा हू। पिताजी सत्यवादी रहे है। मुझे यह सब करना चाहिये जिससे उनका पारलौकिक कल्याण बना रहे। पिताजी का मनस्ताप मुझे सताप देता रहेगा। विधाता ने ही कैकेयी को ऐसी बुद्धि दी है। उसे विफलमनोरथ कर, कष्ट देना मेरे लिए उचित नही।"

काल की महिमा बताते हुए राम ने कहा, "कैकेयी की विपरीत मनोभावना के लिए दैव ही कारण है। अनेक गुणो से युक्त रानी कैकेयी ने राजा को प्रेरित करने के लिए जिन कटु एव भयकर वचनो का प्रयोग किया है, उस चेष्टा मे मैं दैव को

ही कारण मानता हूं। जिसके बारे मे कभी कुछ भी न सोचा गया हो, या सोचा न जा सकता हो, वह दैव का ही विधान होता है। "दैव के विधान को मिटाने का सामर्थ्य किसी मे नही है। बात बीत जाने पर, जिसका पता चले उससे कैसे युद्ध किया जाये? सुख, दु.ख, भय, क्रोध, लोभ, हानि, उत्पत्ति या विनाश इनमें से जिनका कोई कारण समझ मे न आवे वह सब दैव के ही कर्म हैं। दैव से प्रेरित हो उग्र तपस्वी नियम छोड बैठते है। चलता हुआ कार्य रोककर नया ही काण्ड उपस्थित करना दैव का ही विधान है। इस तात्त्विक बुद्धि से मैंने मन को स्थिर किया है। तुम भी मेरा अनुकरण करो।"

राम ने आगे कहा, "मेरे तापस व्रत के लिए कलशो का जल आवश्यक नही। स्वय हाथ से जल निकाल कर मैं संकल्प करूगा। तुम मेरी चिन्ता मत करो। मेरे लिए राज्य और वनवास समान ही है। पर विचार करने पर लगता है कि वनवास अधिक श्रेयस्कर है। राज्य वा वनवासो वा वनवासो महोदया। (२।२२।२६) अतः पिता या छोटी माता कैकेयी को दोष न दो।" इतनी बातो को सुनकर भी लक्ष्मण विचलित न हुए। उन्होने बहुत रोषभरे शब्दों मे दैववाद का खण्डन किया तथा राम की धर्मकल्पना को भ्रम-मूलक बताया। लक्ष्मण ने अपने पुरुषार्थ के आधार पर दैव को चुनौती देते हुए कहा कि "दशरथ या कैकेयी तो क्या अष्ट दिग्पाल भी आपके अभिषेक को नही रोक सकेंगे। मेरे बाहु शोभा के लिए नही हैं, न मेरा धनुष आभूषण मात्र है। न यह तलवार कमर मे बाधने के लिए है. न बाणों का प्रयोग खभे बनाने मे होने वाला है। मेरे रहते आपके अतिरिक्त अयोध्या मे और किसी का अभिषेक नही हो सकेगा।"

लक्ष्मण के तर्क सुनकर मृततुल्य व्यक्तियो मे भी पौरुष का सचार हो सकता था, पर धर्मस्वरूप दृढव्रती राम शात थे। श्रीराम ने लक्ष्मण के सताप के आसू पोछे और कहा कि "मैं आज्ञापालन मे दृढता से स्थित हूं। यह सत्पुरुषों का मार्ग है।" राम की दृढता देखकर कौशल्या ने कहा कि "राम! वास्तव मे दैव ही प्रबल है, इसीलिए तुम जैसा पुत्र वन मे जाने को उद्यत है। पर तुम्हारे जाते ही मैं शोक से जल जाऊगी। अत. मुझे साथ लेते चलो।" तब राम ने उन्हे समझाया कि "राजा के साथ धोखा हुआ है और तुम भी मेरे साथ जाओगी तो उस टूटे हुए हृदय वाले राजा को सहारा कौन देगा? पति का परित्याग नारी के लिए क्रूरतापूर्ण कर्म है। जब तक महाराज जीवित है तब तक तुम उनकी ही सेवा करो। पति की सेवा ही स्त्री का सनातन धर्म है। पिता की आज्ञापालन करना हम दोनों का कर्त्तव्य है। क्योंकि वे हम सबके स्वामी, श्रेष्ठ गुरु, ईश्वर एव प्रभु हैं। मा, स्त्री के जीते जी पति ही उसका देवता होता है। चौदह वर्ष बहुत अल्प अवधि है। तुम धैर्य धारण करो। मैं शीघ्र ही अवधि समाप्त कर तुम्हारे चरण स्पर्श करूगा।"

इस प्रकार वार्तालाप के उपरान्त कौशल्या प्रसन्न हुई एव उसने आनन्द के

साथ राम को अनुमति दी। साथ में यह भी कहा कि "वन से लौटकर अपनी मधुर एवं मनोहर वाणी से मुझे आनन्द देना।" मन में शोक निकालकर कौशल्या, यात्राकालिक मंगलकृत्यों का अनुष्ठान करने लगी। उसने कहा,"तुम अवश्य वन में जाओ और लौट आओ। सभी जलदेवता, वन देवता, पर्वतों के देवता तुम्हारा रक्षण करें। विश्वामित्र द्वारा प्राप्त अस्त्र-शस्त्र तुम्हारी रक्षा करें। तुम पिता की सेवा, माता की सेवा तथा सत्य से सुरक्षित हो। इन्द्र आदि सब लोकपाल, गर्भ, ऋतु, मास, नक्षत्र आदि तुम्हारी रक्षा करें।" इस प्रकार कौशल्या द्वारा स्वस्तिवाचन के पश्चात् राम ने उन्हें प्रणाम किया तथा सीता के भवन की ओर गये।

किरण-५

राम और सीता

कौशल्या के महल से निकलकर राम अपने महल की ओर आने लगे। तब तक उनके वनगमन की वार्ता जनता में आग के समान फैल गई थी। अतः जो लोग मार्ग में खड़े थे उनका दिल कचोटने लगा। फिर भी अभी तक सीता को कोई समाचार नहीं मिला था। वह देवताओं की पूजा समाप्त कर प्रसन्नचित्त से राम की प्रतीक्षा कर रही थी। संकोचवश कुछ मात्रा में सिर नीचा करके राम को अन्तःपुर में प्रवेश करते हुए सीता ने देखा। इससे वह स्वयं कांपने लगी। श्रीराम भी मानसिक शोक का आवेग रोक न सके। उनका मुख उदास हो गया। अंगों में पसीना आ गया।

उनकी यह अवस्था देखकर सीता ने कहा, "प्रभो, इस समय आपकी दशा ऐसी क्यों हो रही है? आपके मुख की प्रभा लुप्त हो गई है। न आपका सिर छत्र से आच्छादित है, न कोई चंवर डुला रहा है, न ही सूत तथा मागध मांगलिक स्तुति कर रहे हैं। वैदिकों द्वारा आपके मस्तक पर मधु दधि का अभिषेक भी नहीं हुआ है। आपके साथ मंत्री, सेनापति, नगर के मुख्य धनपति या जनपद के मुखिया भी नहीं दिखाई दे रहे हैं। आपके आगे-आगे चलने वाले दोनों गजराज भी नहीं दिखते। अभिषेक की पूर्ण तैयारी होने पर भी आपकी यह अवस्था क्यों?"

सीता के प्रश्न उनकी सरलहृदयता तथा अबोधता के ही परिचायक थे। राम ने एक वाक्य में बताया "पूज्य पिताजी मुझे वन में भेज रहे हैं।" इतना कहने के बाद उन्होंने थोड़े विस्तार से घटना बताई। वह बताते समय भी श्रीराम ने दशरथ या कैकेयी के लिए एक भी निन्दायुक्त शब्द का प्रयोग नहीं किया। इतना ही कहा कि माता कैकेयी ने महाराज को अपने वश में कर लिया। अतः पिताजी ने भरत को राज्य देकर मेरे लिए दण्डकारण्य में चौदह वर्ष वनवास की आज्ञा दी है।" राम ने आगे कहा, "इस समय मैं निर्जन वन में जाने को निकला हूं। जाने से

पूर्व तुमसे मिलने के लिए आया हू। तुम भरत के सामने कभी मेरी प्रशंसा न करना, क्योंकि समृद्धिशाली राजा कभी भी दूसरे की स्तुति सहन नही करते। तुम उसे सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करो। धैर्य से काम लो। प्रात. जल्दी उठकर देवताओं का पूजन कर महाराज दशरथ की चरणवन्दना करो। बाद मे कौशल्या की एव अन्य माताओ की भी चरणवन्दना करो। माता कौशल्या पर अधिक ध्यान दो। भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उन्हे पुत्ररूप मानो। भरत देश एव कुल के राजा है। उनकी इच्छा के अनुकूल चलो। अपने व्यवहार से किसी को कष्ट न हो, इसका ध्यान रखो।"

श्रीराम की बातें सुनकर सीता ने मुसकराते हुए कहा, "आप मुझे ओछी समझकर ऐसी बातें क्यों कर रहे है ? पिता, माता, भाई, पुत्र, पुत्रवधू, सास, ससुर यह सब नाते विवाह होने पर गौण अथवा पति पर अवलम्बित होते हैं। वे सभी अपने पुण्य आदि कर्मों के फल भोगते है। पत्नी ही केवल पति के भाग्य का अनुसरण करती है। अत. आपके साथ मुझे भी वन में रहने की आज्ञा मिल गयी है। नारी के लिए लोक-परलोक मे पति ही आश्रयदाता रहता है। मैं भी आपके साथ कुश एवं काटे रौदती हुई आपसे आगे चलूगी।"

सीता कहती है, "ऊचे महलो मे रहना, विमानो मे यात्रा करना या अन्य सिद्धियां (अणिमा, गरिमा आदि) प्राप्त करना, इनकी अपेक्षा पतिचरणो की छाया मे रहना ही स्त्री के लिए विशेष महत्त्व रखता है। मैं इस महल के समान ही वन मे भी आपके साथ सुख से रहूगी। तीनो लोको का ऐश्वर्य भी उसके सामने फीका है। जब आप औरो की रक्षा कर सकते हैं तो मेरी भी आप रक्षा कर सकेंगे। मैं अपने कारण आपको कोई कष्ट न दूगी। फलमूल सेवन करती रहूगी। आप इसमे कोई सशय न करें। आपका बचा हुआ भोजन खाकर सदा आपके आगे चलूगी। इस प्रकार सैकड़ो वर्ष भी आपके साथ रहने का सौभाग्य मिले तो मुझे कष्ट नही, अपितु आनन्द ही अनुभव होगा। मेरा सम्पूर्ण प्रेम एकमात्र आपको ही अर्पित है। आपके बिना मेरी मृत्यु हो जायेगी। मेरे साथ रहने का आप पर कोई भार नही होगा।"

वन जाने की इच्छा से परावृत्त करने के लिए राम ने अनेक प्रकार से वन के कष्टो का वर्णन किया। वाल्मीकि ने पूरे एक सर्ग मे इसका बहुत अच्छा वर्णन किया है। राम ने सीता को बताया कि "वह उसके हित मे ही सब बता रहे है। वन मे सदा दुःख मिलता है। वहा सिहों की दहाड से सदा कप पैदा होता है। स्वच्छन्द घूमने वाले हिसक पशु कही भी आक्रमण कर सकते है। नदियो मे ग्राह (मगरमच्छ), जंगलो मे मनचले हाथी, सोने के लिए पेड के सूखे पत्ते, ऐसे अनेक कष्ट है। दिन मे आधी और रात्रि मे घोर अंधकार, प्रतिदिन भूख का कष्ट इन सब कारणो से वन दु.खमय है। विषैले सर्पो की बहुतायत, कीडे, बिच्छू, मच्छर आदि

जहां सदा कष्ट पहुंचाने को तैयार रहते हैं ऐसा वन कष्टदायक है। वन में सदा शारीरिक कष्ट तथा मानसिक भय का सामना करना पड़ता है, अतः तुम्हारा वन में जाना ठीक नहीं।"

इस पर सीता ने पुनः सहगमन का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया। इस बार सीता ने स्वयं को जनकपुर में एक ज्योतिषी ने जो भविष्य बताया था उसका आधार लेकर, उसका वन जाना अवश्यभावी है, यह तक दिया। वैसे राम ने जितने दोष बताये, वे राम के साथ होने पर गुण हो जायेंगे यह भी उसने कहा। साथ ही पातिव्रत्य धर्म की दुहाई देते हुए सीता ने कहा, "आप मेरे स्वामी हैं। आपके अनुगमन से परलोक में भी मेरा कल्याण होगा। ब्राह्मणों के मुख से पवित्र श्रुति ऐसी ही सुनी जाती है। मैं आपकी धर्मपत्नी और भक्त हूं, पतिव्रता हूं। फिर आप मेरा त्याग क्या करते हैं? मुझे सुख मिले चाहे दुःख, मैं दोनों अवस्थाओं में सम रहूंगी। यदि आप मुझे अस्वीकार करेंगे तो मैं विषपान करूंगी।" इतना कहने पर भी श्रीराम ने उन्हें अनुमति नहीं दी।

सीता ने आखिरी अस्त्र निकाला। प्रेम एवं स्वाभिमान के कारण राम पर आक्षेप करती हुई सीता बोली, "मेरे पिता जनक को सन्देह हो जायेगा कि मुझे जो दामाद मिले हैं, वह कहीं काया से पुरुष और क्रियाकलाप में स्त्री तो नहीं है? मुझे छोड़ने पर समाज में भी भ्रम बढ़ेगा कि क्या राम में पराक्रम का अभाव है? आप सोच-विचार में क्या पड़े हैं? आपको किससे भय है जो आप पतिव्रता पत्नी को त्याग रहे हैं? आपके सिवा किसी परपुरुष को मैं मन से भी नहीं देख सकती। कुमारी अवस्था में साथ रही मुझे आप नट की भांति दूसरों के हाथ में क्यों छोड़ रहे हैं? निष्पाप रघुनन्दन! मुझे साथ लिये बिना आपका वनगमन उचित नहीं। तपस्या करनी हो, वन में जाना हो या स्वर्ग में जाना हो तो सभी जगह मैं आपके साथ रहना चाहती हूं। आप मेरा कोई भी व्यवहार प्रतिकूल नहीं पायेंगे। आपके साथ हर स्थान स्वर्ग है तथा आपके बिना नरक है। मुझे वन के कष्टों में कोई भय नहीं। परन्तु आप के विरह में दो घड़ी भी नहीं रह सकती। अतः आपके पीछे मेरा जीवित रहना असम्भव है।"

अति भावावेश में परन्तु मर्यादा रखकर बात करने वाली सीता की दृढ़ता, पतिभक्ति, प्रतिभा एवं सहगमन की इच्छा देखकर राम को सन्तोष हुआ। राम ने व्यथित सीता को हृदय से लगा लिया और कहा, "देवी! मैं तुम्हें दुःख देकर स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता। मुझे किसी से भय भी नहीं है। वन में तुम्हारी रक्षा करने के लिए मैं सर्वथा समर्थ हूं। तुम्हारे हृदय के भाव पूर्ण रूप से जाने बिना तुम्हें वनगामिनी बनाना मैं उचित नहीं समझता था। अब तुम्हारी तीव्र इच्छा ही है तो मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। पूर्वकाल के पुरुषों के समान हम दोनों वन में रहकर साथ साथ धर्म का पालन करेंगे।"

राम आगे कहते गये, "यह तो संभव नहीं कि मैं वन को न जाऊं। माता, पिता और गुरु की सेवा अपने अधीन है। देवता अदृश्य होते हैं। अतः अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष की आराधना श्रेष्ठ है। इसी से धर्म, अर्थ और काम प्राप्त होते है। माता-पिता की सेवा कल्याणप्राप्ति का प्रबल साधन है। इसके समान न सत्य है, न दान है, न यश है। अतः सत्य और धर्ममार्ग पर आरूढ पूज्य पिताजी जो आज्ञा दे रहे हैं, मैं वैसा ही करूंगा। तुम्हारी साथ चलने की बलवती इच्छा देखकर तुम्हें भी अनुमति दे रहा हूं, अतः तुम चलने की तैयारी करो। अपने पास जितने बहुमूल्य आभूषण, उत्तम वस्त्र, रमणीय पदार्थ, मनोरंजन की सामग्री, उत्तम से उत्तम शैयाएं, सवारियां आदि हो वह सब ब्राह्मणो व अपने सेवकों मे वितरित कर दो।"

राम की अनुकूल प्रतिक्रिया जानकर सीता बहुत प्रसन्न हुई और राम द्वारा बताई गई व्यवस्था मे लग गई। जब राम और सीता बात कर रहे थे, तब लक्ष्मण भी वहां पहुंच गये। दोनों का सवाद सुनकर उनकी आखो से आंसू निकल आये। भाई के विरह का शोक अब लक्ष्मण को असह्य हो रहा था। उसने राम के दोनो पैर कसकर पकड लिये और कहा, "जब आप दोनो भीषण वन मे जा रहे हैं तो मैं भी साथ चलूंगा। मैं आपके बिना स्वर्गलोक, अमरता या त्रिलोकी का राज्य भी नहीं चाहता।" लक्ष्मण का इतना आग्रह देखकर भी राम ने उसे समझाने का प्रयास करते हुए कहा, "मेरे पीछे पिताजी तथा कम-से-कम दोनो माताओ की देखभाल अति आवश्यक है। हम दोनो जायेंगे तो यह कौन करेगा? आज की मानसिक स्थिति मे कैकेयी से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती। भरत को भी उन्हीं के आदेश में रहना पडेगा, अतः तुम यही रहो।"

राम के समझाने का लक्ष्मण पर कोई प्रभाव नहीं पडा। उसे सन्देह होने लगा। उसने कहा, "मैं तो आपसे आगे जाने को तैयार खडा हूं। आप मुझे अनुमति दें।" राम ने उसे वीर, धर्मपरायण, स्नेही तथा सन्मार्ग मे रहने वाला कहकर बताया, "तुम मुझे प्राणो के समान प्रिय हो तथा मेरे सखा हो। पर यहां रहकर मेरी बताई बात करने में तुम्हारी भक्ति प्रकट होगी तथा तुम्हें धर्मपालन का पुण्य भी मिलेगा।" इस पर लक्ष्मण ने कहा कि "राम! आपके प्रभाव से ही भरत सभी माताओ की योग्य सेवा करेगा तथा पिताजी को भी प्रसन्न रखेगा, इसमे मुझे संशय नहीं है। पर यदा-कदा इसके विपरीत बात सुनाई दी तो मैं भरत समेत उसके सभी समर्थकों का नाश कर दूंगा। मनस्विनी कौशल्या भी, मेरी मां तथा मेरे जैसे अनेक का भरण-पोषण करने में समर्थ हैं, अतः आप मुझे साथ चलने की अनुमति दें। धनुष के अतिरिक्त खनती तथा पिटारी लेकर मैं आपका मार्ग आगे-आगे साफ करता चलूंगा। साथ ही भयकर वन मे आप दोनो की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता रहूंगा।"

राम के ऐसा कहने पर दशरथ ने उन्हें हृदय से लगा लिया और अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सुमन्त्र भी राम की इस दृढ़ता से असन्तुलित हो गया। सन्तुलन प्राप्त कर सुमन्त्र ने कैकेयी को फटकारा। सुमन्त्र ने कहा, "कैकेयि, तुमने स्वयं अपने पति का, महाराज दशरथ का त्याग किया। अब तुम कुछ भी कुकर्म कर सकती हो। इन्द्र के समान अजेय, पर्वत के समान अकम्पित, महासागर के समान क्षोभरहित महाराज दशरथ को तुमने संतप्त किया है। राजा दशरथ तुम्हारे पति, पालक तथा वरदाता हैं। नारियों के लिए करोड़ पुत्रों से अधिक महत्त्व पति का होता है। अब सम्पूर्ण बन्धु-बान्धव, सदाचारी ब्राह्मण, अयोध्या की प्रजा एवं राज्य के कर्मठ कर्मचारी भी तुम्हारा त्याग कर देंगे।"

सुमन्त्र ने कहा, "लगता है तुम अपनी मां के गुणों पर जा रही हो। तुम्हारी मां भी अपने पति को मरवाने पर तुली थी। तुम्हारे पिता को किसी साधु ने पक्षियों की बोली पहचानने का वरदान दिया था। एक बार तुम्हारे माता-पिता शय्या पर लेटे-लेटे उपवन की ओर निहार रहे थे। उस समय तुम्हारे पिताजी को किसी पक्षी की बात सुनकर हंसी आ गई। तुम्हारी मां को लगा कि तुम्हारे पिता उसी की हंसी उड़ा रहे हैं, अतः वह हंसी का कारण पूछने लगीं। वरदान देने वाले साधु ने कहा था कि यदि राजा यह रहस्य किसी को बतलायेगा तो उसकी मृत्यु हो जायेगी। राजा ने तुम्हारी मां से यह बात कही। फिर भी तुम्हारी मां ने आग्रह किया कि आप भले ही मरो, चाहे जियो, परन्तु आपको हंसी का कारण बताना ही पड़ेगा। तुम्हारे पिता पुनः उस साधु के पास गये। साधु के परामर्श से केकय-नरेश ने तुम्हारी मां को देश निकाला दे दिया।"

निष्कर्ष निकालते हुए सुमन्त्र ने कहा, "समाजशास्त्र के नियम के अनुसार पिता के अनुसार पुत्र तथा मां के अनुसार कन्या गुण धारण करती है। लगता है, तुम में पतिहन्ता के गुण मां से ही आये हैं। मेरी विनती है कि तुम इस लोकोक्ति को चरितार्थ न करो। राजा की बात स्वीकार करो तथा पति का अनुकरण कर जनसमुदाय को शरण देने वाली बनो।" सुमन्त्र की विनयपूर्ण परन्तु तीखी बातों का भी कैकेयी पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

अब तक दशरथ पुनः सचेत हो चुके थे। अश्रुपूर्ण नेत्रों से दशरथ सुमन्त्र से बोले कि तुम कैकेयी के फेर में न पड़ो। राम के वनगमन की तैयारी करो। चतुरंग सेना तथा सभी लोग राम के साथ जायें। जिससे उनकी वन की यात्रा सुखद हो। वे वन में यज्ञ अनुष्ठान आदि करेंगे। अतः आचार्यों को पर्याप्त दक्षिणा भी देनी होगी, इसलिए मेरा खजाना तथा भण्डार भी साथ जाये। दशरथ की बात सुनकर कैकेयी ने आपत्ति की। इस पर दशरथ ने कैकेयी से कहा, "तुम्हारी शर्त में राम अकेले वन में जायें ऐसी बात नहीं थी।" तब राम ने ही बीच बचाव करते हुए कहा, 'पिताजी हाथी देने के बाद उसकी झूल रखने से क्या लाभ है? मैं सब कुछ त्याग चुका हूं।

हाथी का त्याग करने वाले को उसकी रस्सी से आसक्ति नही होनी चाहिये। मेरी ओर से यह सब वस्तुएं भरत को अर्पित की जायें। मेरे लिए मां कैकेयी के चीर या वल्कल ही श्रेष्ठ रहेंगे।" ऐसा कहते हुए श्रीराम ने कैकेयी की दासियों से चीर, खनती, पिटारी तथा कुदाल लाने को कहा।

कैकेयी स्वय जाकर चीर ले आई। वह सम्पूर्ण लज्जा छोड चुकी थी। प्रथम श्रीराम ने तथा बाद मे लक्ष्मण ने अपने वस्त्र उतारकर चीर पहन लिये। परन्तु सीता परेशान खडी रही। सीता को हाथ मे वल्कल लिये देखकर, कैकेयी को छोड़कर सभी रानिया विलाप करने लगी। तब गुरु वसिष्ठ ने रोष में आकर कहा, "यदि सीता वन मे जाने वाली है तो हम सभी तथा सब नगरवासी भी वन में जायेंगे। अन्त.पुर के रक्षक भी जायेंगे। इतना ही नही भरत, शत्रुघ्न भी चीर पहन कर वन को जायेंगे। फिर हे कैकेयी, तू अयोध्या के पेडो पर तथा यहा की सूनी भूमि पर राज्य कर। यदि भरत को पता चला तो वह भी राज्य नही लेगा। जहा से राम चले जायेंगे वह राज्य राज्य नहीं रहेगा श्मशान हो जायेगा। जहा राम रहेंगे वहा नया राष्ट्र खडा होगा। तू चाहे जितनी छलागें लगा ले, भरत पितृकुल के आचार के विरुद्ध कुछ नही करेंगे। तूने पुत्र का हित नही अहित किया है। तू देखेगी कि राम के साथ पशु, पक्षी, मृग भी वन को जा रहे है। अटल वृक्ष भी उनके साथ जाने के इच्छुक हैं।"

द्रक्ष्यस्यद्यैव कैकेयि पशु व्याल मृग द्विजाम्।
गच्छत सह रामेण पादपाश्चतदुन्मुखान् ॥(२।३७।३३)

अन्त मे वसिष्ठ ने कहा, "देवी सीता तेरी पुत्रवधू है। अत. उसे वल्कल न दे।" राजकन्या तथा राजवधू के रूप मे सीता का जीवन बीता था। अत: स्वयं राम उसे वल्कल पहनाने लगे। इस पर दशरथ ने कैकेयी को टोकते हुए कहा, "वरदान के अनुसार केवल राम वनवासी होने वाले हैं अत. तुम सीता को वल्कल न पहनाओ।" दशरथ का कैकेयी पर क्रोध बढ रहा था, क्योंकि किसी मात्रा मे अब दाव उलट चुका था। कैकेयी वर की सीमा से बाहर सीता को वल्कल दे रही थी। इसलिए राजा ने उसे बहुत कडी बातें सुनाई। विषय बदलते हुए राम ने अपने दु:खी वृद्ध पिताजी को माता कौशल्या का स्मरण दिलाते हुए कहा कि "इस साध्वी को सान्त्वना देने का काम आपको ही करना होगा। वह आप जैसे पूज्यतम पति से सम्मानित हो तथा मेरे वनगमन से पुत्रशोक का अनुभव न करे। मेरे वन मे रहते हुए कही मेरी मा शोकवश प्राणत्याग न कर दे। अत- आपको ही उसकी ओर विशेष ध्यान देना होगा।" राम की बात सुनते-सुनते राजा दशरथ स्वय ही अचेत हो गये।

चेतना आने पर दशरथ स्वय पूर्वजन्म के कर्मो को कोसने लगे। थोडी देर बाद उन्होंने सुमत्र को राम के लिए रथ जोडकर लाने की आज्ञा दी। साथ ही

कोषाध्यक्ष से सीता के लिए चौदह वर्ष के लिए पर्याप्त वस्त्र तथा आभूषण भी मंगवाये सुमन्त्र ने दशरथ की आज्ञा का शीघ्रता से पालन कर सामान समेत रथ लाकर कैकेयी के महल के सामने खड़ा किया। उधर कौशल्या ने सीता को पातिव्रत्य का उपदेश किया। उसने कहा, "पति निर्धन हो या धनी, सुखी हो या विपदा में हो, उसका त्याग न कर सदा उसकी सेवा में रहना यही पत्नीधर्म है अतः तुम राम का कभी अनादर न करना।" इन बातों से पूर्वपरिचित होने से सीता ने अपनी सास को आश्वासन दिया और कहा, "जैसे तार के बिना वीणा स्वर नहीं देती वैसे सौ पुत्र होने पर भी पति बिना स्त्री को सुख नहीं मिलता। पिता, माता पुत्र यह परिमित सुख देने वाले हैं परन्तु पति से स्त्री को अपरिमित सुख मिलता है। पति सेवा में ही स्त्री का यह लोक तथा परलोक भी साध्य होता है, अतः आप निश्चित रहें।"

जाते समय राम ने मां कौशल्या से नम्रतापूर्वक कहा, 'मां मेरे वनवास के लिए तुम महाराज को दोष न देना। वनवास के चौदह वर्ष यों ही निकल जायेंगे। तुम लक्ष्मण और सीता के साथ मुझे शीघ्र ही लौटता हुआ देखोगी।" फिर उन्होंने अन्य माताओं से स्वयं के द्वारा जाने अनजाने निकले हुए कठोर वचन या व्यवहार के लिए क्षमा मांगी। राम के इन वचनों से सभी का शोक और बढ़ा। श्रीराम लक्ष्मण तथा सीता ने राजा दशरथ की चरण वंदना कर प्रदक्षिणा की तथा मां के चरण-स्पर्श किये। फिर लक्ष्मण ने मां सुमित्रा के भी चरण पकड़े। अति संयमी तथा मूक सेवन माता सुमित्रा ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, तुम राम की सेवा के लिए ही पैदा हुए हो। वे संकट में हों या समृद्धि में, वही तुम्हारी परम गति है।" अन्त में सुमित्रा ने राम और लक्ष्मण दोनों को आशीर्वाद देते हुए कहा, "पुत्रो, जाओ, तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो!"

सुमन्त्र ने विनय के साथ श्रीराम से रथ पर बैठने की विनती करते हुए कहा, "आपके चौदह वर्ष आज से प्रारम्भ हो रहे हैं।"

प्रथम सीता रथ पर आरूढ़ हुई और फिर दोनों भाई चढ़े। तीनों के चढ़ते ही सुमन्त्र ने रथ बढ़ाया। रथ के चलते ही सैनिकों समेत पुरवासियों को मूर्च्छा आने लगी। सम्पूर्ण अयोध्या में कोलाहल मच गया। सभी आबालवृद्ध रथ के पीछे-पीछे दौड़े। सभी लोग सुमन्त्र से रथ धीरे-धीरे हांकने को कह रहे थे। जिससे वह श्रीराम का मुख देख सकें। मार्ग में प्रजा कैकेयी की निन्दा तथा सीता और लक्ष्मण के भाग्य की प्रशंसा कर रहे थे। पीछे पीछे दशरथ भी स्त्रियों से घिरे हुए राम का दर्शन करने दीन हीन स्थिति में महल से बाहर निकले। राजा दशरथ सुमन्त्र को रथ रोकने के लिए कह रहे थे। श्रीराम की रानियों का आर्तनाद भी सुनाई दिया परन्तु उन्होंने कठोर हृदय से सुमन्त्र को रथ तेजी से चलाने की आज्ञा दी। सुमन्त्र दुविधा में था। वह रथ को न तेजी से चला रहा था, न रोक रहा था।

नगरवासियों में शोक बढ़ रहा था। अत्यधिक आंसुओं के कारण मानो धरती

की धूल भी गीली होकर बैठ गई थी। सारा नगर पीडित था। सब ओर रोने-धोने की आवाज सुनाई पड रही थी। दशरथ भी कुछ कदम चलकर अचेत हो जाते थे। सब ओर हाहाकार मचा था। श्रीराम ने पीछे मुडकर देखा तो विषादग्रस्त भ्रान्त-चित्त पिता तथा शोकग्रस्त माता पीछे आती हुई दिखाई पड़ी। हा राम, हा सीते, यही उनकी रट थी। राजा की बात सुनने के बाद भी श्रीराम ने सुमंत्र से कहा, "रथ का यहा रोकना मेरे तथा पिताजी दोनो के लिए महान् दु ख का कारण होगा, अत· रथ रोको मत, आगे बढ़ाओ।

नाश्रौषमिति राजानमुपालब्धोऽपि वक्ष्यसि।
चिर दु खस्य पापिष्ठं इति रामस्तमब्रवीत ॥ (२।४०।४७)

लौटने पर महाराज यदि उलाहना दें तो बताना कि रोने की तथा पहियों की आवाज में आपकी आवाज सुनाई नही दी।

राम की बात सुनकर सुमंत्र ने रथ तेजी से बढाया। जो लोग शरीर से समर्थ थे, वे रथ के साथ तेजी से दौडने लगे। असमर्थ लोगो ने मन-ही-मन राम की परिक्रमा की तथा घरो की ओर लौट गये। मन्त्रियो ने दशरथ से शास्त्र-वचन के अनुसार कहा कि जिसके शीघ्र लौट कर आने की अपेक्षा हो, उसे दूर तक विदा करने नही जाना चाहिये। दशरथ शरीर से वैसे ही थक गये थे, अत. मन्त्रियो की बात सुनकर वे वही रुक गये और व्याकुलता भरी दृष्टि से राम के रथ की ओर देखते रहे।

किरण-७

तमसा के किनारे

धीरे-धीरे राम का रथ दूर जा रहा था। वह जितना-जितना दूर जाता गया, पृथ्वी से ऊपर उठ-उठकर दशरथ, राम को देखने का प्रयत्न करते रहे। वाल्मीकि ने लिखा है मानो वे राम के स्मरणमात्र से ऊचे उठ रहे हो। दूसरी ओर जब तक माता-पिता दिखाई दे रहे थे तब तक श्रीराम ने दूर से ही उनकी ओर हाथ जोडे। जब रथ नगर-द्वार से बाहर चला गया तो रनवास की स्त्रियां राम के गुणो का स्मरण कर जोर-जोर से विलाप करने लगी। पति के जीवित होने के बाद भी वे राम के जाने से स्वय को अनाथ समझने लगी। उनमे से कुछ ने दशरथ की ही निन्दा प्रारंभ की। अन्त पुर का आर्तनाद सुनकर राजा दशरथ का शोक और भी बढ गया।

वाल्मीकि लिखते हैं, उस दिन घर-घर मे अग्निहोत्र बन्द हो गया। गृहस्थो के घरो मे भोजन नही बना। प्रजा ने कोई कार्य नही किया। हाथियो ने भी मुह का चारा छोड दिया। गौओ ने बछड़ो को दूध नही पिलाया। इतना ही नही उस

दिन तो मा को प्रथम सतान पुत्र प्राप्त होने पर भी प्रसन्नता नही हुई। नक्षत्रो की कान्ति फीकी पड गई। ग्रह निस्तेज हो गये। सारे नगर मे भूकम्प होने का आभास हुआ। सहसा सारे नागरिक दीन-दशा को प्राप्त हुए। सडको पर दिखाई देने वाले मनुष्य शोक से सन्तप्त थे। बालक मा-बाप को भूल गये। पतियो को स्त्रिया याद नही आती थी। भाई, भाई को स्मरण नही करते थे। श्रीराम के मित्रगण सुध-बुध खो बैठे।"

इस वातावरण मे दशरथ की दुर्दशा शब्दो मे नही कही जा सकती। वे विषाद ग्रस्त हो भूमि पर गिर पडे थे। दाहिनी ओर कौशल्या सहारा दे रही थी। दूसरी ओर कैकेयी सहारा देने के लिए आई। उसे देखते हुए नीति, मार्दव तथा धर्म से सपन्न दशरथ की समस्त इन्द्रिया व्यथित हो उठी। क्रोध मे भरकर उन्होने कहा, "दुष्टे तू मेरे शरीर का स्पर्श न कर। मैं तुझे देखना भी नही चाहता। न तो तू मेरी भार्या है, न तुझमे मेरा कोई नाता है। तेरे आश्रयी लोगो का भी मैं स्वामी नही हू। तूने धन तथा राज्य के लोभ मे धर्म छोडा है, इसलिए मैं तेरा परित्याग करता हू। अग्नि की साक्षी मे तेरे साथ किया गया पाणिग्रहण मैं इसलोक और परलोक के लिए त्यागता हू। ऐसा राज्य पाकर यदि भरत भी प्रसन्न हो तो वह भी मेरा श्राद्ध न करे। उसका दिया हुआ पिण्डदान भी मुझे प्राप्त न हो।" ऐसी स्थिति मे कौशल्या, सुमित्रा का सहारा लेकर दशरथ को राजभवन की ओर ले गई।

राजभवन लौटते समय राजा दशरथ ने देखा कि घरो के द्वार तथा चौपाल सूने पडे हैं। अधिकाश लोग राम के साथ गये है। सारे बाजार बन्द हैं। जो बचे हुए लोग हैं, वे अत्यन्त दुर्बल और दु ख से व्याकुल है। अयोध्या की बडी-बडी सडकें खाली पडी हैं। राजभवन पहुचने पर राम व सीता से रहित भवन मानो उन्हे खाने को दौड रहा हो, अत. उन्होंने कौशल्या के भवन मे जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा—शायद मुझे वही शाति मिलेगी। रात के समय दशरथ ने कौशल्या से कहा, "मेरी दृष्टि भी राम के साथ चली गई। मैं तुम्हे भी देख नही पा रहा हू। एक बार मेरे शरीर का स्पर्श तो करो। चौदह वर्ष बाद जो लोग राम को वापस आया हुआ देखेंगे, तो वे ही सुखी नरश्रेष्ठ होंगे।"

कैकेयी के भावी व्यवहार की सभावना से कौशल्या को अधिक शोक एव अप-मान का भय लग रहा था। उसने यहा तक कहा था कि यदि राम भीख मागते हुए भी अयोध्या रहते अथवा उसे कैकेयी का दास भी बना लिया होता तो भी उसे वह वरदान पसन्द था। कौशल्या की इस मानसिक स्थिति मे सुमित्रा ही उसे ढाढस बधा रही थी। उसने कौशल्या से कहा कि शरीरबल, पराक्रम, मनोधैर्य, कल्याण-कारिणी शक्ति आदि के कारण श्रीराम निश्चित ही वनवास से शीघ्र ही लौटेंगे। रघुकुलदीपक श्रीराम, सूर्य के सूर्य, अग्नि के अग्नि, देवताओ के देवता, प्रभु के प्रभु तथा भूतो के उत्तम भूत है। नगर या वन मे उन्हें कही भी धोखा या कष्ट नही

होगा। वे सफलकाम हैं। पुरुषशिरोमणि श्रीराम शीघ्र ही पृथ्वी, सीता तथा लक्ष्मी तीनों के साथ राज्य पर अभिषिक्त होंगे।

बातचीत करने में कुशल दोष रहित रूपवती सुमित्रा की बातों से कौशल्या का शोक कम हुआ। उधर अयोध्यावासी बहुत बड़ी सख्या मे राम के पीछे-पीछे जा रहे थे। शीघ्र लौटने की कामना से बहुत दूर तक पहुचाने नही जाना चाहिये इस तर्क से दशरथ भले ही लौटे हो पर जनसमाज तो वनवास में रहने को ही उद्यत था। राम ने उन्हे रोककर उनके प्रेम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए नागरिकों से विनती की कि "वे ऐसा ही प्यार तथा आदर भरत को दें।" राम ने कहा, "भरत छोटे होने पर भी ज्ञान मे बड़े हैं। पराक्रमी होने पर भी स्वभाव के कोमल है। वे प्रजा का भय निवारण करने वाले उत्तम राजा सिद्ध होंगे। राजोचित गुणो मे वे मुझसे श्रेष्ठ हैं। इसलिए महाराज ने उन्हे ही राज्य देने का पुन. निर्णय किया हैं। मेरे वनवास का महाराज को अधिक दु ख न हो, इसका आप लोग प्रयत्न करें। इसलिए आपका अयोध्या लौटना जरूरी है।"

राम की ओर से लौटने के आग्रह के साथ-ही-साथ प्रजा का साथ चलने का आग्रह बढता गया। उनमे जो वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध तपोवृद्ध ब्राह्मण थे, उनके कष्ट को देखकर, राम ने भी रथ को त्याग दिया और वे स्वय पैदल चलने लगे। उन्हें कष्ट कम हो इसलिए वे डग भी छोटे-छोटे भरते थे। राम मे विद्यमान लोकप्रेम की अधिकता का ही यह परिचय था। धीमी गति से क्यो न हो पर राम वन की ओर ही बढ रहे हैं, यह देखकर प्रजा ने उनसे अनुरोध किया कि "आप अयोध्या लौट चलें अन्यथा अग्निहोत्र, वेदज्ञ लोग, तुम्हरे पीछे-पीछे अग्नि सिर पर ढोते-ढोते चलते रहेंगे। स्थावर-जंगम सभी तुमसे प्रेम करते हैं। वृक्ष अपनी जडो के कारण गतिहीन हैं पर उनके पत्तो मे वायु के कारण जो सनसनाहट होती है वह भी तुम्हे लौटाने का आग्रह कर रही है।" इस प्रकार ब्रह्मज्ञ लोग विविध प्रकार की भावुकतापूर्ण विनती राम से करते रहे, तब तक सभी तमसा के किनारे पहुच गये, अतः वहीं डेरा डालने का निर्णय किया गया।

राम ने लक्ष्मण से कहा, "सुमित्रानन्दन, वनवास की यह प्रथम रात्रि है। अत. अब तुम्हे नगर की ओर उत्कण्ठित नही होना चाहिए। वन की शोभा का आनन्द लेना चाहिये। यह बात अवश्य है कि अयोध्या नगरी और खास कर महाराज तथा माता कौशल्या शोक से व्याकुल हो गये होंगे। मुझे भय है कि कहीं वे दोनो रोते-रोते अंधे न हो जायें। परन्तु भरत धर्मात्मा है। वे धर्म, अर्थ और काम तीनों के अनुकूल वचनो द्वारा वे उन्हे सान्त्वना अवश्य देंगे। यहा पर जगली फल-फूल मिल सकते हैं। परन्तु मैं आज की रात जल पीकर ही सो जाऊंगा।" राम की बात सुन कर लक्ष्मण ने सुमत को घोडो की व्यवस्था तथा रक्षा के लिए आवश्यक सूचनाए दी। तब तक सूर्य अस्त हो चुका था। सध्या आदि से निवृत्त हो लक्ष्मण ने सुमंत्र

को साथ लेकर सोने योग्य स्थान ठीक किया। वहां पर सूखे पत्तों से दो शय्या बनाई गईं जिन पर राम तथा सीता ने विश्राम किया। लक्ष्मण और सुमन्त्र आपस में राम की गुण संबंधी चर्चा करते रहे। बातों ही बातों में उषाकाल हो गया।

किरण-८

शृङ्गवेरपुर

महातेजस्वी राम अति प्रातः ही उठे। अत्यधिक थके प्रजाजनों को वनभूमि पर कुछ भी बिना बिछाये गहरी नींद में सोते देखकर राम को दया आ गई। वे लक्ष्मण से कहने लगे "इन्हें केवल मेरी ही चाह है अतः ये घर-बार, ओढ़ने-बिछाने से निरपेक्ष हो गये हैं। हमें लौटाने के लिए इनका उद्योग देखकर लगता है कि यह लोग भले ही प्राण दे देंगे पर हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगे अतः चतुराई से काम लेना होगा। जब तक ये लोग सो रहे हैं तभी तक हम लोग यहां से चल दें। हमारे चले जाने पर इन प्रिय जनों को वृक्षों की जड़ों से सटकर सोना नहीं पड़ेगा। लक्ष्मण ने सुमन्त्र से शीघ्र ही रथ लाने को कहा।

मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः ।
उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमास्थाय सारथे ॥२।४६।३०।

सुमन्त्र के साथ तीनों रथ पर सवार हुए। तीव्र गति से तमसा पारकर राम ने रथ रुकवाकर सुमन्त्र से कहा कि यहां से तुम अयोध्या के मार्ग पर कुछ दूर रथ लेते जाओ। हम लोग पैदल चलते हैं। तुम चक्कर काट कर इसी रास्ते पर आना जिससे अयोध्यावासी भुलावे के कारण रथ के पहिये देखते-देखते अयोध्या की ओर लौटेंगे और बाद में हमारा पीछा करना नहीं चाहेंगे। सुमन्त्र ने राम की आज्ञा का पालन किया। राम ने सुमन्त्र को यह भी सूचना दी कि प्रजाजनों को हमारा पता न चल सके इतनी कुशलता से काम करना होगा।

प्रातः होते ही श्रीराम को न देखकर अयोध्यावासी शोक में व्याकुल होकर अचेत होने लगे। राम का पता देने वाला वहां कोई भी नहीं था। राम से विलग होकर वे दीनतापूर्वक अपनी नींद को भी धिक्कारने लगे। उनमें से कुछ देहत्याग की इच्छा करने लगे। किसी का विचार हिमालय की ओर जाने का था और किसी का डूब मरने का बन रहा था। कुछ लोगों ने जंगल से काष्ठ इकट्ठा करके चिता बनाकर जलने का विचार किया। वे राम के बिना अयोध्या नहीं लौटना चाहते थे। उनके सामने समस्या थी कि अयोध्या जाकर पुरवासियों को क्या उत्तर देंगे? इतने में एक का ध्यान रथ की लीक की ओर गया, अतः सभी लोग लीक के पीछे-पीछे चल पड़े। अनिश्चित होने से वे लोग अनचाहे अयोध्या की ओर बढ़ने लगे। अयोध्या पहुंचने पर नगरवासियों ने उन्हें घेर लिया। जो धोखे से वापस आ गये

थे, और जो जा ही नही पाये थे, उन सभी का एक ही हाल था। जैसे-तैसे रोते-बिलखते लोग अपने-अपने घर पहुचे।

घर मे पत्नी-पुत्र को देखकर सभी के आसू निकल आये। किसी के भी शरीर या चेहरे पर हर्ष का कोई चिह्न नहीं था। उस दिन भी दुकानें न खोली गई। बाजार में ग्राहक ही न थे। दूसरे दिन भी रसोई न बनी। राम के बिना लौटने पर पत्निया पतियो को कोस रही थी। उन्हे घर-बार, पति-पुत्र, धन-दौलत, सुख-भोग में आनन्द नही आ रहा था। उनके लिए अयोध्या मे न प्रीति थी, न प्रतीति। जिस कैकेयी ने राज्य के लिए पुत्र और पति का त्याग किया, वह हमारा कभी भी अकल्याण कर सकती है, यह उनका विचार था। वह पुत्रो की शपथ खाकर कह रही थी कि वे कैकेयी के राज्य मे कभी नही रहेंगी। इस प्रकार अयोध्यापुरी मानो अन्धकार से पुती हुई लग रही थी।

उधर श्रीराम शेष रात्रि मे ही बहुत दूर निकल गये। समृद्ध ग्रामो एवं फूलो से सुशोभित वनों को देखते हुए राम आगे बढ रहे थे। प्रकृति से तन्मयता के कारण उन्हें रथ की गति धीमी मालूम पड रही थी। मार्ग के ग्रामवासियो से वे तरह-तरह की बातें सुन रहे थे। विशेषकर दशरथ और कैकेयी की निन्दा राम और सीता के गुणों की चर्चा अधिक थी। बहुत देर चलने के बाद उन लोगों ने गोमती नदी पार की। राम ने सीता को वह सारा क्षेत्र, वर्णन करते हुए दिखाया और बताया कि मनु ने इक्ष्वाकु को अवान्तर जनपद प्रदान किये थे।

चलते-चलते वे सुमन्त्र से भी बातें करते थे। बीच-बीच मे अयोध्यावासी तथा माता-पिता की स्थिति का स्मरण कर उनके मन मे करुणा भी उत्पन्न होती थी। अयोध्या मे स्वय के बीते जीवन का स्मरण भी आता था।

कोशल देश की सीमा समाप्त होने पर श्रीराम ने अयोध्या की ओर मुख किया। उन्होंने हाथ जोडकर कहा, "ककुत्स्थवंशीय राजाओं की पुरीशिरोमणि अयोध्ये! मैं तुमसे, तुम्हारे अन्दर निवास करने वाले या रक्षा करने वाले देवताओं से वन जाने की आज्ञा चाहता हू। वनवास की अवधि पूरी कर महाराज के ऋण से उऋण होकर मैं पुनः तुम्हारे दर्शन करूंगा।" फिर बाहु उठाकर आसू भरे नेत्रों से जनपद के लोगो को सम्बोधित करते हुए राम ने कहा, "आपने मुझे स्नेह दिया तथा कृपा से मुझे बहुत अनुग्रहीत किया है। आपने बहुत कष्ट उठाये हैं। अब आप अपना-अपना कार्य करने अपने गावो को लौटिये।" ऐसा कहते हुए श्रीराम ने रथ-द्वारा कोशल देश की सीमा पार कर ली।

विपुलतायुक्त कोशल देश छोड़ने पर राम ऐसे राज्य से निकले जो सुख-सुविधाओ से युक्त, धन-धान्य से सम्पन्न, रमणीय उद्यानों से व्याप्त तथा छोटे-छोटे सामन्त, नरेशो के उपभोग मे था। उसी क्षेत्र मे उन्हे परम पावन भागीरथी के दर्शन हुए। भागीरथी का जल शीतल तथा सेवार से रहित था। अनेक महर्षि

उसका सेवन करते थे। गगा के तट पर थोडी दूर पर अनेक आश्रम बने हुए थे। जिसकी लहरे आवर्तो मे व्याप्त है, उस गगाजी का दर्शन कर उसके किनारे पर ही रात्रि के विश्राम का विचार किया गया पडोस मे ही बहुत से पुष्पो से सुशोभित इन्गुदी का वृक्ष था। उसी के नीचे विश्राम की व्यवस्था की गई। राम की इच्छा थी कि वे वही से लेटे-लेटे गगा का दर्शन करते रहे। यह स्थान शृगवेरपुर कहलाता था।

शृगवेरपुर मे गुह नामक राजा राज्य करता था। वह जाति का निषाद था। शारीरिक शक्ति एव सैनिक-शक्ति से भी वह बलवान था। निषादो का राजा होने पर भी वह श्रीराम का प्राणप्रिय मित्र था—

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसम सखा।(२ ५० ३३)

उसे श्रीराम के आगमन का पता चला। अपने मत्री तथा बधु-बाधवो के साथ वह राम से मिलने आया। उसे दूर से आता देख श्रीराम लक्ष्मण को लेकर आगे बढे। श्रीराम को वल्कल धारण किये देख गुह को दु ख हुआ। श्रीरामचन्द्रजी को गले लगाते हुए गुह ने कहा, "अयोध्या के समान यह राज्य भी आपका ही है। बताइये आपकी मै क्या सेवा कर सकता हू ? आप जैसा प्रिय अतिथि किसको कब सुलभ होगा ?" उसके पीछे-पीछे उसकी सूचनानुसार भिन्न-भिन्न भोज्य पदार्थ, पेय पदार्थ लेकर उसके परिचारक आ गये। गुह ने श्रीराम को अर्घ्य प्रदान किया तथा भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना की। फिर गुह ने श्रीराम से कहा, "यह मेरे अधिकार की भूमि आपकी ही है। आप स्वामी हैं तथा हम सेवक। आज से आप ही यहा के राजा हैं। यह भक्ष्य (अन्न आदि) भोज्य (खीर आदि) पेय (पानक रस आदि) तथा लेह्य (चटनी आदि) आपकी सेवा मे उपस्थित हैं। आप इन्हे स्वीकार करें। उत्तम शय्या भी तैयार है तथा घोडो के लिए घास और दाना भी है। गुह का प्रेमपूर्ण आतिथ्य देखकर राम का हृदय भर आया। राम ने कहा, "हे निषादराज। यहा तक तुम्हारे पैदल आने से ही हमारा सदा के लिए स्वागत-सत्कार हो गया। तुमसे भेंट करने मे ही प्रसन्नता है। तुम्हारे बधु-बाधुवो को देखकर बहुत आनन्द हो रहा है। तुम्हारे द्वारा दी हुई समस्त सामग्री स्वीकार कर मैं तुम्हे वापस ले जाने की अनुमति देता हू। मैं व्रतस्थ हू। दूसरो की दी हुई वस्तु मैं ग्रहण नही कर सकता। वल्कल या मृगचर्म धारण करना या फलमूल का आहार करना ही मेरे लिए नियम सम्मत व्यवहार है। हा, घोडो के खाने की वस्तुओ की आवश्यकता है, अन्य वस्तुओ की नही। मेरे रथ के घोडो को खिला देने से ही मेरा पूर्ण सत्कार हो जायेगा।"

राम की आज्ञा का गुह ने दु खी मन से पालन किया। उसका उत्साह ठडा पड गया। सायकाल की सन्ध्या से निवृत्त होकर लक्ष्मण द्वारा लाया गया जल ही उस रात भी श्रीराम ने भोजन के रूप मे स्वीकार किया। तत्पश्चात् सीता सहित वे

निषाद मिलन 'चाण्डाल नही मानव' (नीचे श्रीराम) "गुहका स्वयं अगवानी करके ही तुमने मेरा पूर्ण आतिथ्य किया है। अब केवल मेरे घोड़ों के लिए घास का प्रबन्ध करो।"

तृण की शय्या पर लेट गये। लक्ष्मण उनके दोनो चरण धो-पोछकर, कुछ दूर हट-कर वृक्ष के सहारे बैठ गये। निषादराज गुह भी सुमत्र के साथ लक्ष्मण के पास आकर बैठ गये और वह रात तीनो ने रामचर्चा मे ही बिताई।

किरण-९

सगम से चित्रकूट

लक्ष्मण के साथ बातचीत करते समय एक बार गुह को लक्ष्मण के सोने के सबध मे जिज्ञासा हुई। उसने लक्ष्मण के सोने के लिए भी शय्या तैयार करवा दी थी। अत गुह ने धर्म की शपथपूर्वक तथा सैनिको के साथ सभी की रक्षा का भार लेकर लक्ष्मण से सोने का आग्रह किया। गुह का प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, स्वय प्रेरणा आदि से लक्ष्मण प्रभावित हुए परन्तु उन्होंने सोने से विनयपूर्वक मना किया। लक्ष्मण ने कहा, "देव तथा असुरो का सम्मिलित बल भी जिनके वेग को सहन नही कर सकता, वे श्रीराम तिनको को बिछाकर सो रहे हो, उस समय मेरा उत्तम शय्या पर सोना, स्वादिष्ट अन्न खाना या सुखो का उपभोग करना कहा तक युक्तिसगत है? महाराज दशरथ ने अनेक यज्ञो के बाद अपने ही समान उत्तम लक्षणो से युक्त ऐसा पुत्र श्रीराम के रूप मे पाया है। ऐसा लगता है कि अब महाराज अधिक काल तक जीवित नही रह सकेंगे, अत अयोध्या विधवा हो जायेगी। राजभवन रनिवास की स्त्रियो के चीत्कार से भर गया होगा। महारानी कौशल्या भी आज की रात तक जीवित होगी या नही, कहा नही जा सकता।" इन शब्दो के साथ लक्ष्मण ने गुह के समक्ष विलाप शुरू किया। वह दृश्य देखकर गुह एव सुमत्र की आखें भी आसू बहाने लगी।

प्रात काल जागने पर श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मण से गगा पार चलने की जल्दी करने को कहा। लक्ष्मण ने यह बात गुह तथा सुमत्र को बताई। गुह ने अपने सचिव को बुलाकर एक उत्तम नाव मगवाकर श्रीराम से चलने को कहा। श्रीराम की प्रस्थान की तैयारी देखकर सुमत्र ने अपने योग्य सेवा पूछी। तब राम ने उन्हे शीघ्र अयोध्या लौटने को कहा। राम के वियोग की कल्पना से ही सुमंत्र कम्पित हो गये वे अपने भाग्य को दोष देने लगे। राम की दुर्दशा तथा उनसे बिछोह की कल्पना कर सुमत्र को लगा कि मानो वेदाध्ययन, ब्रह्मचर्यपालन, सरल हृदयता, दया आदि गुण निरर्थक ही दीखते हैं इसलिए तो भाग्य या दैव का कोई पुरुष उल्लघन नहीं कर सका। अब इसके पश्चात् राम के दर्शन नही होंगे तथा कैकेयी के वश मे रहना पड़ेगा, इस विचार से वे रोने लगे।

रामचन्द्रजी ने सुमत्र को समझाते हुए कहा, "इक्ष्वाकु-कुल-हित-रक्षक सुमत्र! तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। वृद्ध तथा भग्न मनोरथ राजा दशरथ की

सावधानी के साथ तुम्हे ही देखभाल करनी होगी।" श्रीराम ने दशरथ के लिए सन्देश देते हुए कहा, "मुझे अयोध्या छोडने का या वन मे वास का तनिक भी दुख नही है। मैं शीघ्र ही अवधि समाप्त कर वापस आऊगा।" साथ ही श्रीराम ने भरत तथा माताओ को भी उनके योग्य सन्देश भेजे। इतना होने पर भी सुमंत्र साथ रहने की आज्ञा मागते रहे। सुमन्त्र ने कहा, "रथ के घोडो को आप की सवारी ढोने का अभ्यास है। बिना आपको लिए वे चलेंगे ही नही।" राम ने उनकी भक्तिपूर्ण बात सुनकर कहा, 'सुमन्त्र! आपके लौटने से ही मेरी छोटी माता कैकेयी को विश्वास होगा कि मैं वन मे गया हूं, अत आपका लौटना अति आवश्यक है।"

नगरी त्वा गत दृष्ट्वा जननी मेयवीयसी।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वन गत ॥ (२।५२।६१)

रामचन्द्रजी ने सुमन्त्र को समझाकर जैसे-तैसे वापस भेजा। बाद मे उन्होंने गुह को भी समझाया कि मेरा ऐसी जगह रहना उचित नही जहा जनपद के लोग आते-जाते रहे। निर्जन वन मे ही मुझे जाना होगा। अतः भूमि पर शयन, फल-मूल का आहार आदि नियमो को ग्रहण कर, जटा धारण कर, मैं वन मे जाना चाहूगा। ऐसा कहते हुए श्रीराम ने स्वय की तथा लक्ष्मण की जटाए बनाई। उस समय वे दोनो भाई ऋषिकुमारो के समान दीखने लगे। गुह को राजशासन सबधी कुछ सूचनाएं देकर दोनो भाई तथा सीता नाव पर चढ गये। नाव पर चढने पर श्रीराम ने वैदिक-मत्रो का जाप कर गगाजी को प्रणाम किया तथा सुमन्त्र और गुह को सेना सहित लौटने का आदेश दिया। मल्लाहो ने धीमी गति से नाव चलाई। गगा की बीच-धारा मे सीता ने विविध प्रकार से गंगाजी की प्रार्थना करते हुए राम-लक्ष्मण की सुरक्षा का आशिष मागा। साथ ही वनवास से कुशलपूर्वक लौटने पर सम्पूर्ण मनोरथ से षोडशोपचारपूर्वक पूजा का सकल्प किया।

अध्यात्म रामायण के आधार पर शिला को पैर लगने से अहल्या प्रकट हुई, इस कल्पना को आगे बढाकर कुछ कवियो ने कही भक्तिपूर्ण, कही विनोदपूर्ण वर्णन प्रकट किया है। संत तुलसीदास, सत एक नाथ आदि ने इसी निमित्त से अलौकिक भाव भी प्रकट किया। श्री राम को नाव पर चढाते समय गुह सन्देह प्रकट करता है कि राम के पैर के स्पर्श से यदि पत्थर से स्त्री बनती है तो उन्ही पैरो के रजकण से कही उसकी नाव भी स्त्री न बन जाये? यदि ऐसा हुआ तो उसके पेट भरने के साधन का क्या होगा? इसलिए उसने नाव चढने के पूर्व राम से चरण धुलवाने का आग्रह किया। गुरु गोविन्दसिंह आदि ने अहल्या की घटना को आधार बनाकर सीता द्वारा विवाह के बाद राम के पैर छूने से मना करवाया है, क्योंकि पैर पर सिर रखते समय उसके गले के आभूषणों का स्पर्श राम के पैर को होगा और उस स्थान पर कुछ नारियां खड़ी हो जायेंगी। सन्तो का लेखन भक्ति से भाव-विभोर होकर लिखा गया होता है। उसका वैसा प्रभाव भी होता है। लेखक यहां केवल

वाल्मीकि का लिखा हुआ वर्णन दोहरा रहा है। भ्रम कैसे फैलते हैं, यह बताने के लिए कुछ कवियों का वर्णन ऊपर दिया है।

किनारे पहुंचकर श्रीराम ने नाव छोड़ दी। नाव से उतरते ही श्रीराम ने मार्ग में पड़ने वाले सजन अथवा निर्जन वन में लक्ष्मण को सावधान रहने को कहा। सीता की रक्षा के उत्तरदायित्व का पुन लक्ष्मण को स्मरण कराया। आगे-आगे लक्ष्मण चलते थे, उनके पीछे सीता तथा सबसे पीछे राम चलने लगे। मार्ग में चलते-चलते वे कह रहे थे कि अभी तक कोई दुष्कर कार्य नहीं आया है, पर आज से सीता को वन के कष्टों का पता चलेगा। यहां न मनुष्य हैं न खेती-बाड़ी। फिर बाग-बगीचे कहां होंगे? यहां ऊंची-नीची भूमि और गड्ढे मिलेंगे जिनमें गिरने का भी भय रहेगा।

गंगा पार कर श्रीराम वत्स देश (प्रयाग) पहुंचे। यह देश धन-धान्य से सम्पन्न था। लोग हृष्ट-पुष्ट थे। मार्ग में रात्रि के आहार स्वरूप कन्द-मूल खाकर, रात्रि में विश्राम के लिए एक घना वृक्ष देखकर वे तीनों उसके नीचे ठहर गये। वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे श्रीराम ने लक्ष्मण के मन के अनुकूल तर्क देते हुए लक्ष्मण को अयोध्या लौटने के लिए कहा। इस वार्ता में उन्होंने कैकेयी तथा राजा को दोष भी दिया है लक्ष्मण के मन में शंका उत्पन्न करते हुए श्रीराम ने कहा, "छोटी माता कैकेयी मेरी मां कौशल्या, तुम्हारी मां सुमित्रा तथा महाराज दशरथ तीनों को विष भी दे सकती है। जो अर्थ और धर्म को छोड़कर केवल काम का सेवन करता है, उसकी दशरथ जैसी स्थिति होती है। फिर भी कैकेयी से सबकी रक्षा तथा माता-पिता की प्रत्यक्ष सेवा के लिए तुम्हारा अयोध्या लौटना उचित तथा आवश्यक है।" राम की बातों का लक्ष्मण पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने स्पष्ट शब्दों में राम से कहा, "मुझे पिताजी, मां सुमित्रा, बन्धु शत्रुघ्न या स्वर्गलोक भी देखने की इच्छा नहीं है मैं सदा आपके निकट रहना चाहता हूं।" लक्ष्मण की लगन देखकर श्रीराम ने उसे साथ रहने की अनुमति दी। लक्ष्मण परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया था।

वट वृक्ष के नीचे बिछी हुई शय्या पर राम और सीता सो गये। यह पहली रात्रि थी जब पूर्णतया निर्जन वन में अंधेरी रात में केवल तीन लोग साथ थे। सूर्य उदय होने पर तीनों गंगा-यमुना के संगम की ओर चल पड़े। गंगा किनारे का दृश्य देखते-देखते दिन भर का मार्ग सरलता से तथा आनन्द से कट गया। चलते-चलते सामने एक बड़े आश्रम में यज्ञ का धुआं उठता दिखाई दिया। राम को लगा कि यह भरद्वाज आश्रम ही होगा, और यज्ञ के चलने से मुनि भी आश्रम में ही होंगे। अर्थात गंगा-यमुना का संगम निकट होने का भी यह प्रमाण था। सन्ध्या का समय था। अग्निहोत्र समाप्त कर भरद्वाज ऋषि शिष्यों के बीच बैठे थे। धनुष से डोरी उतार कर दोनों राजकुमार सीता के साथ वहां पहुंचे तथा ऋषि के चरणों में दोनों ने दण्डवत प्रणाम किया तत्पश्चात् सीता ने भी ऋषि की चरणवंदना की।

राम ने अपना तथा शेष दोनों का परिचय दिया तथा अपने आने का कारण बताया। ऋषि के चारों ओर शिष्यों के साथ अन्य कुछ मुनि तथा मृग, पक्षी आदि भी बैठे थे। भरद्वाज ऋषि ने आतिथ्य कर राम से कहा, "मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा मे ही था। अयोध्या से तुम्हारा निकलना मुझे पता था। अब तुम इस आश्रम मे गगा-यमुना के पवित्र सगम पर ही रहो।" इस पर राम ने अपनी कठिनाई बताते हुए विनयपूर्वक ऋषि का सुझाव अस्वीकार किया। उनका कहना था, "मेरा जनपद यहा से निकट होने से वहा के लोग यहा बार-बार आना चाहेंगे। इससे सभी को कष्ट होगा। अत. आप सीता के लिए मनोहर परन्तु दूरस्थ स्थान बताने की कृपा करें। इस पर भरद्वाज मुनि ने उन्हे चित्रकूट का सुझाव दिया। चित्रकूट प्रयाग से ३० कोस की दूरी पर था। चित्रकूट को, गन्धमादन पर्वत जैसा मनोरम बताते हुए वहा वानर, रीछ आदि भी होने की सूचना ऋषि ने दी। वह रात्रि तीनो अतिथियो ने आश्रम मे ही बिताई।

प्रात काल उठते ही श्रीराम ने ऋषि भरद्वाज से चित्रकूट की ओर बढने की अनुमति मागी। श्रीराम को जाते देख भरद्वाज मुनि ने पिता के समान उनका स्वस्तिवाचन किया तथा मार्ग निष्कटक एव सुरक्षित होने की कामना से आशीर्वाद दिया। निकलने के पूर्व ऋषि ने सम्पूर्ण मार्ग का विशद वर्णन किया था। वाल्मीकि ने जिन स्थानो का वर्णन किया है, उनमे से अधिकाश स्थान आज भी उसी प्रकार हैं। अत इस वर्णन को काल्पनिक नही ठहराया जा सकता। भारतीय मानसिकता की यह विशेषता रही है कि उसे नि.सर्ग के सभी रमणीय स्थल, उच्चशिखर, जल-प्रवाह, देवताओं से सम्बन्धित लगते है। यही बात वाल्मीकि के वर्णन में भी झलकती है। उन्होंने यमुना को सूर्यकन्या कहा है तथा सीता यमुना माता से आशीर्वाद मागती हैं।

भरद्वाज मुनि की सूचनानुसार तीनो कालिन्दी (यमुना) के तट पर पहुचे। मुनि का स्नेहपूर्ण सान्निध्य राम ने लक्ष्मण को शब्दो मे प्रकट कर दिखाया और कहा कि मुनियो की इस कृपा मे अपना पुण्य ही आधारभूत होगा। कालिन्दी तेज गति से बह रही थी। वे प्रवाह के उलटी दिशा मे अर्थात् पश्चिम की ओर चले जहां उतरने का घाट था। वहा उसे पार करने की चिन्ता हुई। दोनो भाइयो ने जंगली काठ तथा वास बटोर कर एक बडा बेडा तैयार किया। लक्ष्मण ने सीता के बैठने के लिए बेंत का आसन तैयार किया। श्रीराम ने सीता को बेड़े पर चढाकर, पास मे आभूषण रख दिये। बाद मे दोनो भाई चढे और बेड़े को खे लिया। इन दो राजकुमारो का बनाया हुआ बेडा भरी यमुना मे चल पडा, जिस पर साथ मे सीता भी थी। केवल राम नाम से पार जाने की कल्पना करने वाले भक्तो को, राम के कष्टमय, साहसपूर्ण और उद्यमी जीवन का विचार अवश्य करना चाहिए। बीच-धारा मे सीता ने यमुना माता से श्रीराम के यशस्वी होकर सकुशल लौटने की याचना की।

पार उतर कर तीनों ने नौका को छोड दिया तथा मुनि-द्वारा संकेत प्राप्त श्याम-वट के पास आये। आगे चलकर तीनों ने नीलवन की ओर प्रस्थान किया। नये-नये वृक्षों व फूलों को देखकर सीता, राम से जिज्ञासा करती थी और लक्ष्मण उनमें से कुछ फूल ला कर देते भी थे। यात्रा यमुना के किनारे चल रही थी। वह रात तीनों ने वहीं यमुना किनारे बिताई। रात्रि समाप्त होने पर श्रीराम प्रथम उठे तथा कई दिन से थके हुए लक्ष्मण को जगाया। तीनों ने यमुना में स्नान किया तथा वन की शोभा देखते-देखते सीता के साथ दोनों भाई चित्रकूट आ पहुंचे। चित्रकूट में कहीं-कहीं मधु के छत्ते लटक रहे थे। कहीं चातक "पी कहां, पी कहां" की रट लगा रहा था। वन का मार्ग बहुत रमणीय था। और उस पर प्राय फूलों की वर्षा होती रहती थी। चित्रकूट का दृश्य देखकर राम को विश्वास हुआ कि यहां बड़े आनन्द के साथ जीवन-निर्वाह हो सकता है। उस स्थान के आसपास अनेक महात्मा रह रहे थे। अत चित्रकूट पर ही निवास करने का राम ने निश्चय किया।

किरण-१०

दशरथ का देह-त्याग

जब गंगा के दक्षिणी तट पर राम आगे बढ गये, तो गुह, व्याकुल सुमन्त्र को रथ समेत अपने घर ले गया। तीसरे दिन गुह के गुप्तचरों ने राम की चित्रकूट की यात्रा का वृत्त सुनाया। राम का समाचार सुनकर सुमन्त्र अयोध्या के लिए लौट पड़ा। शृंगबेरपुर से दूसरे दिन सायंकाल वह अयोध्या पहुंचा। उसे लगा कि राम के शोक से मनुष्य ही नहीं, हाथी घोड़े भी दग्ध हैं। पुरवासियों ने सुमन्त्र को देखते ही घेर लिया। सुमन्त्र ने राम की चित्रकूट तक की यात्रा का वर्णन किया तो वे जोर से क्रन्दन करने लगे। श्रीराम द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में की गयी वृद्धि का वे स्मरण करने लगे। मार्ग के दोनों ओर घरों से स्त्रियों के रोने की आवाज सुनाई दी। सुमन्त्र ने अपना मुह ढक लिया और राजा दशरथ से भेंट करने कौशल्या के महल में गये। आठवी ड्योढ़ी पार करने पर, अन्त पुर में राजा दशरथ पुत्रशोक से मलीन, दीन, आतुर तथा दु खी अवस्था में बैठे हुए दिखाई दिये। सुमन्त्र ने राजा के चरणों में प्रणाम कर राम द्वारा बताया गया संदेश सुनाया। सुमन्त्र की बात सुनकर राजा और भी व्याकुल हुए तथा मूर्च्छित हो गये। सारा अन्त पुर शोक से व्यथित हो गया। कौशल्या राजा को होश में लाने लगी। मूर्च्छा दूर होने पर महाराज ने सुमन्त्र से पूरा वृत्तान्त जानना चाहा। वन में राम को होने वाले संभावित कष्टों से व और भी व्याकुल होते जा रहे थे। फिर भी उन्होंने विस्तृत समाचार जानने की इच्छा प्रकट की। राम ने माता एवं पिता के चरणों में प्रणाम कहा है, यह बताते हुए सुमन्त्र ने कहा, "श्रीराम ने आप दोनों से एक-दूसरे का ध्यान रखने की विनती

की है। साथ ही आप लोग भरत का योग्य सम्मान करें यह भी पुन: स्मरण दिलाया है। भरत के लिए दिया हुआ सन्देश भी सुमन्त्र ने सुनाया। लक्ष्मण ने कुछ कडी बातें अवश्य कही थीं, पर राम ने वे बातें आप से कहने को मना किया है। सन्देश देते समय राम की आखो से आसुओ की धारा बह चली थी तथा क्षण भर मे उनकी देखा-देखी सीता के नेत्र भी सजल हो गये।"

सुमन्त्र ने अयोध्या का जो दृश्य देखा था वह भी दशरथ को सुनाया। गगा किनारे से लौटते समय उसके घोड़े भी आसू बहाने लगे। अयोध्या के वृक्ष भी कृश-काय दिखाई दिये। पेड़ो पर फूल मुरझा गये हैं, सरोवरो तथा नदियो के जल गरम हो गये हैं, नगर के बाहर के वन में जीव-जन्तु भी निश्चेष्ट पड़े है। सारा वन मानो नीरव हो गया है। अयोध्या के उद्यान मानो उजड गये हैं तथा पक्षी छिप गये हैं। इस स्थिति मे श्रीराम के बिना राजा का रथ देखकर नागरिको ने हाहाकार मचा दिया। सुमंत्र के मुख से यह सब वर्णन सुनकर राम की एक-एक बात स्मरण कर राजा दशरथ और भी जोर से विलाप करने लगे। उन्होंने सुमन्त्र से कहा, "मुझे भी राम के पास ले चलो।"

कैकेयी को 'हा' कहने के पूर्व उन्होने किसी से भी परामर्श नही किया था, यह बात राजा दशरथ को खटकने लगी। उन्हे कैकेयी से इस प्रकार धोखे की सभावना कभी नही थी क्योकि वह भी श्रीराम से अत्यधिक प्यार करती थी। पर शोक मे मनुष्य सुसंगत बात सोच नही सकता। वे बार-बार अचेत हो रहे थे। मूर्च्छा दूर होने पर वे राम-लक्ष्मण को देखने की इच्छा प्रकट करते रहे। उनकी इस दुरवस्था को देखकर कौशल्या भी विलाप करने लगी। वे भी राम को देखने के लिए वन जाने की इच्छा प्रकट करने लगी। सुमन्त्र उन्हे समझाने लगे। सुमन्त्र ने कहा, "श्रीराम तो वन मे सतापरहित भ्रमण कर ही रहे हैं। पर लगता है सीता को भी वनभ्रमण का अभ्यास है। फिर उनकी सेवा के लिए लक्ष्मण निकट रहते ही हैं। उन तीनो को वन का तनिक भी दुःख दिखाई नही देता।"

सुमन्त्र के समझाने पर भी कौशल्या का विलाप बढता गया। यहा तक कि वह अब महाराज दशरथ को भी उपालम्भ देने लगी। कौशल्या दशरथ को सम्बोधित कर बोली, "आप रघुकुल नरेश दयालु, उदार और मधुरभाषी माने जाते हैं। पर आपने बहुत कठोर कर्म किया है। समस्त लोगों को एक साथ महासमर मे जीत सकने वाले राम ने अधर्म की सभावना से राज्य पर अधिकार नही किया। जो धर्मात्मा ससार को धर्म मे लगाते हैं, वे स्वय अधर्म कैसे करेंगे। ऐसे धर्म-परायण पुत्र को आपने देश से निकाल दिया। अत: विचार आता है कि वेदमान्य धर्म को आप कितना सत्य मानते हैं? श्रीराम को वन मे भेजकरआप ने राष्ट्र का नाश किया है। मन्त्रियो सहित मानो प्रजा का वध-सा किया है।"

कौशल्या के कठोर वचन सुनकर राजा को और भी दुःख हुआ। उनके मन मे

कई विचार आ रहे थे। कौशल्या को मनाने के लिए वे हाथ जोड़कर कहने लगे,"मैं विनती करता हू कि तुम प्रसन्न हो जाओ। तुम सब पर वात्सल्य करती हो, सब पर दया करती हो। धर्म मे तत्पर हो। भला-बुरा समझने वाली हो। तुम दुखी हो, पर मैं भी कम दुखी नहीं। अत. मैं हाथ जोड कर कहता हू कि तुम्हे मुझे कठोर वचन नहीं कहना चाहिये।" राजा के वचन सुनकर कौशल्या के आसू भर आये। वह अधर्म के भय से रो पडी। दशरथ के हाथ अपने सिर पर रखकर बोली, "देव! क्षमा करें। मैं आपके चरणो पर पडी हू। प्रसन्न हो जाइये। मैं क्षमा योग्य हू, ताडन योग्य नही। स्त्री के लिए पति ही लोक-परलोक मे भी स्पृहणीय है। जिसे पति मनाय, वह कुलीन स्त्री नहीं। इस समय मैंने जो कुछ अनुचित कहा, वह पुत्र-शोक मे पीडित होकर कहा। शोक से धैर्य का नाश होता है तथा विवेक नष्ट होता है। शोक मनुष्य को असन्तुलित करता है। शस्त्रो का आघात सहन करना सरल है, पर दैववश प्राप्त शोक सहन नही हो पाता। श्रीराम को गये पाच रात्रिया बीत गई मानो पाच वर्ष बीत गये हो। इस शोक ने मेरी मति बिगाड दी। अब आप क्षमा करे।" कौशल्या के वचन सुनकर दशरथ को एक ओर कुछ शान्ति मिली तो दूसरी ओर वे पीडित भी हुए। इसी बीच उन्हे थोडी नीद आ गयी।

जागने पर उन्हे पुरानी बातें स्मरण आने लगीं, विशेष कर श्रवण कुमार की हत्या का स्मरण प्रासगिक था। वही उन्होंने विस्तार से कौशल्या आदि को सुनाया। उसमे भारतीय चिन्तन का स्थायी निष्कर्ष ही निकल रहा था। मनुष्य जो शुभ-अशुभ कर्म करता है, उसी का उसे फल मिलता है। फलो का विचार किये बिना लघुता या गुरुता-पूर्ण कर्म करने वाला अज्ञानी ही हो सकता है। दशरथ को श्रवण के पिता द्वारा बोले गये मर्मान्तक शब्द बार-बार याद आ रहे थे।[1] सक्षिप्त घटना इस प्रकार थी

श्रवण के बताये अनुसार राजा दशरथ जल लेकर उसके माता-पिता के पास गये थे। उन्हे श्रवण हत्या की घटना बताकर शाप या अनुग्रह देने के लिए वे प्रसन्न हो। यह दशरथ ने उनसे याचना की थी। उनके सुसस्कारित मन का इससे स्पष्ट पता चलता है। श्रवण के माता-पिता अति व्याकुल थे। वे श्रवण के शव के पास बैठकर तरह-तरह से उसकी याद करते रहे। अन्त मे श्रवण के पिता ने दशरथ से कहा, "हमे भी बाण से यमलोक पहुचा दो। मैं तुम्हे एक भीषण शाप देने जा रहा हू। मेरे समान तुम्हें भी पुत्र-शोक से मृत्यु मिलेगी।" इस सारी दुर्घटना मे दशरथ की अपराधी बने रहने की स्थिति और दुःखी परिवार के प्रति सवेदना ध्यान देने योग्य है। पर इस समय वे सब घटनाए दशरथ का शोक बढा रही थीं।

महाराज दशरथ ने कौशल्या से कहा, "उन वानप्रस्थी महात्माओ का शाप

---

१ जिज्ञासु पाठक वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड के ६३ ६४ व ६५ सर्गों को अवश्य पढें।

फलीभूत होने का समय आ रहा है। मैं भी पुत्रशोक से यमलोक जा रहा हूं। ऐसे लोगो को बाधंव जन दिखाई नही देते। तुम भी मुझे इस समय दिखाई नही दे रही हो। मेरे शरीर का स्पर्श करो, शायद कुछ शान्ति मिले। पितृगण अपने कुपुत्र को भी घर से बाहर निकालने मे झिझकते है। मैंने धर्मात्मा पुत्र को निकाला है। कौन ऐसा पुत्र होगा जिसे घर से निकाल दिया जावे, और जो पिता को कोसे तक नही। पर राम चुपचाप चले गये। उन्होंने मेरे विरुद्ध एक शब्द भी नही कहा। यमराज के दूत आ रहे हैं। ऐसे समय सत्यपराक्रमी, धर्मज्ञ राम के दर्शन न होने से बढकर मेरे लिए और क्या दुःख हो सकता है? जो १४ वर्ष बाद राम का दर्शन कर सकेंगे वे भाग्यवान् हैं। वे ही सुखी होंगे। तेल समाप्त हुए दीपक जैसा मेरा हाल है। नदी का वेग अपने ही किनारो को काट गिराता है, वैसे ही मेरा ही पैदा किया शोक मुझे अनाथ और अचेत कर रहा है।"

"हा महाबाहु रघुनन्दन ! मेरे कष्ट को दूर करने वाले श्रीराम ! पिता के प्रिय पुत्र। मेरे नाथ ! मेरे बेटे ! तुम कहा चले गये ? क्रूर कुलागार कैकेई ! तेरी कुटिल कामना पूर्ण हुई। कौशल्ये, सुमित्रे, मैं जा रहा हू।" ऐसा कहते-कहते कौशल्या, सुमित्रा के निकट मध्यरात्रि मे महाराज दशरथ ने देहत्याग किया ! सूर्यवंश के महान् पराक्रमी, सत्यसंध सम्राट् का जीवन-दीप बुझ गया।

किरण-११

भरत का आगमन

दशरथ का शरीर छूटने से कौशल्या व सुमित्रा के मानो प्राण ही निकलने लगे। श्रीराम के वनवास के शोक से वे पहले से ही व्याकुल थी। अब पति भी इहलोक छोड गये। वे विधवा हो गईं, यह सोचकर वे शारीरिक व मानसिक थकान से मूच्छित हो गयी। प्रातःकाल राजा को जगाने आयी हुई अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों के कोलाहल से वे सचेत हुईं पर पुनः क्रन्दन कर अचेत हो गयी। तब तक कैकेई समेत शेष रानियां भी आ पहुची। अतः दशरथ के शव के पास प्रबल आर्तनाद प्रारंभ हुआ। कौशल्या जब पुनः सचेत हुईं तो उनके नेत्र शोक के आसुओ से लाल थे। कैकेई को देखकर वह क्रोध से भर गईं। वह कैकेई से बोली, "क्रूर कैकेई ! तुम्हारी कामना पूर्ण हुई। अब तुम अकटक राज्य करो। राम वन मे गये। पति स्वर्ग सिधारे। अब मैं भी जीवित नही रह सकती, अत पति की चिता पर ही शरीर त्याग दूगी।"

कौशल्या की अति शोकग्रस्त स्थिति देखकर मंत्रियो ने अन्य स्त्रियो की सहायता से उसे दूर हटवा दिया। वसिष्ठ की आज्ञा से राजा दशरथ का शरीर तेल-भरी नाव मे रखवा दिया गया। (स्पष्ट ही है कि यह विधि हजारो वर्ष

पूर्व भी इस देश को पता थी।) राजा का शरीर तेल में रखा हुआ देखकर अन्य रानियों ने विलाप शुरू किया। वे भी कैकेई की निन्दा कर रही थीं। निज पति की हत्या तथा राम-सीता का त्याग जिसने किया, वह किसी के साथ भी अन्याय कर सकती है, यह उनकी शंका थी। रानियों के साथ नागरिक भी कैकेयी की निंदा में सम्मिलित हो गये। इस शोकस्थिति में सहसा सूर्य का प्रकाश बन्द हो गया तथा अन्धकार का प्रचार करती हुई रात्रि का आगमन हुआ। रात्रि समाप्त होने पर राज्य का प्रबन्ध करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण दरबार में एकत्र हुए। समेत्य राजकर्तार सभामीयुर्द्विजातय ॥ (२।६७।२)

मार्कण्डेय, मौद्गल, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम, जाबालि आदि ऋषि सभा में आकर राजपुरोहित वसिष्ठ से चर्चा करने लगे। इन विद्वानों को बीती हुई रात्रि वर्षों जैसी लगी थी। वे सोच रहे थे, ''महाराज चले गये। राम वन में हैं। लक्ष्मण उनकी सेवा में हैं। भरत-शत्रुघ्न नाना के यहा है। आज ही इक्ष्वाकुवशीय किसी को राजा बनाना आवश्यक है। अराजकता बहुत बुरी तथा विपदाओं को आमंत्रण देने वाली, भलो-भलों को गिराने वाली होती है। शासन-हीन देश में कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता।'' *वाल्मीकि ने पूरा एक सर्ग अराजकता की चर्चा में लिखा* है। इससे राजनीति में उनकी कितनी गति थी, इसका पता चलता है।

कृतयुग में लोग धर्म से स्वयं शासित रहते थे। शेष युगों में राजा की यह प्रशासन की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। अत विद्वानों ने वसिष्ठ से कहा कि राजा अपने चरित्र में सभी लोकपालों से बढ जाते हैं। यमराज दण्ड, कुबेर धन, इन्द्र पोषण तथा वरुण प्रजा को सदाचार देते है। पर राजा में चारों गुण विद्यमान होते है (अपेक्षित होते है)। *राजा के अभाव में मत्स्य-न्याय चल पड़ता है, अत आप ही इक्ष्वाकुवशीय या किसी और को शीघ्र ही राजा बनावें।*

इस पर वसिष्ठ ने कहा कि राजा ने जिस भरत को राज्य दिया है उसे बुला लेने के अलावा हम अन्य कुछ विचार नहीं कर सकते। भरत को बुलाने के लिए शीघ्र ही तेज घुड़सवार दूत जावें, यही आवश्यक है। यह कहकर वसिष्ठ ने पाच दूत बुलाये। उनका मुखिया सिद्धार्थ था। भरत एव केकय-नरेश को उपहार स्वरूप योग्य वस्तुएं वस्त्र आदि साथ में देकर गुरु वसिष्ठ ने उन्हें कई सूचनाए दीं। उसमे विशेष यह कि अयोध्या में क्या हुआ, इसकी किंचित् सूचना भी भरत को या अन्य किसीको न हो। केवल भरत को शीघ्रतम बुलाया है, इतना ही कहा जाना था। दूतगण आवश्यक मार्ग-व्यय लेकर उत्तम घोडों पर चले गये।

दूतों की यात्रा अयोध्या से प्रारम्भ होती है। मालिनी नदी के किनारे-किनारे वे आगे बढे। उन्होंने हस्तिनापुर में गंगा पार की। वहा से पश्चिम में पाचाल तथा कुरुजांगल प्रदेशों में होते हुए वे आगे बढे। पचनद की निर्मल जल वाली नदियों को देखते-देखते, वे शरदण्डा नदी पार कर गये। वहा से पश्चिमोत्तर आगे बढने पर

दशरथ के पिता-पितामह द्वारा सेवित इक्षुमती नदी मिली। आगे चलकर ये वाह्लीक देश मे सुदामा पर्वत के पास पहुचे। सुदामा पर्वत के शिखर पर विष्णु के पद-चिह्नों का दर्शन कर वे विपाशा (व्यास) नदी पर आये। अति वेग से इतना मार्ग सतत चलने के कारण दूत सात दिन मे थके हुए होने के बाद भी केकय देश की राजधानी राजगृह नगर मे पहुचे।

इधर भरत को एक रात पूर्व अतिशय भीषण स्वप्न दिखाई पड़ा था। वह अपने मित्रो से उस स्वप्न के सबध मे वार्तालाप कर रहा था। उस स्वप्न मे उसे महाराज दशरथ की मृत्यु के लक्षण दिखायी दिये। जहा अत्यधिक प्रेम होता है, वहां सवेदना कैसे हो सकती है इसे मनोविज्ञानवेत्ता समझ सकते हैं। यह कोई अनहोनी या अलौकिक बात नही। डाक्टर राजगोपालाचार्य ने इसे प्रेम का दूरसचार (Telepathy of love) कहा है। यह केवल काल्पनिक बात नही। जब भरत अपने मित्रो को स्वप्न का वृत्तान्त बता रहे थे, तभी थके हुए दूत भरत के महल मे पहुचे। उन्होंने भरत के नाना तथा मामा को देने योग्य वस्तुए भरत को भेंट की तथा अयोध्या का कुशल समाचार सुनाया। ये उपहार बहुत मूल्यवान् थे, जिससे किसी को तनिक भी शका न हो।

भरत ने भिन्न-भिन्न लोगो के नाम लेकर कुशल-मगल पूछा। भरत पूछते हैं, "सदा अपने स्वार्थ मे रहने वाली, बुद्धि का अहंकार करने वाली, कोपशीला माता कैकेई सकुशल हैं न?" कैकेई के सकुशल होने का समाचार देते हुए दूतो ने कहा, "पुरोहित मन्त्रियों ने आपको शीघ्रता से बुलाया है।" ऐसा कहते हुए उन्होंने भरत से यात्रा की शीघ्र तैयारी करने को कहा। भरत अपने नाना केकय-नरेश से अनुमति लेकर गुरुजन के चरण छूकर यात्रा के लिए तैयार हो गये। केकय-नरेश ने भरत को आशीर्वाद दिया तथा अयोध्या का कुशल-समाचार भेजने को कहा, साथ ही बहुत धन तथा सामान भी भरत के साथ कर दिया। दूत सीधे मार्ग से गये थे परतु भरत के साथ सेना थी, अत उसे मार्ग बदलना पड़ा।

सुदामा पर्वत के पास से आगे बढकर ह्लादिनी नदी लांघकर शत्रुघ्न सहित भरत ने पश्चिमाभिमुख शतद्रु (सतलुज) पार की। शल्यकर्षण देश मे होते हुए शिलावह नदी पार करते हुए, चैत्ररथ वन मे पहुच कर, गगा की छोटी विशेष धारा तथा सरस्वती के सगम पर होते हुए, भरत वीरमत्स्य देश मे पहुचे। कुलिंगा नदी पार कर, वे यमुना पर आये। यहा उन्होंने सेना के विश्राम की व्यवस्था की। प्राग्वट नगर मे गगापार कर बढते-बढते वे उज्जिहाना नगरी मे आये। यहा से सेना को धीरे-धीरे पीछे आने को कहकर भरत, रथ मे तेजी से आगे बढे। एकसाला नगर मे स्थाणुमती नदी पार कर विनत ग्राम के पास गोमती पार की। सालवन नामक वन मे घोडो को विश्राम देकर रात मे भरत चल पडे तथा अरुणोदय तक अयोध्यापुरी पहुचे।

अयोध्या का सूना वातावरण देखकर भरत के मन में शंका पैदा हुई और वे मन-ही-मन खिन्न हो गये। उन्होंने सारथी से कहा कि अयोध्यापुरी वीरान लग रही है। राजा के नाश के सब लक्षण विद्यमान दिखाई दे रहे हैं। घरों में कई दिनों से झाड़ू भी नहीं लगी है। इस कारण घर श्रीहीन दिखाई दे रहे हैं। देवमन्दिर फूलों से नहीं भरे हैं। यहां मनुष्यों का आवागमन भी नहीं दीखता। यज्ञ-शालाएं धूमहीन हैं। फूलमालाओं के बाजार में बिकने वाली वस्तुएं ही दिखाई नहीं देतीं। बनियों की दुकानों पर भी उदासी दिखाई देती है। यहां तक कि देवालयों पर निवास करने वाले, पशु-पक्षी भी दीन तथा म्लान दिखाई दे रहे हैं। नगर के सभी स्त्री-पुरुष मलीन मुख लगते हैं। इस प्रकार अयोध्या नगरी की दुर्दशा देखकर भरत आगे कहते हैं कि मेरा दीनतारहित स्वभाव भी स्थिति भ्रष्ट हो रहा है। क्लान्त हृदय से भरत ने राजा दशरथ के भवन में प्रवेश किया।

भवन में राजा दशरथ को न पाकर वे अपनी मां के भवन में गये। दूर देश को गये हुए पुत्र को लौटता हुआ देखकर कैकेयी हर्ष में प्रफुल्लित हो गयी। अपना स्वर्ण-मय आसन छोड़कर कैकेयी उछल पड़ी। परन्तु भरत को गृह पर भी श्रीहीन दिखाई दिया। उसने माता के चरणों में प्रणाम किया। कैकेयी ने भरत को छाती से लगा कर अपने मायके की कुशल पूछना प्रारम्भ किया।

किरण-१२

कैकेयी, भरत, कौशल्या

ननसाल का कुशल समाचार देते हुए भरत ने माता से महाराज दशरथ के बारे में कुशल पूछी। उसने कहा, "मैं उन्हीं से मिलने आया था पर आज वे इस महल में भी नहीं दिखते। महाराज के परिजन भी प्रसन्न नहीं है।" तब कैकेयी ने महाराज दशरथ को महात्मा, यशशील, तेजस्वी तथा सज्जनों के आश्रयदाता बताते हुए कहा कि "वे मर्त्यलोक के समस्त प्राणियों की अन्तिम गति को प्राप्त हुए हैं।" यह समाचार सुनते ही भरत पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। बार-बार अपनी भुजाओं को पृथ्वी पर पटक-पटक कर वे भीषण विलाप करने लगे। कैकेयी ने धीरज बंधाते हुए सांत्वना देना चाहा। भरत ने पूछा, "मेरे लौटने तक भी जीवित न रह सके, महाराज को ऐसा कौन-सा रोग हो गया था? अब तो राम ही मेरे पिता और बन्धु हैं। मैं उन्हीं का अनन्य दास हूं।" इस प्रकार कहते हुए, पिता जी ने अन्त में क्या बात कही, यह भरत ने मां से जानना चाहा। इस पर कैकेयी ने बताया कि महाराज 'हा राम! हा सीते!' कहते हुए यह लोक छोड़कर चले गये।

इस पर भरत का स्वाभाविक प्रश्न था कि फिर राम कहां गये? तब कैकेयी ने बताया कि पिता की वचनबद्धता के कारण उन्हें वनवास में जाना पड़ा। भरत

ने मन मे शकित होकर मा से प्रश्न किया कि क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन हड़प लिया अथवा किसी निरपराध या निर्धन आदमी की हत्या की या किसी पर-स्त्री को भगाया ? इस पर कैकेयी ने भरत को आश्वासन देते हुए कहा, "राम किसी परस्त्री की ओर देख भी नही सकते।"

"फिर प्रथम दो बातो का प्रश्न ही कहा उठता है ? राम सत्य-प्रतिज्ञ हैं। मेरे प्रथम वरदान स्वरूप वे वन मे गये है। मैंने तुम्हारे पिता से दो वर प्राप्त किये थे। दूसरे वर के अनुसार महाराज दशरथ ने यह राज्य तुम्हें ही दिया है, अत तुम इसे सुखपूर्वक सभालो।" अपने कारण राम के वनगमन की बात सुनते ही भरत व्याकुल हो गये। राम के वनगमन से कौशल्या, दशरथ तथा अन्य अनेक को कितनी पीड़ा हुई होगी, इसका विचार कर कष्ट होने लगा। उसका वर्णन करते हुए क्रुद्ध भरत माता कैकेयी को धिक्कारने लगे।

उन्होंने मा से स्पष्ट कहा, "राम तथा लक्ष्मण के बिना अयोध्या का राज्य मैं किस शक्ति के आधार पर चलाऊंगा ? यह महा धुरधर महाराज दशरथ का सिंहासन है। मैं इसे कैसे धारण कर सकूगा ? और यदि मुझमे शक्ति हो भी, तो पापवश केवल पुत्र-स्वार्थ के लिए राज्य चाहने वाली तुम्हारी कामना मैं कभी पूरी नही होने दूगा।" कैकेयी को उत्तम चरित्र से गिरी हुई तथा पापिनी बताते हुए भरत ने कहा कि "यदि राम तुझे मां के समान प्यार न करते तो मैं तेरा त्याग कर देता। कैकय-राज की पुत्री होकर भी तुझे राजधर्म का किंचित ज्ञान नही। तेरा विचार भी पापपूर्ण है। उसे मैं कभी पूरा नही होने दूगा।" राम ने सहज मे वनवास स्वीकार कर, आवश्यक नैतिक मान्यताओ की दृष्टि से रामराज्य का शिलान्यास किया था। भरत ने दुष्ट योजना को सफल न होने देते हुए नि.स्पृह व्यवहार से रामराज्य की नीव भरनी शुरू की।

भरत का रोष शनै -शनै बढता आ रहा रहा था। क्रूरहृदया कैकेयी से उसने कहा, "तू राज्य से भ्रष्ट है। धर्म का तूने त्याग किया है। तू महाराज के लिए रोना मत, क्योकि तू पत्नी-धर्म से गिर चुकी है। भगवान करे तुझे नरक मिले। तेरे कारण पूज्य पिता की मृत्यु और श्रीराम का वनगमन होने से मैं भी अपयश का भागी बना हू। तू मा के रूप मे मानो मेरी शत्रु बनी है। तेरे कारण माता कौशल्या तथा सुमित्रा भारी दुख मे पड गई है। अन्य माताए भी विधवा होने का दुख भोग रही है। सारे ससार मे तुम्हारे कारण मैं अप्रिय हो गया हू, अत मैं अभी जाऊगा और श्रीराम को लौटाकर लाऊगा। राज्य वे ही करेंगे और मैं उनका दास बनकर रहूगा। राम जब अयोध्या आयेंगे तभी मेरा कलक कुछ दूर होगा।" ऐसा कहते-कहते रोष तथा व्याकुलता से भरत भूमि पर गिर पडे। उनके आभूषण बिखर गये और उन्हे मूर्च्छा आ गई।

इसी बीच मत्री भी वहा आ गये। होश मे आने पर मंत्रियो के बीच उदास

बैठी हुई मा को देखकर भरत ने कहा, "मन्त्रीगण, मैं राज्य नहीं चाहता था। न मैंने कभी मा से राज्य की बात की थी। राम के निर्वासन का मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है। मैं दूरस्थ देश मे था।" ऐसा कहते हुए भरत जोर-जोर से कैकेयी को कोसने लगे। सुमित्रा व कौशल्या ने भरत से मिलने की इच्छा प्रकट की। भरत शत्रुघ्न ने दूर से आती हुई व्याकुल तथा दीन माताओं को देखा। वे दोनो माताओ से मिलने के लिए आगे बढे। तब तक कौशल्या अचेत होकर भूमि पर गिर पडी। वे दोनो दौड गये और जाकर मा को सभाला। सचेत होने पर वे उनकी गोद मे बैठ गये। कौशल्या के दुःख का आवेग वैसा ही था। अत उसने भरत को उपालभ देते हुए बोलना शुरू किया तो निरपराध भरत को बहुत पीडा हुई। वे कौशल्या के चरणो म गिर पडे और अचेत हो गये।

सचेत होने पर भरत ने माता कौशल्या से अपने निरपराध होने की बात कही कैकेयी की अनेक शब्दो मे निन्दा करते हुए भरत ने कहा, "साधु पुरुषो मे श्रेष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम को वन मे भेजने वालो का अत्यन्त बुरा हो। इतना बडा पाप और अन्य नही हो सकता। जिसकी सलाह से राम को वन मे जाना पडा हो, उसे अनेक प्रकार की पीडा हो।" भरत की भावुकता, श्रीराम के प्रति उनकी भक्ति, श्रीराम के वनगमन मे हुई पीडा इसका हृदय-विदारक वर्णन वाल्मीकि ने बहुत सुदर शब्दो में किया है। अन्य कोई भी उत्तम कुल वाला पुत्र अपनी निर्दय मा को इससे अधिक कठोर, परन्तु मर्यादापूर्ण शब्दो मे, दोष नही द सकता।

भरत ने अनेक विधि शपथ खाकर मा कौशल्या को सात्वना देने का प्रयास किया। कौशल्या को विश्वास हो गया कि भरत निष्पाप है, उसकी बुद्धि धर्म से विचलित नहीं हुई। माता कौशल्या ने शोक सतप्त भरत को गोद मे खीच लिया तथा स्वय भरत के साथ फूट-फूटकर रोने लगी। भरत बार-बार अचेत हो जाते।

इस प्रकार शोक करते-करते ही दोनो की रात बीत गई। प्रात होते ही कुल-पुरोहित राजगुरु वसिष्ठ वहा आ पहुचे भरत द्वारा गुरु वसिष्ठ को साष्टाग प्रणाम करने पर उन्होने समय के अनुसार सभी को धीरज बधाते हुए, आगे की सुधि लेने को कहा। विशेष कर भरत को सबोधित करते हुए महर्षि वसिष्ठ ने कहा, "दशरथनदन! तुम्हारा कल्याण हो। अब अधिक शोक करने से स्थिति मे परिवर्तन आने वाला नही है, अत कर्तव्य पर ध्यान दो। महाराज दशरथ का देह १५ दिन से तेल के कडाह मे पडा है। इसलिए महाराज के यौग्य दाह-सस्कार का शीघ्र प्रबन्ध करो।" भरत ने गुरु वसिष्ठ की आज्ञानुसार मत्रियो को पूज्य पिताजी के दाह-सस्कार के प्रबन्ध के सबध मे आवश्यक सूचनाए दी। तेल मे पडे रहने से महाराज का मुख पीला पड गया था। फिर भी वे मरे हैं, ऐसा नहीं लगता था। मानो वे सो रहे हो, ऐसी ही उनकी मुख-कान्ति शेष थी।

शव को नहला-धुलाकर विमान पर रखा गया। उसे देखकर भरत और भी अधिक विलाप करने लगे। पुनः वसिष्ठ ने उन्हे कर्त्तव्य का स्मरण दिलाया। तत्पश्चात् महाराज के शव को पालकी मे रखकर श्मशान-भूमि की ओर ले जाया गया। मार्ग मे शव पर बहुत सा द्रव्य लुटाया जा रहा था। श्मशान भूमि मे चन्दन सहित अनेक सुगन्धित द्रव्यो की चिता तैयार करायी गयी। वैदिक विधिविधान के पश्चात् अग्नि दी गई। तब तक कौशल्या सहित रानिया आ गई थी। उन लोगों ने चिता की परिक्रमा की। चारो ओर करुण-क्रदन हो रहा था। उस स्थिति में सब लोग सरयू के तट पर गये तथा भरत, मत्री एवं पुरोहितो ने महाराज को जलाजलि अर्पित की।

महाराज दशरथ के श्राद्ध के निमित्त अपरिमित दान दिया गया। तीसरे दिन अस्थि-सचय के लिए भरत, शत्रुघ्न श्मशान भूमि पर गये। वहा उनका हृदय पुन. भर आया। वे भीषण विलाप करने लगे। गुरु वसिष्ठ साथ ही थे। उन्होंने तथा सुमत्र ने दोनो को समझाया। वसिष्ठ ने कहा, "भरत, अस्थि-संचय के कार्य मे देर न करो। भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जन्म-मृत्यु के द्वद्व सभी प्राणियों को समान रूप से व्याप्त होते हैं। इन्हे कोई रोक नही सकता, अत. अब शोक न करो। दूसरी ओर सुमत्र ने शत्रुघ्न को शान्त किया। अत्यन्त दुखी हृदय से दोनो ने शेष क्रियाए पूर्ण की और भवन को लौट आये।

भरत अपने मन का दुख एव रोष शत्रुघ्न से प्रकट कर रहे थे। वे कह रहे थे कि लक्ष्मण को चाहिए था कि पिताजी को बन्दी बनाकर, राम को संकट-मुक्त करते, क्योकि पिताजी पत्नी के वश मे होकर न्याय की उपेक्षा कर रहे थे। उसी समय आभूषणो से लदी कुब्जा दासी मंथरा वहा आई। वही सारी बुराइयो की जड मानी गई थी। अतः शत्रुघ्न ने उसे घसीटना शुरू किया। तब भरत ने उसे कहा कि स्त्रियां सभी के लिए अवध्य होती हैं, इसे क्षमा करो। यदि श्रीराम इसके मरने के समाचार को जानेंगे तो हमसे बात भी नहीं करेंगे। यह सुनकर शत्रुघ्न ने मथरा को छोड दिया।

चौदहवें दिन सभी राजकर्मचारी एव मंत्री प्रातःकाल भरत से मिलने आये। उनका आग्रह था कि महाराज इहलोक छोड गये तथा श्रीराम बन को गये हैं, अयोध्या राजा हीन है, अत. वे ही राज्य सभालें वे सब लोग राज्याभिषेक की सभी सामग्री लेकर वहा आये थे। भरत से अपेक्षा थी कि वे अधिक देर न करें। भरत ने अपना विचार सबको समझाया। भरत ने कहा, "रघुकुल मे ज्येष्ठ पुत्र को ही गद्दी लेनी चाहिए अतः हम लोग चलकर राम को ही वापस लायेंगे। अभिषेक की यह सामग्री हम लोगों के आगे-आगे चले। श्रीराम ही यहा के राजा होंगे और मै वन मे निवास करूंगा।" भरत की बातें सुनकर सभी लोग आश्चर्य एव प्रसन्नता प्रकट करने लगे। रामराज्य की नीव पूर्णत. भर चुकी थी।

अयोध्या से शृंगवेरपुर तक राजमार्ग तैयार किया गया। सभी लोग आनन्द एवं उल्लास में थे। मार्ग में लताएं, वृक्ष, झाड़ियां हटाये गये। आवश्यक स्थानों पर पुल बांधे गये। आसपास के स्रोत मिला कर छोटे जलाशयों को बड़ा किया गया, क्योंकि विशाल सेना जाने वाली थी। कहीं अस्थायी कुएं खोदे गये। भूमि सम बनाकर उस पर चूना, सुर्खी आदि डालकर कूट पीसकर पक्की सड़कें बनाई गई। इस कार्य में भूमि विशेषज्ञ (Surveyors) सूत्रकर्म विशारद, यंत्रकोविद पुरुष (Engineers) बड़ी संख्या में लगाये गये।

अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः।
स्वकर्माभिरताः शूराः खनका यन्त्रकास्तथा॥
कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः।
तथा वर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः॥ (२।८०।१-२)

मार्ग में सेना के लिए छावनियां खड़ी की गई थीं। राज-परिवार वालों की व्यवस्था विशेष स्थानों पर थी। सभी पर पताकाएं लहरा रही थीं। इस प्रकार अग्रवाहिनी (Advance Parties of Sappers and Minors) ने अपना कार्य पूरा किया था।

प्रातःकाल मंगल-वाद्य सुनकर भरत को दुःख हुआ। "मैं राजा नहीं हूं अतः वाद्य बन्द करो" यह भरत ने कहला भेजा और पुनः राम का स्मरण कर विलाप करने लगे। तब राजधर्मविद् वसिष्ठ ने राजसभा में भरत, शत्रुघ्न, मन्त्रियों इत्यादि को निमन्त्रित किया। शीघ्र ही सभी एकत्र हुए। तब वसिष्ठ ने भरत से कहा, 'महाराज दशरथ ने यह धन-धान्य से समृद्ध भूमि तुम्हें सौंपी है। श्रीराम ने पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया, अतः पिता व भ्राता के अनुसार तुम अपना अभिषेक करा लो।' वसिष्ठजी की बात सुनकर भरत शोक में डूब गये। मन-ही-मन उन्होंने राम का स्मरण किया और कहा, "महाराज दशरथ का कोई पुत्र बड़े भाई के राज्य का अपहरण नहीं करेगा। यह राज्य और मैं दोनों ही राम के हैं। आप कृपया धर्मसम्मत बात कहें। श्रीराम का राज्य लेकर मैं पापाचरण करूं तो इक्ष्वाकु-कुल कलंकित होगा। मेरी माता का पाप मुझे पसन्द नहीं। मैं यहां से श्रीराम को प्रणाम करता हूं। मैं उन्हीं का अनुसरण करूंगा। श्रीराम तो पृथ्वी के ही नहीं, तीनों लोकों के राजा बनने योग्य हैं। मैं उन्हें वन से लौटा लाऊंगा। यदि वे न लौटे तो मैं लक्ष्मण के समान वन में ही निवास करूंगा। मेरे साथ जो चलना चाहे चल सकता है।"

भरत के ये धर्मयुक्त वचन सुनकर सभी हर्ष के आंसू बहाने लगे। भरत की आज्ञा से सुमन्त्र ने सेनापतियों सहित प्रमुख व्यक्तियों एवं सुहृदों को सूचना दी। सभी वर्ग के लोग राम को वन से लौटाने के लिए भरत-यात्रा में चौगुने उत्साह से शामिल हुए। राजमार्ग तो ठीक हो ही चुका था। भरत ने सुमन्त्र से कहा कि सारे

संसार का कल्याण करने के लिए वनवासी राम को प्रसन्न कर हम यहां लेते आवें यही सब की शुभ कामना हो।

किरण-१३

भरत की वन-यात्रा

प्रात.काल सूर्योदय होने पर उत्तम रथ पर आरूढ हो भरत ने यात्रा के लिए प्रस्थान किया। उसके आगे मत्री पुरोहित आदि रथ पर सवार थे, उनके पीछे हजारो रथ, घुडसवार चले थे। इस यात्रा मे कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी भी श्रीराम को लौटाने के लिए उत्साह से सम्मिलित थी। सभी वर्गों के लोगों का उत्साह देखते ही बनता था। नगर के सम्मानित पुरुष, व्यापारी और विचारवान लोगो के साथ ही मणिकार, कुभकार, सूत्रकर्मविशेषज्ञ, शस्त्रोपजीवी, दन्तकार, सुधाकार, सुवर्णकार, गन्धोपजीवी, वैद्य, रजक इत्यादि का वह विशाल समूह देखते ही बनता था। वे विविध यानो द्वारा भरत का अनुसरण कर रहे थे। इस प्रकार बहुत देर तक चलने के बाद शृगवेरपुर पहुच कर सन्ध्या का समय देखकर भरत ने सेना को वही डेरा डालने को कहा। भरत की इच्छा थी कि प्रात गंगाजी पर स्वर्गीय महाराज को श्रद्धाजलि देकर आगे बढा जाए।

भरत की इतनी बडी सेना को देखकर गुह के मन मे शका पैदा हुई। भरत की सेना उसके राज्य की सीमा में ठहरी थी। गुह को लगा कि यह सेना हम लोगों को पाशबद्ध कर मार डालेगी और बाद मे राम को भी मारेगी। तभी भरत अकटक राज्य कर सकेगा। इसलिए उसने अपनी सेना के मुखियों को सतर्क रहने को कहा और नावों पर मल्लाह-सैनिको द्वारा मोर्चाबन्दी करायी। स्वयं गुह मिश्री फल आदि थालो मे सजाकर भरत की अगवानी तथा भेंट करने गया। वहा पहुच कर गुह ने भरत को अपना परिचय दिया तथा फल आदि भेंट किये। साथ ही सेना-सहित निषादो का आतिथ्य स्वीकार करने की भरत से विनती की। इस बीच सुमन्त्र ने भरत को गुह का परिचय करा दिया था।

भरत ने उसे स्नेहपूर्ण शब्दो मे बताया, "निषादराज! तुम बडे भाई राम के सखा हो यह आनन्द की बात है, पर इतनी बडी सेना का सत्कार करना कठिन होगा। तुम्हारा यह मनोरथ ऊचा है तथा तुम्हारी श्रद्धा से ही हम सन्तुष्ट हैं। तुम्हारा स्नेह बना रहे। केवल आप हमे भरद्वाज मुनि के आश्रम का मार्ग बताने की कृपा करें।" निषादराज ने पूर्ण सहायता का वचन देकर बिना लुकाव-छुपाव की सरल वनवासी वाणी मे भरत को अपने मन की शंका बताई। भरत के सरल मन को दु:ख हुआ। भरत ने कहा, "बडे भाई राम मेरे पिता के समान हैं। मैं उन्हे वन से लौटाने जा रहा हू। इस पर निषादराज हर्षित हुआ। उसने भरत

की प्रशंसा की और कहा, "आप धन्य हैं। बिना प्रयास हाथ में आया राज्य त्यागकर आप वन में आये हैं। सारे भूमण्डल में ऐसा महात्मा ढूँढने से नहीं मिलेगा।"

गुह के व्यवहार से भरत प्रसन्न हुए। सेना को विश्राम की आशा देकर वे भी सोने के लिए चले गये पर राम के कष्टों का ध्यान करते-करते भरत को नींद कहाँ ? वह शोकाग्नि से संतप्त हो रहे थे। गुह ने उन्हें आश्वासन देकर शान्त करने का प्रयास किया। साथ ही गुह ने लक्ष्मण का सद्भाव एवं विलाप भी भरत को सुनाया। यह प्रसंग हम पहले पढ़ चुके हैं। गुह ने जब भरत को जटाधारी राम का वन की ओर प्रस्थान का प्रसंग सुनाया तो वे अत्यधिक शोकमग्न हुए तथा अचेत हो गए। महान् बलशाली होने के बाद भी भरत हृदय के कोमल थे। दीखने में सुन्दर तरुण लगते थे पर विवेक में वृद्धों से बढ़कर थे। फिर भी वे अधिक समय धैर्य धारण न कर सके। श्रीराम ने जटा धारण कर ली है, अतः शायद ही वे वापस लौटें, यही उनकी चिन्ता का सबसे बड़ा कारण था।

भरत की अचेत अवस्था देखकर शत्रुघ्न भी सुध-बुध खो बैठा। वह भी जोर-जोर से रोने लगा। कौशल्या सहित सब माताएं वहाँ आईं। वे भी शोक करने लगीं। कौशल्या को लगा कि शायद श्रीराम के बारे में कोई खराब समाचार गुह ने दिया है, अतः वे सर्वाधिक व्याकुल हो गयीं। इस कोलाहल से भरत सचेत हुए। कौशल्या ने भरत से अपनी शंका पूछी। भरत के उत्तर से उनका कुछ समाधान हुआ। फिर भरत ने गुह से श्रीराम के ठहरने का सोने का स्थान आदि जानना चाहा। गुह द्वारा जानकारी देने पर तथा राम की कुशों से बनी शय्या देखकर भरत को और भी भीषण दुख हुआ। राम का अयोध्या का जीवन और वनवासी जीवन दोनों की तुलना भरत को कष्ट देने लगी। उन्हें स्वयं पर भी विश्वास नहीं हो रहा था। उन्हें लग रहा था मानो यह सब स्वप्न है। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताने वाले राम को इतना कष्ट कोई नहीं दे सकता था। फिर सीता की स्थिति का स्मरण कर तो वे और भी अधिक त्रस्त हो रहे थे।

दूसरी ओर लक्ष्मण और सीता का जीवन वे कृतार्थ समझ रहे थे, क्योंकि वे राम के साथ थे। उनकी धारणा थी कि राजाहीन अयोध्या की रक्षा भी राम के बाहु-बल से ही हो रही थी। राम की कल्पना मात्र से शत्रु अयोध्या को जीतने का विचार मन में भी नहीं ला रहे होंगे, ऐसी भरत को श्रद्धा थी। इन्हीं विचारों की मालिका से उन्हें स्वकर्त्तव्य का स्मरण हो आया। उन्होंने संकल्प किया कि वे भी भूमि पर शयन करेंगे। कुश की शय्या बनायेंगे जटा रखवायेंगे तथा वल्कल धारण करेंगे। यदि किसी का वन जाना आवश्यक ही हो, तो वे स्वयं शत्रुघ्न के साथ वन जायेंगे और श्रीराम अयोध्या का राज संभालेंगे। सभी ने वह रात्रि शृंगवेरपुर में ही बिताई।

प्रात. भरत ने शत्रुघ्न को जगाया। शत्रुघ्न ने कहा, "श्रीराम के सम्बन्ध मे चिन्तन के कारण मुझे भी आपके समान नीद नही आयी। मैं जाग ही रहा हू।" गुह के आने पर दोनो ने एक-दूसरे की कुशल पूछी और गगा पार करने की व्यवस्था मे लग गये। गुह की आज्ञा होते ही पाच सौ से अधिक नौकाए एकत्र हो गयी। इनके अतिरिक्त कुछ स्वस्तिक चिह्नांकित नौकाए भी थी जो विशेष काम मे आती थीं। उन पर बडी-बडी पताकाए फहरा रही थीं। उन्ही मे से एक कल्याणमयी नौका लेकर गुह स्वय भी आया। गुह की नाव पर ही पहले पुरोहित एव गुरु वसिष्ठ आदि बैठे। तत्पश्चात् माताओ सहित भरत व शत्रुघ्न भी सवार हुए। शेष सैनिक, सामान, वाहन आदि अन्य नावो पर थे। इस प्रकार निषादो की हार्दिक सेवा के साथ भरत ने सेना-सहित गगा पार की। गगापार करने पर सेना को प्रयाग-वन मे ठहरा कर ऋत्विजो के साथ भरत ऋषि भरद्वाज के आश्रम पर गये। आश्रम के पास जाने पर अस्त्र-शस्त्र तथा राजोचित वस्त्र भरत ने उतार दिये और आश्रमो की रीति के अनुसार दो रेशमी वस्त्र पहन् कर गुरु वसिष्ठ को आगे कर आश्रम की ओर बढे।

मुनि भरद्वाज ने गुरु वसिष्ठ को अर्घ्य प्रदान किया तथा गले मिले। भरत ने मुनि के चरण छूकर प्रणाम किया। व्यक्तिशः तथा राज्य, सेना आदि का कुशल-क्षेम पूछने पर पेड-पत्ते, मृग-पक्षी आदि का भी भरद्वाज ने भरत से कुशलक्षेम पूछा। इस देश की सस्कृति मे ये सभी मानवी परिवार के अग माने जाते रहे तथा इनकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी राजा का ही होता था। कुशलक्षेम पूछने के बाद भरद्वाज मुनि ने भरत से कहा, "सौम्य भरत ! तुम राज्य कर रहे हो, अयोध्या छोड़कर यहा क्यो आये ? मुझे कुछ शका हो रही है। अपने राज्य-सचालन मे बाधा समझकर तुम श्रीराम का कुछ अहित तो नही करना चाहते ?"

भरत की आखें अश्रुओ से भर आईं। उन्होने कहा, "आप जैसे श्रेष्ठ मुनि भी मुझ पर शका करेंगे तो मैं कही का नही रहूगा। श्रीराम के वनगमन मे मेरा कोई अपराध नही है। अत. आप ऐसी कठोर बातें मुझ से न कहें। माता की बात से असन्तुष्ट होकर मैं श्रीराम की चरण वन्दना करने तथा उन्हें लौटाने के लिए वन को जा रहा हू। इसलिए आप ही मुझे उनका पता बतायें। इस पर गुरु वसिष्ठ ने भरत की बात का समर्थन किया। मुनि भरद्वाज ने प्रसन्न होकर भरत की भूरि-भूरि प्रशसा की। साथ ही कहा कि "तुम्हारे मन के भाव मैं जानता था। पर वे और दृढ हों तथा तुम्हारी कीर्ति का विस्तार हो, इसलिए मैंने तुमसे यह प्रश्न किया। इस समय सीता सहित श्रीराम चित्रकूट पर हैं। और तुम मत्रियो के साथ यही रहो और कल प्रात: चित्रकूट के लिए प्रस्थान करो।"

सेना की विशालता का स्मरण कर भरत ने कहा, "आप स्वागत मे यथासभव अर्घ्य एव फल-मूल आदि दे चुके है, अतः औपचारिकता की आवश्यकता नही। इस

पर भरद्वाज ने पूरी सेना को निमंत्रित किया। परिवार एवं सेना सहित भरद्वाज मुनि का आतिथ्य स्वीकार कर, भरत ने दूसरे दिन प्रातः चित्रकूट प्रस्थान के लिए आज्ञा मांगी। भरद्वाज मुनि ने चित्रकूट तक जाने का मार्ग एवं चित्रकूट में श्रीराम के निवास के स्थान का विशद वर्णन किया। तदुपरान्त भरत ने अपने पारिवारिकों का मुनि से परिचय करवाया। परिचय करवाते समय कैकेयी की कठोर शब्दों मे निन्दा भी की। इस पर भरद्वाज मुनि ने कहा कि कैकेयी पर दोष-दृष्टि न करो। श्रीराम का वनवास भविष्य में त्रिलोकी (देवलोक, मृत्युलोक, पाताल लोक) के लिए कल्याणकारी होगा।

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरतस्त्वया
राम प्रव्राजनं ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति ॥ (२।९२।३०)

मुनि भरद्वाज से चित्रकूट का मार्ग समझकर भरत ने सेना को प्रस्थान की आज्ञा दी। वे स्वयं मंत्री, पुरोहितो, माताओं सहित भिन्न-भिन्न रथों में चल पड़े। यात्रा लम्बी थी। सेना के भिन्न-भिन्न भाग प्रतियोगिता के रूप में गतिशील थे। लगातार चलने के कारण उनके वाहन थकान सी अनुभव करने लगे। भरत ने मंत्रियों से कहा भरद्वाज मुनि द्वारा बताया हुआ चित्रकूट पर्वत का प्रदेश निकट आया ऐसा लगता है। अतः इस पर्वत के चारों ओर वन में श्रीराम का निवास खोज निकालने के लिए कुछ चुने हुए सैनिकों को आज्ञा दी जाये। थोड़ी देर में उन सैनिकों ने आकर धुआं निकलते आश्रम की सूचना दी। भरत ने सभी को वही रुकने को कहा और वे स्वयं शत्रुघ्न के साथ आगे बढ़े।

उस समय श्रीराम, सीताजी के साथ चित्रकूट के आस-पास का और विशेषकर निकट में बहने वाली मन्दाकिनी नदी का मनोरम दृश्य देख रहे थे। भरत की चतुरंगिणी सेना के निकट आने से, धूल एवं कोलाहल भी निकट आया। अतः वन के पशु-पक्षी भयभीत होकर भागने लगे। यह देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण को कारण जानने को कहा। लक्ष्मण ने तत्काल निकट के वृक्ष पर चढ़कर देखा तो उसे एक विशाल सेना पूर्व दिशा की ओर से आती हुई दिखाई दी। उसने श्रीराम से आग बुझाने को तथा सीता को गुफा में जाकर बैठने को कहा। साथ ही श्रीराम को धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर सावधान होने की सूचना दी। इस पर राम ने लक्ष्मण को सेना किसकी है, यह पहचानने की सलाह दी।

सेना के बीचोबीच ध्वज पर कोविदार वृक्ष का चिह्न वाला भरत का रथ देखने से लक्ष्मण क्रोध को संयत न कर सका। वह वृक्ष पर से ही तरह-तरह की घोषणाएं करने लगा। भरत को उसके मंत्रियों सहित मारने के लिए वह कृतसंकल्प था। इस संकल्पपूर्ति से वह धनुष और बाण के ऋण से मुक्त होने वाला था। क्रोधावेश के कारण लक्ष्मण विवेक खो बैठा था। अतः राम ने कहा, "लक्ष्मण! जब भरत स्वयं आ रहा है तो ढाल तलवार से क्या काम?

किमत्र धनुषा कार्यमसिनावा सचर्मणा ।
महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते ॥ (२।९७।२)

पिता के सत्य की रक्षा की प्रतिज्ञा करने के बाद भी मैं यदि भरत को मारकर राज्य भी प्राप्त कर लूं तो उस राज्य का क्या करना? इससे समस्त संसार में रघुवंश की निन्दा होगी। लक्ष्मण धर्म, अर्थ, काम या पृथ्वी का राज्य भी मैं तुम्ही लोगो के लिए चाहता हूं।

धर्ममर्थं च कामं च पृथ्वीं चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते ।। (२।९७।५)

भाइयो के कुल के लिए ही मुझे राज्य की इच्छा है, यह मैं शत्रुघ्न की शपथ लेकर कहता हूं। समुद्र से वेष्टित पृथ्वी जीतना मेरे लिए कठिन नही। भरत शत्रुघ्न या तुमको छोड कर मिलने वाला सुख अग्निदेव भस्म करें।"

भावविभोर होकर राम कहते ही जा रहे थे, "लक्ष्मण! पुरुष प्रवर भरत बहुत बड़ा भ्रातृ-भक्त है। वह मुझे प्राणो से भी प्रिय है। माता कैकेयी पर कुपित होकर मुझे राज्य देने के लिए आ रहा है। उसका मिलने आना समयोचित है तथा वह मिलने योग्य है। हम लोगो का अहित करने वाला विचार तो उसके मन मे भी नही आ सकता। तुम्हें भरत से भय करने का कोई कारण नही। उसने ऐसा कोई व्यवहार पहले भी नही किया है। भरत के लिए की जाने वाली अप्रिय बात मुझ पर लागू होती है। यदि तुम राज्य के लिए कठोर बातें कर रहे हो तो इसका ध्यान रखो कि मेरे सुझाते ही भरत तुमको राज्य देने को तैयार हो जावेगा।"

राम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण लज्जित हो गये। उन्हे लगने लगा कि शायद स्वयं राजा दशरथ ही राम को लौटाने सेना लेकर आ रहे हो। राम ने लक्ष्मण की इस बात का समर्थन किया। सेना की ओर देखते हुए लक्ष्मण ने कहा, "हाथी, घोडे तो वही हैं पर महाराज दशरथ का विश्वप्रसिद्ध श्रेष्ठ छत्र रथ पर नही है।" इस पर लक्ष्मण को पेड से नीचे उतर आने को कहा।

किरण-१४

भरत-मिलाप

चित्रकूट के आस-पास किसी को कष्ट न पहुचाते हुए अयोध्या की सेना ने भरत के आदेशानुसार पडाव डाल दिया। शत्रुघ्न, गुह आदि एक ओर और भरत, पुरोहित आदि दूसरी ओर, पैदल ही श्रीराम का आश्रम खोजने निकले। भरत श्रीराम के दर्शन को व्याकुल थे। श्रीराम की चरणरज पाते ही उन्हे शांति अभिप्रेत थी। पूर्वजो के शासन पर राम को प्रतिष्ठित करने मे ही उन्हे पूर्ण शांति मिलने वाली थी। उन्हे अनुभव हो रहा था कि राम या सीता ही नही, चित्रकूट पर्वत भी

श्री राम के सान्निध्य में कृतार्थ हो गया। चलते-चलते वे एक ऊँचे साल-वृक्ष पर चढ़ गये। यहीं से उन्हें श्रीराम की पर्णकुटी की अग्नि दिखाई दी जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए। अब तक सभी एकत्र हो गये थे।

गुरु वसिष्ठ को माताओं के साथ आने के लिए कह कर, भरत वेग से आगे बढ़ गये। सुमन्त्र तथा शत्रुघ्न भी साथ हो लिये। आश्रम पर जाने-आने वाले मार्ग पर वृक्षों पर, मार्गबोधक चिह्न भी लटकाये गये थे। पर्णकुटी के पास सूखे काष्ठ, कण्डे आदि हवन के लिए एकत्र किये गये दिखाई दे रहे थे। श्रीराम की पर्णशाला, साल-ताल आदि वृक्षों के पत्तों एवं काष्ठ से बनी थी। उसमें अनेक धनुष, तरकश, खड्ग आदि भी रखे थे। गोह के चमड़े के बने दस्ताने भी थे। वह पर्णशाला होने पर भी शत्रुओं के लिए अगम एवं अजेय थी। उसमें एक हवनकुण्ड में अग्नि भी प्रज्वलित था। पास में अग्नि के समान कान्ति प्रसारित करने वाले श्रीराम भी भरत को दिखाई दिये। जटाएं व वल्कल वस्त्रधारी श्रीराम को देखकर भरत विह्वल हो गए तथा श्रीराम की ओर दौड़े। श्रीराम का भरत के कारण ही राज-सुख छोड़कर वनचर्या धारण करना पड़ रहा था, इसका भरत को अधिक दुःख था। वे जैसे-तैसे 'आर्य' शब्द कह सके और श्रीराम के चरणों तक पहुंचने के पूर्व ही गिर पड़े। शत्रुघ्न ने भी श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया। श्रीराम ने दोनों को उठाकर गले से लगा लिया।

तत्पश्चात् श्रीराम तथा लक्ष्मण, सुमन्त्र और गुह से मिले। चारों राजकुमारों को वन में देखकर वनवासी लोग हर्ष-मिश्रित शोकाश्रु बहाने लगे। श्रीराम को भरत अत्यन्त दीन तथा दुर्बल दिखाई दिये। श्रीराम ने उन्हें पास बिठा कर अयोध्या की कुशलक्षेम पूछी। महाराज दशरथ के सबंध में चिंताकुल होकर राम ने भरत से पूछा, "पिताजी के जीते जी तुम वन में नहीं आ सकते थे। अतः वे कहां हैं? कहीं शोकावेग में वे स्वर्गगामी तो नहीं हुए?" इसके अतिरिक्त अन्यान्य लोगों के नाम ले-लेकर श्रीराम ने कुशल पूछी। फिर राजा के करने योग्य काम भरत करता है या नहीं इस आशय के अनेक प्रश्न भी किये।[1]

राज्य के उत्तरदायित्व का स्मरण करा कर राम ने भरत से वल्कल धारण कर वन में आने का कारण पूछा। इस प्रश्न के उत्तर में भरत ने अपने शोक को दबाकर बोलना प्रारम्भ किया। पुत्रशोक के कारण पिता की मृत्यु का समाचार देकर, उसने इसका दोष कैकेयी पर लगाया। साथ ही यह भी कहा "इसीलिए कैकेयी राज्य-रूपी फल न पाकर विधवा हो गई, अतः अब आप मुझ दास पर कृपा करें तथा अपना राज्याभिषेक करायें। सभी माताएं एवं प्रजा आप को मनाने के लिए ही आई

१ राजनीति में रुचि रखने वालों के लिए अयोध्याकाण्ड का यह १००वां सर्ग पठनीय एवं मननीय है। इसमें छत्तीसवां श्लोक विशेष ध्यान देने योग्य है। उसमें गुप्तचर व्यवस्था का विस्तार से वर्णन है।

हैं। समस्त सचिवो के साथ, चरणों मे मस्तक रखकर मैं भी आपसे प्रार्थना कर रहा हू। मन्त्रिमण्डल का सम्मान पिताजी के समय भी किया जाता था। आशा है कि आप इनको प्रार्थना नहीं ठुकरायेंगे।"

भरत को समझाते हुए श्रीराम ने कहा, "राज्य ग्रहण करने के सम्बन्ध में पिता की आज्ञा का उल्लघन कहां तक उचित होगा? मुझे तुम मे थोडा सा भी दोष नजर नही आता। परन्तु तुम अज्ञानवश भी कैकेयी की निन्दा मत करो। पिता को सब तरह की आज्ञा देने का अधिकार रहता है। मुझे राज्य देना या वल्कल देकर वन मे भेजना, दोनो कामों मे वे समर्थ थे। धर्मात्माओ में श्रेष्ठ भरत मनुष्य की पिता मे जैसी पूज्य बुद्धि होती है, वैसी माता में भी होनी चाहिए। धर्मशील माता-पिता ने मुझे वन जाने की आज्ञा दी है। तब उसके विपरीत में कैसे जा सकता हू? अयोध्या का राज्य तुम्हें ही समालना चाहिए। वन मे रहना तुम्हारे लिए उचित नही। इसलिए लोकगुरु तथा धर्मात्मा महाराज का वचन ही प्रमाण है। उनका दिया हुआ राज्य तुम्हे भोगना चाहिए। मैं १४ वर्ष दण्डकारण्य मे रह कर ही राज्य का उपभोग करूगा। इस बात पर भरत ने ज्येष्ठ पुत्र होने से श्रीराम ही राज्य के सही अधिकारी हैं, इस प्रकार तर्क प्रस्तुत करते हुए पूज्य पिताजी को जलाजलि देने का स्मरण कराया।

भरत को प्रारभिक सात्वना देने पर श्रीराम को पिता की मृत्यु का समाचार अधिक कष्ट देने लगा। विचार-चक्र की गति के प्रभाव से वे अचेत से हो गये। चेतना आने पर वे महाराज दशरथ की बातो का स्मरण कर विलाप करने लगे। महाराज के जाने पर अयोध्या मे भी क्या रस रहा होगा यह उनके मन मे पहला प्रश्न रहा। मन के भाव प्रकट करते हुए राम कहने लगे, "मेरे शोक से पिताजी चले गये। मैं उनका दाह-सस्कार भी न कर सका। वनवास से अयोध्या लौटने के बाद मुझे अब कौन मार्गदर्शन करेगा? भरत, तुम ही भाग्यवान हो जो पिताजी का प्रेतकार्य पूरा कर सके।" इस प्रकार विलाप करते-करते श्रीराम ने लक्ष्मण को जलाजलि की तैयारी करने की आज्ञा दी।

श्रीराम की आज्ञानुसार लक्ष्मण, इगुदी के फल का आटा, चीर एव उत्तरीय ले आये। परिपाटी के अनुसार आगे सीता, पीछे लक्ष्मण, सब से पीछे राम मन्दाकिनी के घाट पर पहुचे तथा पूज्य पिताजी को जलाजलि दी। इंगुदी के आटे में बेर का आटा मिलाकर पिण्ड तैयार किये गये, और भाइयों के साथ मिलकर, श्रीराम ने पूज्य पिता को पिण्डदान किया। उस समय श्रीराम ने कहा, "हे राजशार्दूल महाराज दशरथ! हम लोगो का यही आहार है। आप भी इसी भोजन को स्वीकार करें, प्रसन्न हो। मनुष्य जो अन्न स्वय खाता है, वही उसके देवता को मिलता है।" यदन्नापुरुषो भवति तदन्ना तस्य देवता॥ (२।१०३।३०) पिण्डदान के बाद सभी लोग चित्रकूट पर्वत पर पर्णकुटी की ओर चले। वहा पहुचने पर

चारों भाई पुन. विलाप करने लगे । भाइयो के विलाप की आवाज सुनकर सैनिक एव नागरिक भी वहा पहुचे । उनमे से अनेक को श्रीराम ने छाती से लगाया तथा कुछ लोगो ने उनके चरणो मे प्रणाम किया ।

इस बीच महर्षि वसिष्ठ भी रानिया समेत वहा पहुचे । मार्ग मे कौशल्या ने पति के लिए श्रीराम द्वारा दिया हुआ इगुदी के आटे का पिण्ड देखा, उसे देखकर वह बहुत अधिक शोक करने लगी । उनका मुख आसुओ मे भीग गया । विशाल पृथ्वी के स्वामी महाराज दशरथ को दिया गया यह पिण्डदान किसी भी सवेदनशील व्यक्ति का हृदय पिघला देता । गुरु वसिष्ठ आगे-आगे चल रहे थे । श्रीराम ने उनके दोनो चरण पकड लिये । पीछे पीछे माताओ को आते देखा अत वे स्वय आगे बढे । श्रीराम ने बारी-बारी से माताओ के चरणों का स्पर्श किया । लक्ष्मण तथा सीता राम का अनुसरण कर रहे थे । सीता का मलिन मुख देखकर कौशल्या और भी अधिक शोक करने लगी ।

सध्या बीत चुकी थी । रात्रि का अधेरा गहरा हो रहा था । साथ ही शोक का प्रभाव भी बढ रहा था । सभी सुहृदयो की वह रात्रि शोक करते-करते ही बीत गयी । प्रात काल स्नान-सध्या के उपरान्त पुन सभी राम के निवास के पास आये । भरत अपनी बात पर अडा हुआ था । उसने श्रीराम से राज्य स्वीकार करने की पुन प्रार्थना की । भरत ने कहा, "पिता ने मा को सतुष्ट करने के लिए राज्य मुझे दिया है, पर अब मैं आपको सौंपता हू । पिता जी की वास्तविक इच्छा थी कि आप-द्वारा ही लोकरजन हो । वह पूरी न करने से पिताजी का उद्देश्य अधूरा रह जायेगा ।" भरत की तर्कसगत मनोनुकूल बात का अयोध्यावासी अनेक श्रेष्ठ पुरुषो ने भी अनुमोदन किया ।

इस पर राम ने कहा, "जीव ईश्वर के समान स्वतत्र नहीं होता । यहा अपनी इच्छा से कोई पुरुष कुछ नही कर सकता । काल (नियति) इस पुरुष को इधर-उधर खीचता रहता है । सग्रह का अन्त विनाश, लौकिक उन्नति का अन्त पतन, सयोग का अन्त वियोग तथा जीवन का अन्त मरण है । जैसे पके हुए फल का गिरना निश्चित है, वैसे जन्म लिये हुए को केवल मृत्यु का ही भय रहता है । जैसे बीती हुई रात नही लौटती और समुद्र से मिला नदी का जल नहीं लौटता, वैसे ही आयु के बीते हुए क्षण दोबारा नहीं आते । आयु निरन्तर क्षीण होती रहती है, अत मरे हुए का बार-बार शोक करना अच्छा नही । स्वय मृत्यु के मार्ग पर चलने वाला, उसी मार्ग पर जो अपने पूर्वज गये है, उनके लिए शोक क्या करे ? अपने पिता धर्मात्मा थे, अत वे स्वर्ग ही गये है । जराजीर्ण शरीर त्याग कर वे स्वर्ग गये अत वे शोक योग्य नही है । उनकी आज्ञानुसार तुम अयोध्या लौट कर राज्य करो और मैं भी उनकी आज्ञानुसार वन मे निवास करूगा ।"

श्रीराम के चुप हो जाने पर भरत ने कहा, "आप तो स्थितप्रज्ञ है । आप न दुख

में दु खी, न प्रिय बात मे हर्षित होते हैं। मरे हुए के समान आप ने जीते जी शरीर से सबंध तोड लिया है। राग-द्वेष रहित विवेकशील होने के कारण आपको सन्ताप क्यो होगा? पर मैं इस योग्य नही हू। मैं धर्म-बन्धन मे हू अन्यथा पिता की मृत्यु एवंआपके वनवास के लिए उत्तरदायी मा को मार डालता।"

भरत अपना हृदय खोल रहे थे। भरत ने आगे कहा, "मैं पूज्य पिताजी की निन्दा नही करना चाहता, परन्तु स्त्री को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने धर्म और अर्थ से हीन कार्य किया है, उसे आप उलट दें। पिता की भूल को सुधारने वाली सन्तान उत्तम सन्तान कहलाती है। आप उनके अनुचित कार्य को समर्थन न दें। उनका कार्य धर्म-सीमा से बाहर था, अत आप धर्मपालन करें। कैकेयी समेत समस्त राष्ट्र की रक्षा के लिए आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। यदि आप क्लेश साध्य धर्म का आचरण करना चाहते हैं, तो धर्मानुसार चारों वर्णों का पालन करते हुए क्लेश उठायें। वसिष्ठ सहित सभी प्रकृतिया (ऋत्विज, मंत्रीगण तथा सेनापति आदि) आप से यही आग्रह कर रहे है। आप मेरी मा का कलक पोंछ कर, पूज्य पिता को निन्दा से बचायें। इतने पर भी वन जाने का निश्चय दृढ हो, तो मैं भी आप के साथ चलूगा।"

भरत द्वारा की गयी अत्यन्त मर्यादापूर्ण, तर्कयुक्त, भावभीनी विनती सुनकर राम को हर्ष हुआ। भरत की श्रेष्ठता तथा सरलहृदयता को देखकर उनके आनन्द-अश्रु बह चले। परन्तु राम धर्मपालन के सम्बन्ध मे सदा कठोर होने के कारण वन जाने पर ही दृढ बने रहे। उनकी अद्भुत दृढ़ता देखकर पुरवासी तथा ज्येष्ठ लोग दुखी भी हुए और हर्षित भी। अयोध्या न लौटने का उन्हे दुख था तो प्रतिज्ञा-पालन की दृढता पर वे हर्षित थे। परन्तु माताए आसू बहाते-बहाते भरत की प्रशसा कर रही थी। माताओ ने भी श्रीराम से लौट चलने का आग्रह किया। श्रीराम ने भी भरत की प्रशंसा करते हुए कहा, "भरत, तुमने माता कैकेयी एव राजा दशरथ के पुत्र के योग्य बातें की है। परन्तु इतना स्मरण रखो कि कैकेयी से विवाह के समय ही महाराज दशरथ उनके पुत्र को राज्य देने के लिए वचनबद्ध थे। देवासुर-सग्राम मे प्राप्त दो वरदानो के अनुसार वर्तमान स्थिति उत्पन्न हुई है। अतएव उनकी इच्छा का पालन कर तुम भी उन्हें सत्यवादी बनाओ। मैं भी दण्डकारण्य मे जाकर मा कैकेयी एवं पिता के ऋण से मुक्त होना चाहता हूं। इसी से पिता की अधोगति बचेगी। 'पु' नामक नरक से उद्धार करने वाला ही 'पुत्र' कहलाता है, अतः तुम शत्रुघ्न के साथ अयोध्या लौटकर शासन सभालो और मैं लक्ष्मण के साथ वन की ओर प्रस्थान करता हू।"

किरण-१५

राम-राज्याभिषेक

शीर्षक देखकर पाठक चौंक सकते हैं। उन्हें स्मरण होगा कि राम ने वन जाने का निर्णय लेकर रामराज्य की नीव डाली थी। लेखक के विचारों के अनुसार रामराज्य-पद्धति की कल्पना यह किसी व्यक्ति के या शासनपद्धति के राज्य से सम्बन्धित नहीं है। उसमें विशेष जीवनमूल्यों का प्रभाव एवं प्रतिष्ठा तथा सर्व-साधारण व्यक्ति द्वारा उनका पालन अभिप्रेत है। इस दृष्टि से यदि 'रामराज्य की नीव' शीर्षक की ओर देखा गया तो इस किरण के प्रकाश को पाने में कठिनाई नहीं आयेगी। श्रीराम ने भरत को लौटने का आदेश दिया, परन्तु भरत के साथ आये हुए अन्य वृद्ध मंत्रीगण तथा पुरोहित सरलता से मानने वाले नहीं थे। उनके प्रवक्ता के रूप में जाबालि ऋषि ने कुछ कठोर शब्दों से नास्तिक तर्कों का आधार लेकर श्रीराम को अयोध्या लौटने का आग्रह किया। जाबालि ने कहा कि जीव अकेला आता है और अकेला ही जाता है, अतः माता-पिता आदि के प्रति आसक्ति उचित नहीं। और मृत्यु के बाद तो वह पूर्णतया निरर्थक है। धर्मशाला में टिकने से यात्री का जिस प्रकार उसके व्यवस्थापक से सबंध आता है, उतना ही सबंध जीव का माता-पिता से क्षण-मात्र के लिए होता है।"

जाबालि ने आगे कहा, "जीव के जन्म के लिए पिता निमित्त-मात्र होते हैं। माता ही वस्तुतः गर्भ धारण करने वाली होती है। राजा को जहां जाना था वे चले गये। एक का खाया अन्न किसी दूसरे का पोषण कर सके तो दूर देश में यात्रा करने वाले के साथ भोजन बांधकर देना आवश्यक नहीं। यही श्राद्ध करना पर्याप्त होगा। अर्थ का परित्याग कर धर्मपरायण होना व्यर्थ में कष्ट भोगना है। इस लोक के अतिरिक्त अन्य कोई लोक नहीं है, अतः परलोक की प्राप्ति के लिए धर्म आदि की बातें व्यर्थ हैं। तुम प्रत्यक्ष को महत्त्व दो परोक्ष को नहीं। अतः भरत-द्वारा सौंपे जा रहे राज्य को ग्रहण करो और अयोध्या लौट चलो।" जाबालि की बातें सुनकर, ऐसे धर्म-विरोधी नास्तिक पुरुष को पिताजी के मंत्री गणों में कैसे स्थान मिला यह प्रश्न राम के मन में उत्पन्न हुआ। फिर भी राम ने मर्यादा रखते हुए उनकी बातों का उत्तर दिया।

श्रीराम ने कहा, "यद्यपि आपने मेरे हित के लिए ही बात कही है तथापि करणीय दीखने पर भी वह करणीय नहीं है। समाज-धारणा के लिए जिन नियमों का निर्माण हुआ है, उसे 'धर्म' कहा गया है। हो सकता है उसके पालन में कुछ लोगों को व्यक्तिशः कष्ट हो। परन्तु यदि मैंने प्रतिज्ञा-भंग करने का उदाहरण उपस्थित किया, तो साधारण लोग वचनपालन को पूर्णतया अनावश्यक मानेंगे। यदि मैंने माता-पिता के शब्दों की अवहेलना की तो समाज में किसी का भी कोई

सम्मान नहीं रखेगा। इस प्रकार धर्म छोडने से सब लोग स्वेच्छाचारी हो जायेंगे। राजा के आचरण के समान प्रजा का आचरण होता है।

यद् वृत्ता: सन्ति राजानस्तद्वृत्ता: सन्ति हि प्रजा ॥(२।१०६।६)

सत्य का (वचन का) पालन राजा का धर्म है। सत्य ही मे लोक या समाज प्रतिष्ठित है।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्म: सदाश्रित ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥ (२।१०६।१३)

दान, यज्ञ, तपस्या अथवा वेद का आधार सत्य को ही बताते हुए राम ने आगे कहा, "सत्य-पालन की प्रतिज्ञा कर मैं लोभ या मोहवश राज्य स्वीकार करू, यह कदापि सभव नही। यह सत्य-धर्म प्राणिमात्र के लिए हितकर है। क्या करना चाहिए इसका मैं निश्चय कर चुका हू। कन्द-मूल-फल से पाचों इन्द्रियों को सन्तुष्ट कर मैं निश्चित भाव से श्रद्धापूर्वक लोकयात्रा का निर्वाह करूगा।" दैन्य-भाव से रहित श्रीराम ने जब रोष भरी परन्तु तर्कपूर्ण बाते जाबालि ऋषि से कही तो उन्होंने अपने विचार वापस ले लिये। वे बोले, "राम, न तो मैं नास्तिक हू, न मैं धर्म-विरोधी हू। मैं किसी तरह तुम्हे वापस लौटाने के लिए तथा तुम्हे सहमत करने के विचार से उपयुक्त तर्कों का प्रतिपादन कर रहा था।

श्रीराम पर धर्मसकट तब उपस्थित हुआ जब गुरु वसिष्ठ ने भी भरत के समर्थन मे अयोध्या लौटने का आग्रह किया। ऋषि जाबालि को आस्तिक बताते हुए गुरु वसिष्ठ ने सूर्यवश की परम्परा का सक्षेप मे कथन किया। ज्येष्ठ पुत्र को राज्य ग्रहण करना चाहिए, यही उनका आशय था। इसीलिए वश का स्मरण कराकर वसिष्ठ ने कहा, "उसी कुल मे पैदा हुए दशरथ के तुम ज्येष्ठ पुत्र हो। अत अयोध्या का राज्य तुम्हारा है, इसे ग्रहण करो। रघुवशियो का सनातन कुलधर्म नष्ट न करो। मैं तुम्हारा तथा तुम्हारे पिता का भी आचार्य हू, अत: मेरी बात मानो। इससे तुम्हें सत्पुरुषो का मार्ग त्यागने वाला नही माना जायेगा। फिर माता की बात भी नही टालनी चाहिए। और भरत की बात मान लेना भी धर्म का उल्लघन नही है।" गुरु वसिष्ठ के तर्को से श्रीराम दुविधा मे पड गये।

मर्यादा रखते हुए श्रीराम गुरु वसिष्ठ से बोले, "माता-पिता द्वारा पुत्र की जो सेवा होती है, उससे उऋण होना सहज बात नही, अत मेरे पिता की आज्ञा मिथ्या नही होगी।" श्रीराम की दृढतापूर्वक बात सुनकर भरत उदास हो गये। उन्होंने वही पर प्रायोपवेशन (धरना देने) की घोषणा की। श्रीराम के अयोध्या लौटने तक वे वही कुश बिछाकर बिना खाये-पिये बैठने का निर्णय ले बैठे। सुमन्त्र आदि श्री राम की ओर देखने लगे। जब श्री भरत चटाई बिछाकर वही बैठ गये तब श्रीराम ने भरत से कहा, "भरत मैंने तुम्हें क्या हानि पहुचाई है, जो तुम मेरे विरुद्ध धरना दे रहे हो? धरना देना क्षत्रियो के लिए उचित भी नही, अत इस

कठोर व्रत का परित्याग करो और शीघ्र अयोध्या लौट जाओ।" श्रीराम को दृढ़-प्रतिज्ञ देखकर भरत के चाहने पर भी पुरवासी तथा जनपदवासी राम को लौटाने में असमर्थता अनुभव करने लगे।

पुरवासियों तथा जनपदवासियों की बात का सहारा लेकर राम ने भरत से कहा, "तुम भी विचार करो तथा हठ छोड़ो।" इस पर भरत उठ खड़े हुए तथा पुरजनों से बोले, "न मैंने पिताजी से राज्य मांगा था, न माता से कुछ कहा था। श्रीराम के वनगमन से मैं सहमत नहीं हूं। यदि पिताजी की आज्ञा की ही बात है, तो श्रीराम के बदले में १४ वर्ष वन में जाऊंगा और राम अयोध्या को लौटें।" भरत की बात से श्रीराम को विस्मय हुआ। श्रीराम ने कहा "पिताजी ने जीवन-काल में जो वस्तुएं खरीदीं, बेच दीं या गिरवी रखीं, उन्हें कोई पलट नहीं सकता। वन जाने के लिए मुझे किसी प्रतिनिधि की आवश्यकता नहीं है। स्वयं सक्षम होने पर प्रतिनिधि से काम लेना निंदनीय है। मां कैकेयी की मांग उचित थी और पूज्य पिताजी ने उसे स्वीकार कर पुण्य कार्य ही किया है। १४ वर्ष पश्चात् जब मैं लौटूंगा तो तुम्हारे साथ मैं भी राज्य करूंगा। अतः हे भरत! मेरा कहना मानकर पिताजी को असत्य के बंधन से मुक्त करो।"

दो अतुलनीय तेजस्वी तथा निःस्पृह बन्धुओं की त्याग-भावना की प्रतिद्वंद्विता देखकर महान् त्यागी ऋषि-मुनियों को भी आश्चर्य हुआ। वे धर्म के ज्ञाता उन राजकुमारों की वार्ता लगातार सुनने रहने की इच्छा कर रहे थे। परन्तु समय का ध्यान रखकर ऋषियों ने रावण-वध की अभिलाषा रखने के कारण भरत को ही समझाया। उन्होंने कहा, "धर्मज्ञ भरत! पिता को सुख पहुंचाना चाहते हो तो श्रीराम की बात मान लो। हम श्रीराम को भी पिता के ऋण से मुक्त देखना चाहते हैं। कैकेयी का ऋण चुकाने से ही दशरथ उत्तम लोक में पहुंचे हैं, अतः तुम अपना आग्रह छोड़कर राम के अनुसार चलो।" ऐसा कहते हुए ऋषि, गन्धर्व आदि अपने-अपने स्थान को चले गये। ऋषियों के वचन से जहां श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए वहां भरत का शरीर थर्रा उठा। लड़खड़ाती वाणी से उन्होंने पुनः श्रीराम से, स्वयं की तथा माता कौशल्या की याचना स्वीकार करने को कहते हुए विनती की, 'आप राज्य स्वीकार कर, भले ही किसी और को सौंपिये, पर मुझसे यह महान् कार्य नहीं होगा।"

श्रीराम ने भरत से कहा, "तुम्हें जो विनयशील बुद्धि प्राप्त हुई है उसी से तुम समस्त भूमण्डल की रक्षा एवं सेवा करने में समर्थ हो।" इन शब्दों में मानो राम-राज्य की शासनपद्धति का मंत्र ही श्रीराम डाल गये थे। आगे चलकर भरत से उन्होंने कहा "अमात्य, सुहृदों तथा मंत्रियों से सलाह लेकर बड़े-से-बड़े कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। परन्तु तुम कैकेयी का दोष मत देना। उनके साथ पूजनीय माता के समान ही व्यवहार करना।" इस पर भरत ने श्रीराम के सामने

दो स्वर्णभूषित पादुकाए रखी और कहा, "आप इन पर अपने चरण रखिये। ये ही सम्पूर्ण प्रजा का योगक्षेम चलायेंगी तथा मैं इनके प्रतिनिधि के रूप में शासन की देखभाल करूंगा।" भरत की बात से प्रसन्न होकर श्रीराम ने पादुकाओं को चरणस्पर्श कराकर वे भरत को लौटा दी।

पादुकाओं को प्रणाम कर भरत ने कहा, "रघुनन्दन, मैं १४ वर्ष जटा-धारण कर शहर के बाहर कन्द-मूल-फल खाकर आपकी बाट जोहता रहूंगा। अयोध्या की गद्दी पर इन दो पादुकाओं को विराजमान कर राज्य का कारोबार मैं इनके सहारे चलाता रहूगा। चौदह वर्ष बीतते ही यदि प्रथम दिन-आपके दर्शन न हुए तो मैं अग्नि में प्रवेश करूगा।" श्रीराम ने "बहुत अच्छा" कहते हुए भरत की बात को स्वीकार किया। श्रीराम ने शत्रुघ्न को भी स्वयं की तथा सीता की शपथ दिलाकर कहा कि, "माता कैकेयी की रक्षा करना तथा इनके प्रति कभी क्रोध न करना।" इतना कहते-कहते श्रीराम के नेत्रो मे आसू आ गये। व्यथित हृदय से वे शत्रुघ्न को बड़ी कठिनाई से विदाकर पाये। भरत ने पादुकाए हाथ मे लेकर श्रीराम की प्रदक्षिणा की। अयोध्या के सर्वश्रेष्ठ गजराज के मस्तक पर पादुकाओं को स्थापित कर भरत ने राम से विदा ली।

हिमालय की भाति अविचल श्रीराम ने क्रमश. गुरु तथा माताओं की चरण-वन्दना कर उन्हे तथा बाद मे मंत्रीगण समेत प्रजा को विदा किया। सभी का गला भरा हुआ था। सभी के मुख आसुओ से भीगे थे। श्रीराम भी सबके चले जाने पर रोते-रोते कुटिया मे चले गये। चित्रकूट से बाहर आकर, श्रीराम की पादुकाए सिर पर धारण कर, शत्रुघ्न के साथ भरत रथ पर बैठे। गुरु वसिष्ठ आदि के रथ आगे-आगे चल रहे थे। सभी ने चित्रकूट की भी प्रदक्षिणा की तथा मन्दाकिनी पारकर सब लोग प्रयाग की ओर चल पडे। भरद्वाज मुनि के आश्रम मे रुकते हुए भरत ने उनका दर्शन किया तथा चित्रकूट का उन्हें समाचार दिया।

भरद्वाज मुनि ने भरत को पराक्रम मे सिंह के समान तथा शील एव सदाचार के ज्ञाताओ मे श्रेष्ठ बताते हुए कहा, "तुम मे सभी उत्तम गुण स्थित हैं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। तुम जैसा धर्मात्मा पुत्र पाकर महाराज दशरथ उऋण हो गये।" भरद्वाज मुनि की प्रदक्षिणा कर भरत सेना सहित शृगवेरपुर आये। वहा से गगा पार करने पर, वे आगे बढे और पर्याप्त समय बाद अयोध्या पहुचे। महा-राज दशरथ तथा श्रीराम से रहित अयोध्या भरत को नीरस लग रही थी। नगर मे बिलाव तथा उल्लू विचरण कर रहे थे। घरो के दरवाजे बन्द थे। नगर मे अध-कार था। मानो कृष्णपक्ष की काली रात हो। सडको पर कई दिन से झाड नही लगी थी, अत सब ओर कूडे के ढेर एव दुर्गन्ध थी। इस प्रकार सारथी से बातचीत करते करते, दुखी हृदय भरत दशरथ रहित राजा के निवास-स्थान राजमहल मे गये। वहा पर सन्नाटा देख उनका हृदय काप उठा तथा वे रो पडे।

दूसरे दिन प्रात माताओ को अयोध्या मे छोडकर भरत ने गुरु एव मत्रियो से नन्दिग्राम जाने की आज्ञा मागी। गुरु वसिष्ठ ने कहा, "भरत ! तुम्हारी भ्रातृ-प्रेम से पूर्ण बात बहुत प्रशसनीय है तथा तुम्हारे ही योग्य है। तुम श्रेष्ठ मार्ग पर स्थित हो, अत तुम्हे कौन रोकेगा ?"

सभी ज्येष्ठ जनो की अनुज्ञा लेकर, पादुकाओ को सिर पर धारण कर माताओ की प्रदक्षिणा करते हुए भरत रथ मे बैठे। आगे-आगे गुरुजन वसिष्ठ आदि को लेकर भरत का रथ नन्दिग्राम की ओर चला। सेना सहित पुरवासी भी साथ हो लिये। नन्दिग्राम पहुचकर भरत रथ से उतरे और गुरुजनो को सबोधित कर बोले, "श्रीराम ने यह राज धरोहर के रूप मे मुझे सौपा है। वस्तुत यह चरण-पादुकाए ही सबके योगक्षेम का निर्वाह करेंगी।"

भरत ने चरण-पादुकाओ को मस्तक झुकाया तथा धरोहर स्वरूप राज्य उन पादुकाओ के प्रति समर्पित किया। फिर समस्त प्रकृति-मडल (मत्री, सेनापति आदि) से कहा, "आप सब इन पादुकाओ पर ही छत्र धारण करें। यह साक्षात् श्रीराम के चरण है। इन पादुकाओ से यहा धर्म की स्थापना होगी। जब तक श्रीराम नही आते, तब तक इन्ही पादुकाओ के द्वारा प्रतिनिधित राम-राज्य अयोध्या मे चलेगा। उनके आने पर यह राज्य, अयोध्या एव पादुकाए उन्हे सौप कर मैं उनके चरणो की सेवा मे लगूगा। उस समय राज्य प्राप्ति की अपेक्षा मेरी प्रसन्नता कई गुना अधिक बढेगी और उसे ही मै यश मानूगा।" शासन-सम्बन्धी विशिष्ट मूल्यो की प्रतीकात्मक इन चरण-पादुकाओ का अभिषेक कर भरत ने वल्कल धारण किये और नन्दिग्राम मे ही रहने लगे। इस प्रकार अयोध्या का शासन वे इन पावन-पादुकाओ को निवेदन कर चलाने लगे।

उपसंहार

बालकाण्ड की तुलना में राम-जीवन से संबधित अधिक वेगपूर्ण गतिविधि अयोध्याकाण्ड में दिखाई देती है। दशरथ श्रीराम का राज्याभिषेक करना चाहते थे, परतु उनके मन में भी अनेक प्रकार की शकाए थी, इसीलिए उन्होंने श्रीराम को पुन. बुलाकर सावधान भी किया। राजपरिवारो में पत्नियों के सबंधियो की ओर से ईर्ष्या तथा द्वेषजन्य विविध प्रकार के षड्यन्त्र चलते रहते है। अत. राजा दशरथ भरत के ननसाल में रहते हुए ही श्रीराम का अभिषेक कराना चाहते थे। उस समय कैकेयी के पक्ष के लोगो की हलचल भी सभव हो सकती थी। लक्ष्मण की बात से यह स्पष्ट होता है जब उसने कहा, "मैं भरत, कैकेयी एव उनके पक्षीय सभी का सहार करूगा।" अर्थात् मन्थरा अकेली नही थी। इसीलिए श्रीराम ने राम-राज्य के लिए आधारभूत राज्य-त्याग की भावना की जो भूमिका स्वीकार की वह बहुत महत्वपूर्ण है।

उत्तम शासक के लिए पारिवारिक सौमनस्य एव बाह्य शत्रु का नाश दोनो बातें सभालनी होती है अन्यथा शत्रु से लडना तो दूर, घर में ही शत्रु खडे हो जाते है। अयोध्याकाण्ड मे श्रीराम के समस्त निर्णय तथा व्यवहार, पारिवारिक वैमनस्य के एकान्तिक इलाज की पृष्ठभूमि मे देखने होंगे। इसमे श्रीराम ने जो भूमिका अपनाई उसी से वे कैकेयी सहित समस्त परिवार का हृदय जीत सके अथवा परिवर्तित कर सके। उसी ने रामराज्य की नीव रखने का कार्य किया। अयोध्याकाण्ड मे प्रारम्भ मे श्रीराम, बीच मे लक्ष्मण तथा अन्त मे भरत इसी नीव को भरते देखे जाते हैं।

श्रीराम का मर्यादापालन (तथा नवीन मर्यादाओं की स्थापना) अयोध्याकाण्ड में स्पष्ट दिखाई पडता है। वाल्मीकि या किसी अन्य रामायण मे भी राजा दशरथ ने श्रीराम को वन मे जाने की आज्ञा स्पष्ट शब्दो मे या खुले मन से नही दी। वाल्मीकि रामायण मे तो वे स्पष्टतः विपरीत बात करते दिखते हैं। एक जगह दशरथ ने यहा तक कहा कि "मुझे बन्दी बनाकर तुम राज्य ग्रहण करो।" परन्तु श्रीराम को दशरथ के दिये हुए वचन सत्य सिद्ध करने थे। गोस्वामीजी के अनुसार दशरथ ने कहा अवश्य था, "प्राण जाय पर वचन न जाई" पर वचन पालन के लिए श्रीराम ने उनका प्राण त्याग हो सकता है, इस अनुमान के बाद भी वचन

पालन का दृढ़ आग्रह किया और वह करते समय राजा की वह आज्ञा है, यह कहकर किया अर्थात् दुविधावश दशरथ जो नही कहना चाहते थे, वह कहा हुआ मानकर और जो कह रहे थे उसकी चिंता न करते हुए वन जाने पर वे अडे रहे।

यही बात सत्य-असत्य के बारे मे भी दिखाई देती है। श्रीराम ने रथ हाकने के बारे मे सुमंत्र को पूर्णतया झूठी सफाई देने की सलाह दी। श्रीराम ने कहा कि महाराज को कह देना कि "पहियो की आवाज मे आपकी बात सुन नही पाया।" अयोध्या की प्रजा की वंचना कर, सुमंत्र से धोखा दिलाकर, वे स्वयं वन की ओर गये। सुमंत्र कुछ दूरी तक अयोध्या की दिशा मे रथ ले गया और दूसरे मार्ग से राम को आकर मिला। दोनो घटनाओं मे मूल ज्ञान यह दिखाई देती है कि जिस व्यवहार से धर्म या कर्तव्य पूर्ति मे यानी सत्य-पालन मे, स्नेहजन्य मोह से जो उत्पन्न की जाने वाली बाधा को टाला जा सके, वही व्यवहार सत्य है। बाधा को न टालते हुए अथवा बहाना बनाते हुए, कर्तव्यच्युत होना असत्य है। ये दोनो प्रसंग सत्यवादी राम के चरित्र मे विचारणीय, चिन्तनीय एवं अनुकरणीय है। सत्य-असत्य, आज्ञा-अवज्ञा इन को समझने के लिए और प्रसंगो की चर्चा करना आवश्यक नही।[1]

कैकेयी के प्रसंग मे महाराज दशरथ का गिडगिडाना, काम-भावना से प्रेरित न होकर, राम के प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण था। इससे भी बढकर चिंता यह थी कि सभा-द्वारा लिया गया राम के राज्याभिषेक का निर्णय असत्य होने जा रहा था तथा राम जैसे श्रेष्ठ पुत्र के प्रति अन्याय हो रहा था। अत एक ओर कैकेयी को दिये गये वचन-भंग का अधर्म तथा दूसरी ओर विशाल सभा द्वारा लिये गये निर्णय की अवमानना यह दशरथ की सबसे बडी दुविधा थी। उन्हे धोखा देकर जो वचन उनसे लिया गया था, उस प्राणघातक वचन के पालन की जिम्मेदारी उन पर थी। एक वचन के पालन मे दूसरा भंग होता था। इस स्थिति मे कौन सा पालन करे यह समस्या थी। इस के कारण दशरथ व्याकुल थे। वह वचन, अयोध्या की प्रजा के लिए, स्वयं भरत के लिए भी अहितकर थे। अत राजा की व्याकुलता स्वाभाविक थी। वे किंकर्तव्यविमूढ बने थे। क्या करें, क्या न करें यह

---

१ इस संदर्भ मे बालकाण्ड मे विश्वामित्र द्वारा राम को बताई हुई विष्णु को मिले शाप संबंधी दो घटनाएं पुन स्मरण योग्य रहेगी। भृगु ऋषि की पत्नी के आशीर्वाद के कारण बलवान दैत्य विनाश लीला करते थे। अत विष्णु ने ऋषिश्रेष्ठ भृगु की पत्नी का ही वध किया। इसी प्रकार वृन्दवती के पातिव्रत्य के कारण उसका पति जालधर दैत्य मरता नही था। अत विष्णु ने वेदवती का पातिव्रत्य भंग किया जिससे जालधर मारा जा सका। दुष्टो के नाश का ध्येय पूर्ण करने के लिए किये गये सर्वश्रेष्ठ देव के ये कार्य सदा प्रकाश देने वाले है। इस पार्श्वभूमि मे राम द्वारा व्यवहार मे लाये गये मानदण्ड पूर्ण सिद्ध होते है।

उनकी दुविधा थी। पाठक जानते हैं कि जब श्रीराम के वनगमन का अन्तिम निर्णय हुआ, तो महाराज दशरथ ने जिन कडे शब्दो से कैकेयी की निन्दा की है तथा उससे सबन्ध-विच्छेद कर उसका महल छोड़ा है, यह कोई भी कामी पुरुष कदापि नही कर सकता। दशरथ कैकेयी से कहते हैं कि वह उनके शरीर को ही नही, शव को भी स्पर्श न करे।

श्रीराम की स्थित-प्रज्ञता भी अतीव प्रेरक है। राज्याभिषेक अथवा वनगमन दोनो समाचार उनके लिए समान थे। तुलसी ने इस घटना का बहुत अच्छा वर्णन किया है। 'प्रसन्नताया न गताभिषेकता।' तथा 'न मम्ले वनवासदु खता''। अभिषेक की वार्ता से न वे प्रसन्न हुए, न ही वनवास के कारण म्लान हुए। उनके चेहरे पर कोई विकार नही दिखाई दिया। विवेक तथा सन्तुलन इतना अधिक था कि कैकेयी को उन्होंने यह कहकर आश्चर्य मे डाल दिया कि 'राम दो बार बात नही करते। रामो द्विर्नाभिभाषते। श्रीराम ने कहा, "इतनी जरा सी बात के लिए मा तुम्हे महाराज दशरथ को कष्ट देने की जरूरत न थी।" वे कहते हैं, "आखिर तुम भी तो मेरी मा हो। तुम्हारी आज्ञा से भी मैं वन को जा सकता था।"

भरत के सम्बन्ध मे श्रीराम को छोडकर मा कौशल्या, सखा गुह तथा बन्धु लक्ष्मण सभी शकित दिखाई देते हैं। इसके विपरीत श्रीराम का औदार्य, मनुष्य की परख तथा भरत के प्रति प्रेम अद्वितीय हैं। उन्होंने लक्ष्मण से कहा था, "भरत को मारकर अयोध्या के राज का क्या करना ? यदि भरत स्वय सैन्य लेकर आ रहा है तो हमे शस्त्रधारण की आवश्यकता नही।" भरत की विशेषता यह है कि केवल अयोध्याकाण्ड के मध्य से अन्त तक ही उनका चरित्र वर्णित है। शेष रामायण मे यदा-कदा ही उनका नाम पढने मे आता है। इतनी थोडी अवधि मे वे राम-जीवन पर तथा जनमानस पर छा गये हैं। लक्ष्मण भी राम और भरत के समान राज्य त्यागने मे पीछे नही थे। जब राम ने कहा कि "मेरे कहने से भरत तुम्हें तत्काल राज दे देगा" तो लक्ष्मण ने कहा कि "आपको छोडकर मुझे अयोध्या का ही क्या, त्रिलोकी का राज्य भी अस्वीकार है।"

श्रृगवेरपुर मे श्रीराम गुह से गले मिले हैं, गुह तथाकथित चाण्डाल माना जाता था। सनातनी क्षेत्र के कुछ विचारक इस बात पर समाज को परामर्श देते हैं कि "चाण्डाल को गले लगाना यह श्रीराम को तो शोभा देता है पर सर्व साधारण को इसका अनुकरण नही करना चाहिए।" शायद इसीलिए राम के साकेत धाम को जाने के हजारो साल बाद भी इस सर्वोत्तम सस्कृति वाले देश में करोडो वनवासी, गिरिवासी जिस प्रकार का जीवन उस काल मे जीते थे, वैसा ही जीवन आज भी जी रहे हैं। आशा है मन-बुद्धि होने से मनुष्य कहलाने वाले सभी इस पर पूर्ण विचार करेंगे। हमे निर्णय करना होगा कि हम केवल राम का नाम जपने वाले हैं या उनका अनुकरण करने वाले हैं। भागवत के अनुसार राम मृत्युलोक को शिक्षित

करने आये थे। श्रीराम की भूमि मे इन पाच करोड वनवासियो का मनुष्य स्तर से हीन बने रहना, यह अपनी संस्कृति, धर्म, सभ्यता तथा सृष्टि के लिए चुनौती देता कलक है।

जाबालि ऋषि को दिया गया उत्तर तो पूर्णतया प्रक्षिप्त लगता है

यथा हि चोर स तथा हि बुद्ध ।
तथा गत नास्तिकमत्र विद्धि ॥ (२।१०६।३४) आदि।

गोरखपुर महिता मे इसका अर्थ इस प्रकार दिया है, जैसे चोर दण्डनीय होता है उसी प्रकार (वेदविरोधी) बुद्ध (बुद्ध मतावलबी) भी दण्डनीय है। तथागत (नास्तिक विशेष) और नास्तिक (चार्वाक) को भी यहा इसी कोटि का समझना चाहिये। चौथी पक्ति मे कहा है ब्राह्मणो का (वश न चले तो) ऐसो का मुह भी नही देखना चाहिये। इससे अगले श्लोक मे यह भाव और भी स्पष्ट किया गया है। बुद्ध को कल्पभेद के अनुसार राम से पूर्व मानकर श्रीराम उन्हे चोर कहे इससे कल्पावतार की कल्पना को मान्यता भले ही मिले पर वह श्रीराम के चरित पर कलक रूप दिखाई देती है। सम्पूर्ण राम-साहित्य मे (रावण से युद्ध का प्रसग छोड कर) कही भी श्रीराम ने किसी के लिए भी अपशब्द का प्रयोग नही किया। फिर बुद्ध जिन्हे आदि शकराचार्य जैसे कट्टर पथी सनातनी ने भी दशावतारो मे स्थान दिलवाया उन्हें श्रीराम चोर कैसे कहते ? यह पूर्णतया वास्तविकता से परे की बात है। कल्पभेद आदि के नाम पर इस वार्तालाप को सही बताना विशेष प्रकार की प्रतिभा वालो को ही शोभा देता है। इसमे सकुचित साम्प्रदायिकता की गन्ध आती है। राम के वास्तविक भक्त इस पर विश्वास करने के लिए कभी भी तैयार नही होगे।

जाबालि के तर्क जितने सीधे तथा ग्राह्य लगते हैं उतने ही श्रीराम के उत्तर वाल्मीकि की प्रतिभा के परिचायक नही दिखाई पडते। इस सर्ग मे व्यावहारिक तर्क छोडकर हर बात मे शास्त्र की दुहाई देने वाली बातें तथा पुराणपन्थी घिसे-पिटे तर्क राम के मुख से कहलवाये गये है। श्राद्ध की बात पर जाबालि ऋषि को बताया जा सकता था कि वर्ष मे एक बार श्राद्ध के दिन भोजन कराने से पितरो को वर्ष भर भोजन मिलेगा, ऐसा विचार करने वाले की बुद्धि पर शका करनी पडेगी। श्राद्ध मे इस भाव से पिण्डदान किया भी नही जाता। कृतज्ञतापूर्वक श्रद्धा के साथ पितरो का स्मरण मात्र करने के लिए श्राद्ध किया जाता है। कृतज्ञता का भाव तो पशुओ में भी पाया जाता है, मानव का तो वह एक महत्वपूर्ण लक्षण ही है। अत जन्मदाता माता-पिता या उनके भी पूर्वजो का श्रद्धापूर्वक स्मरण आदि अर्थात् 'श्राद्ध' की निन्दा कैसे की जा सकती है।

कृतज्ञता का भाव यह मानव का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। यह मानने पर इसका जिनमे अभाव हो उन्हे पशु कहना पशुओ का भी अपमान करना होगा, अत जन्म

देने के बाद कम से कम युवा आयु तक अपनी अनेक प्रकार की सेवा करने वालों का उनकी मृत्यु के पश्चात् श्रद्धापूर्वक स्मरण करना जिन्हें पसन्द नही या जो इस श्राद्ध कर्म के आलोचक बनते है, वे अपनी श्रेणी (मानव या पशु) स्वय निश्चित कर ले। हम इस संबंध मे लेखनी को मौन-परिधान पहना सकते है, किन्तु लेखनी को विकृत करना नही चाहते।

चित्रकूट मे राम-भरत की वार्ता, दीर्घकाल तक राम को लौटाने के लिए की गई भरत द्वारा जिद, वसिष्ठ तथा अन्य ऋषि-मुनियो का भी श्रीराम को वापस लौटने का आग्रह, दशरथ की अयोध्या मे सलाह, माताओ का भी आग्रह तथा प्रजा-जनो का स्नेह यह सभी बातें श्रीराम को राजा बनने के अनुकूल थी। भारत के वर्तमान राजनेताओ के सदर्भ मे श्रीराम का न लौटने का आग्रह अटपटा लगता है। कोई कहे न कहे परन्तु सत्ता-लोलुप अथवा पदलोलुप राजनेता या समाज नेता, "मैं क्या करू, मैं नही चाहता था पर लोग नही मानते," कहकर त्वरित पद-ग्रहण करने के लिए आगे आ जाते है। इसके विपरीत सभी प्रकार के प्रलोभनो को ठुकरा कर श्रीराम शब्द-पालन पर वचन-पालन पर, दृढ दिखाई देते है।

दूसरी ओर भरत का चरित्र राज-त्याग की पृष्ठभूमि में श्रीराम से कुछ अधिक ही यशमय दिखाई देता है। श्रीराम के लिए दशरथ वचनबद्ध थे, अत. सत्यसध श्रीराम को दशरथ की प्रतिज्ञा-पूर्ति करना आवश्यक था। परन्तु भरत के लिए ऐसा कोई बन्धन नही था। स्वभाव मे वे पूर्णतया श्रीराम की प्रतिमूर्ति थे। अयोध्या मे केवल दो दिन के निवास मे भरत ने कौशल्या सहित सभी सतप्त लोगो के हृदय जीत लिये। मार्ग मे तथा चित्रकूट मे भी शकित लोगो को भरत के प्रति आदर करने के लिए बाध्य होना पडा। ऐसी स्थिति मे स्वय चलकर आई हुई पूर्णतया न्याय राजलक्ष्मी जिसे श्रीराम का पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त था, उसे ठुकराकर भरत ने सिंहासन पर पादुकाओ का अभिषेक कराया तथा स्वय नन्दिग्राम मे जटा व वल्कल धारण कर रहे। श्रीराम के स्थान पर वन से जाने की अपेक्षा इस अपूर्व त्याग के लिए अधिक मनोनिग्रह एव नि स्पृहता की आवश्यकता पडी होगी। यदि भरत मे प्रतिक्रिया थी ही तो वह केवल कैकेयी के सबध मे थी। इसके विपरीत कैकेयी के प्रति भी राम का स्नेहादर समान था। इसी मे राम ने अपना श्रेष्ठत्व सिद्ध किया है। पर भरत की श्रेष्ठता का सही मूल्याकन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है,

"जग जपु राम, राम जपु जेही।।"

इसीलिए श्रीराम भरत को बार-बार सलाह देते रहे कि कैकेयी को दोष मत देना। उनकी निंदा मत करना, उनसे पूर्ववत प्रेम करना। आज के सदर्भ मे, वर्तमान राजनेता अपने पुत्र के लिए क्या-क्या नही करते अथवा नारिया कितना ताडव कर सकती हैं, यह बताने की आवश्यकता नही। इसलिए श्रीराम ने मानव-स्वभाव, पूर्वजन्म-सस्कार, स्वय का भाग्य आदि बातो पर दोष रखकर "कैकेयी को अच्छी

दृष्टि से देखो," का परामर्श ही भरत को बार-बार दिया है। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि "क्या कैकेयी या मन्थरा मुझे वन भेज सकती थी ? सम्पूर्ण देव, दैत्य, दानव मिलकर भी मेरा प्रतिकार करने में असमर्थ है। यह तो काल का चक्र है, नियति का खेल है, समय की विडंबना है, भाग्य का प्रभाव है, इसलिए कैकेयी को दोष देना उचित नहीं।" भरत पर रोष करना तो दूर, कैकेयी पर भी राम का रोष दिखाई नहीं देता, इसीलिए श्रीराम करुणामूर्ति कहलाये।

राम का वनवास यह शब्द-प्रयोग सुनने के लिए भारतवासी इतना अधिक आदी हो गया है कि इन शब्दों का हम लोगों के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर राम का वनगमन भी मननीय तथा गंभीर बात है। किसी साधारण नागरिक को एक दो साथी लेकर रात्रि में शहर से बाहर बिना सामान के जाने को कहें। शहर से दो-चार मील दूर किसी पेड़ के नीचे, आस-पास की घास बिछा कर, वे सोयें तथा प्रातः वापस लौटें। शायद साधारण मनुष्यों में भी ९९ प्रतिशत से अधिक लोगों को नींद भी नहीं आयेगी। यह बीसवीं सदी की बात है। दस हजार वर्ष से अधिक वर्ष पूर्व राजघराने में जिनका जन्म बीता तथा जो सभी के लाड़ले थे ऐसे श्रीराम सीता एवं लक्ष्मण शृङ्गवेरपुर में गंगापार कर जब वृक्ष के नीचे प्रथम दिन सोये, तो वाल्मीकि जी भी इसका अलग वर्णन करना न भूले। क्या केवल राम का नाम जप करने वाले उनके इस कष्ट की कभी कल्पना कर सकते हैं?

जब राम का राज्याभिषेक होने वाला था तब अकस्मात् वनवास मिला। उस समय क्या-क्या स्वप्न उनके मानस-पटल पर बिम्बित हुए होंगे? किन्तु काल की विडम्बना से, नियति के चक्कर से, युवक एवं युवा पत्नी की मानसिक कल्पना ठीक उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गई होगी, जिस प्रकार शीशा चूर-चूर हो जाता है। समूची अयोध्या कष्ट में थी, मानो श्मशान बन गयी हो। अयोध्या की उस हालत का संवेदनशील राम के मन पर कितना बड़ा बोझ होगा? रघुकुल वंश के एक श्रेष्ठ राजा दशरथ एवं माता कौशल्या की अवस्था का करुणमूर्ति राम के मन पर कितना दबाव होगा? उस मनःस्थिति में पूर्णतया निर्जन वन में, जंगली पशुओं, साँप, बिच्छू आदि के बीच, रोशनी के पूर्ण अभाव में, दस-बीस रातें नहीं, १४ वर्ष उन्हें काटने पड़े हैं। क्या हम कल्पना कर सकते हैं उन कष्टों की? और यह सजा क्यों, दशरथ का वचन भंग न हो, केवल इस भूमिका का पालन करने के लिए। नारद ने "राम का यही वर्णन किया है—जो स्वयं के साथ औरों की मर्यादाओं का भी रक्षण करते हैं।" धर्म निर्वाह करने वालों को इसी में आनन्द आता है। इसे धर्माचरण कहते हैं, पूजा-पाठ मात्र को नहीं, यह बोध इस व्यवहार से प्राप्त होता है।

क्या श्रीराम ने इतना कष्टमय जीवन इसलिए बिताया कि मानव उनके नाम का केवल जपकर स्वयं का उद्धार कर लें? क्या यह उचित होगा? क्यों इतने भारी

कष्ट उठाये उस महापुरुष ने ? समकालीन समाज जीवन से ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, लोभ, मोह को दूर करने के लिए। वास्तव में सत्याग्रह का यही वास्तविक रूप है। सत्य के आग्रह के द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर, सभी को सत्य स्वीकार करने के लिए तैयार करना। परन्तु किन लोगो ने, किन लोगो के लिए, किस कारण अथवा किस फल की अपेक्षा से यह सत्याग्रह किया अथवा करना चाहिये यह ध्यान देने तथा मनन करने योग्य बात है। क्योंकि अयोध्यावासियों में सत्य-स्थापन के लिए श्रीराम ने जो सत्याग्रह की विधि अपनाई, वह उन्होंने सर्वत्र नहीं अपनायी। सत्यस्थापन अथवा सत्य की सिद्धि के लिए उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर शस्त्रो का उपयोग भी किया है। अर्थात् घरेलू मोर्चे पर सत्याग्रह तथा दुष्टो के मोर्चे पर शस्त्राग्रह यही राम का निर्णय मार्ग-दर्शक सूत्र है। रामायण का (राम के आक्रमण का) यह शस्त्राग्रह का भाग आगे प्रारम्भ होगा। अयोध्याकाण्ड यहीं समाप्त होता है।

परिशिष्ट

घटनाक्रम तिथियां

वाल्मीकि रामायण के वर्णित ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति पर आधारित पद्मपुराण के अनुसार घटनाक्रम की तिथियां, जो स्कन्दपुराण में दी गयी हैं। पूना के डा० वर्तक ने वाल्मीकि में उल्लिखित ग्रहस्थिति के आधार पर इन घटनाओं में से कुछ के बारे में अंग्रेजी तिथियां दी हैं। उनके अनुसार रामायण काल ईसा पूर्व ७००० वर्ष है।

अ ३६-६-८०

श्रीराम की आयु	घटना	मास	पक्ष	तिथि
	श्री राम-जन्म	चैत्र	शु०	९
	श्री भरत-जन्म	चैत्र	शु०	१०
	श्री लक्ष्मण शत्रुघ्न जन्म	चैत्र	शु०	११
९	सीता जन्म	वैशाख	शु०	६
१५	विश्वामित्र के साथ प्रस्थान	मार्गशीर्ष	शु०	१
—	शिव-धनुष-भग	मार्गशीर्ष	शु०	१२
१५	सीता विवाह	पौष	कृष्ण	७
२७	राज्याभिषेक विघ्न	चैत्र	शु०	१०
३९	सीताहरण	माघ	कृ०	८
	हनुमान द्वारा समुद्रोल्लंघन	मार्गशीर्ष	शु०	११
	हनुमान द्वारा सीतादर्शन	मार्गशीर्ष	शु०	१२
	हनुमान द्वारा लंकादहन	मार्गशीर्ष	शु०	१४
	हनुमान की वापसी	मार्गशीर्ष	शु०	१५
	वानर सेना का प्रस्थान एवं समुद्र पर आगमन	पौष	शु०	१ से ८
	विभीषण भेंट	पौष	शु०	९
	सेतुबन्ध पूर्णता	पौष	शु०	१३
	अंगद शिष्टाई	माघ	शु०	१

४०	राक्षस वानर युद्ध प्रारम्भ	माघ	शु०	२
	नागपाश बद्ध (इन्द्रजित द्वारा)	माघ	शु०	६
	राम-रावण प्रथम युद्ध	माघ	कृ०	२ से ४
	कुम्भकर्ण वध	माघ	कृ०	१४
	इन्द्रजित युद्ध, पलायन	माघ	कृ० १५ से माघ शु०२	
	इन्द्रजित वध	फा०	शु०	८ से १३
	लक्ष्मणशक्ति	चै०	शु०	६
	इन्द्ररथ आगमन	चै०	शु०	११
	रामरावण युद्ध (१८ दिन)	चै०	शु०१२ से चैत्र कृ०१४	
४१	रावण वध	वैसाख	कृ० १४-कुल युद्ध ८७ दिन	
	रावण दाहसंस्कार	बैसाख	कृ०	१५
४१	रामराज्याभिषेक	बैसाख	शु०	७
७१	साकेतधाम गमन	मार्गशीर्ष	कृ०	१२

परिशिष्ट-२

श्रीराम सवत्

(एक दृष्टिकोण)

मत्स्ये ब्रह्म शको मुने विरचित त्रेता युगे वामन ।
तत्पश्चात् जमदग्नि पुत्र निहते राम सहस्रार्जुने ।।
रामो रावण हन्तु प्राक उदितो युधिष्ठिरो द्वापरे ।
पश्चात् विक्रम शालिवाहनशको जातो युगे स्मिन्कलौ ।।

अर्थात् भगवान रामचन्द्र जी का सम्वत् रावण के वध होने के दिन से आरम्भ हुआ। पद्म पुराण मे लिखा है कि रावण का वध वैशाख कृष्णा १४ का हुआ था, उसकी दाह क्रिया वैशाख कृष्णा अमावस्या को हुई थी, अत इस सम्वत् का आरम्भ वैशाख शुक्ला प्रतिपदा से होना चाहिये। सभी प्राचीन ग्रन्थो के अनुसार रामावतार का त्रेता के अन्त मे होना सिद्ध होता है —

त्रेता द्वापरयो सन्धौ राम शस्त्रभृताम्वर । आदिपर्व २

पुराणो मे लिखा है कि भगवान रामचन्द्र जी त्रेता युग के ९००० वर्ष शेष रह जाने पर उत्पन्न हुए थे। ये २५ वर्ष है। इनको दिव्य युग के वर्ष बनाने के लिए ३६० से गुणा करके रखे गये है। पुन इनको मानव वर्ष बनाने के लिए ३६० से विभक्त करने पर २५ वर्ष प्राप्त होते है। अत त्रेता युग के २५ वर्ष रहने पर तारण नाम सम्वत्सर में चैत्र शुक्ला ९ पुनर्वसु नक्षत्र, मध्याह्न काल मे भगवान रामचन्द्र जी का जन्म हुआ —

चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ
उदये गुरु गौराश्वो स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ।।
मेषे पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये ।।
आविरासीत्स कलया कौसल्यापर पुमान् ।।

—अगस्त्यसंहिता

परिशिष्ट-३

मानवकाल या मनु संवत्

(देवकीनंदन खडेलवाल : एकदृष्टिकोण)

अवान्तर प्रलय के पूर्व द्रविड देश के राजा सत्यव्रत कृतमाला नदी मे तर्पण कर रहे थे। तब जल के साथ उनकी अन्जली मे एक छोटी मछली आई। जब राजा ने उसको त्यागना चाहा तो मछली ने कहा मैं आपकी शरण मे आई हू, क्योंकि समुद्र के बड़े प्राणी मुझे भक्षण करना चाहते हैं। यह सुनकर राजा ने उसे अपने कमण्डल मे डाल लिया और उसे अपने आश्रम मे ले आये। कुछ काल के पश्चात् मछली ने राजा से कहा कि मैं इस पात्र मे कष्ट पा रही हू। राजा ने उसे एक बडे घडे में गिरा दिया। तत्पश्चात् मछली ने उस घडे मे न समा सकने की शिकायत की, तब राजा ने उसे क्रमश तडाग, नदी और समुद्र मे गिराया। समुद्र मे पडकर उस मछली ने और भी बड़े महामत्स्य का रूप धारण करके कहा कि हे राजा सत्यव्रत, आज के सात दिन पश्चात् अवान्तर प्रलय होगा। उस दिन भूमण्डल समुद्र के जल मे डूब जावेगा। उस समय तुम एक बडी नौका मे सब प्रकार के बीज, औषधिया और प्राणियो तथा सप्तर्षियो को लेकर बैठ जाना। इस प्रलय काल की अवधि के समाप्त होने पर तुम वैवस्वत मनु के रूप मे सत्ययुग मे मनुष्यादि की सृष्टि करना।

खंडेलवाल जी ने चतुर्युगो की वर्ष सख्या १०००० मानी है। जिसका दशमांश १००० वर्ष होता है। इसी दशमाश के अनुसार सत्ययुग मे चार, त्रेतायुग मे तीन, द्वापरयुग में दो और कलियुग में एक चरण कहे गये है। त्रेतायुग की समाप्ति पर्यन्त प्रत्येक युग के चरण मे निम्न प्रकार माना जा सकता है। जैसे :—

सत्ययुग के प्रथम चरण में मत्स्यावतार, द्वितीय चरण मे कूर्मावतार, तृतीय चरण मे वराह-अवतार और चतुर्थ चरण मे नृसिंहावतार हुए। इसी प्रकार त्रेता के प्रथम चरण मे वामन, द्वितीय चरण में परशुराम और तृतीय चरण में श्रीरामावतार हुए। इन सातो अवतारों के बीच का अन्तर प्रति अवतार १००० वर्ष माना जा सकता है।

सम्भव है युग के सन्धि और सध्यंश के वर्ष भी सूर्यसिद्धान्त के समय मे प्रचलित हुए हो, क्योंकि दिव्ययुग मे ग्रहो की गति का मिलान करने के लिए इस

व्यवस्था का होना आवश्यक था। परन्तु युग का मान १२००० वर्ष का मनु-स्मृति और महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी लिखा है। अतः इस पर भी विचार करना आवश्यक है।

यह अवान्तर प्रलय की कथा भारतीय पुराणों में लिखी गई है, परन्तु अन्य पाश्चात्य पुराणों में भी उक्त प्रलय का वर्णन इसी प्रकार लिखा है। पाश्चात्य लोग इसे पानी का "तूफान" कहते हैं। इसके पश्चात् में होने वाले प्रथम पुरुष 'मनु' को यहूदी और मुसलमान "नू" या नूह, ग्रीक लोग "वैकश" अमीरिया वाले "अमिरियस" और जैनी लोग आदिनाथ कहते हैं। अर्थात् यह सब मनु के पर्यायवाची शब्द हैं। मनु जी के रहने के स्थान को भारतीय सुमेर, मूसा अरारट् या कोह काफ कहते हैं। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी के जल-प्लावित होने पर मनु जी ने विश्व के सबसे ऊंचे पर्वत हिमालय पर अपना आश्रम किया था।

पाश्चात्यों के मत में इस अवान्तर प्रलय का समय ७५६८ वर्ष है। वे लोग इसे नूह का सम्वत् या तूफि-सम्वत् कहते हैं। उक्त मनु को लोग आदि मानव आदम कहते हैं, जिसका वर्तमान सम्वत् ७३०३ है।

भारतीयता के अनुसार यदि इसी सत्य युग से वर्तमान सृष्टि क्रम को मानकर महायुगों की वर्ष संख्या १०००० वर्ष ही मानी जाये तो १४७१३ वर्ष पूर्व कार्तिक शुक्ला १५ को सत्ययुग का आरम्भ हुआ था। इसमें लगभग १००० वर्ष पर चैत्र शुक्ला ३ को मत्स्यावतार हुआ और २००० वर्ष के पश्चात् वैशाख शुक्ला १५ को कूर्मावतार ३००० वर्ष के बाद भाद्रपद शुक्ला ३ को वराह अवतार और ४००० वर्ष के पश्चात सतयुग के अन्त में वैशाख शुक्ला १४ को नृसिंहावतार हुआ। इसी प्रकार त्रेतायुग के १००० वर्ष बीतने पर भाद्रपद शुक्ला १२ को वामन, २००० वर्ष बीतने पर वैशाख शुक्ला ३ को परशुराम और ३००० वर्ष बीतने पर त्रेता के अन्त में चैत्र शुक्ला ९ को श्री रामावतार हुआ।

वर्तमान मानवी सृष्टि का आरम्भ इसी गत सत्ययुग में मान लेने पर, पुराणों में लिखी कथाओं का परस्पर मिलान हो जाता है जैसे —

ऋक्षराज जाम्बवान की पुत्री जाम्बवती का विवाह श्रीकृष्ण जी से द्वापरयुग के अन्त में हुआ था। जाम्बवान ने रावण से युद्ध करते समय श्री रामचन्द्र जी की वानर सेना में कहा था कि मैं अब वृद्ध हो गया हूं। राजा बलि के समय में 'मैं' युवा था। उस समय मैंने वामन भगवान की परिक्रमा की थी। राजा बलि विरोचन का पुत्र और प्रह्लाद का पौत्र तथा हिरण्यकशिपु का प्रपौत्र था। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु उपर्युक्त मनुजी की दुहिता "कश्या" का पोता था अर्थात् पुराणों में लिखित वंश परम्परा का मिलान इसी सत्य युग में वर्तमान मानव वंश का आरम्भ मानने से होता है।

इस सत्ययुग के वैवस्वत मनु के कई पुत्र हुए। जिनमें (१) इक्ष्वाकु

(२) नृग (३) धृष्ट (४) शर्याति (५) नरिष्यन्त (६) प्रांशु (७) नाभाग (८) नेदिष्ट (९) करुष (१०) और पृष्टन्ध । ये दश पुत्र प्रख्यात हुए । एक इला नाम की कन्या थी जो चन्द्रमा के पुत्र बुध को विवाही गई थी । इमी से उत्पन्न होने वाले वश को चन्द्र वश कहते है । इसी प्रकार सूर्य से उत्पन्न होने वाले वश को सूर्यवंश कहा जाता है । विश्व मे पहला राजा मनु था, जिसने अयोध्यापुरी को बसाया था। उस मनु राजा के वश मे सूर्य और चन्द्र इन दो राजवशो की प्रधानता है ।

सत्ययुग मे मत्स्य, कूर्म, वराह और नृसिंह ये चार अवतार हुए जिनमे से केवल नृसिंहावतार को अर्द्धमनुष्य कहा गया है। यह अवतार हिरण्यकशिपु को मारने के लिए सत्य युग के अन्त मे हुआ था । पहला मनुष्यावतार वामन के रूप मे त्रेतायुग के आदि मे हिरण्यकशिपु के पडपौते राजा बलि का राज्य हरण करने के लिए हुआ था । इक्ष्वाकु के समकालीन राजा पुरुरवा ने त्रेतायुग के आदि मे वेद के तीन भाग किये थे। इन पौराणिक कथाओ के आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि मनु जी की तीसरी पीढी का आरम्भ त्रेतायुग मे हुआ ।

साराश विदेशो के अनुसार एक पीडी की कल्पित आयु २० वर्ष की मानकर तथा दो समकालीन राजाओ का काल निश्चित करके भारतवर्ष के ऐतिहासिक राजाओ का राज्यकाल निश्चित नही हो सकता है ।

एक और दृष्टि से भी इस कालनिर्णय के संबध मे विचार हो सकता है ।

मैन्दश्च द्विविदं चैव पच जाम्बवता सह ·
यावत्कलिश्च सम्प्राप्त स्तावज्जीवत सर्वदा । उत्तरकाण्ड १०९।३७

अर्थात् श्री रामचन्द्र जी ने जाम्ववान आदि पाच वानरो को आशीर्वाद देते हुये कहा कि तुम लोग कलियुग के आने तक जीवित रहो । इसमे अठाईसवें युग का नाम नही है । इसका तात्पर्य यही है कि भविष्य मे आने वाले कलियुग तक जीवित रहो। ये पाचो वानर महाभारत युद्ध के आसपास मे जीवित थे अर्थात द्वापर युग के अन्त मे श्री कृष्ण चन्द्र ने जाम्ववान की पुत्री जाम्ववती से विवाह किया था । द्विविद को बलराम जी ने मारा था । इसी प्रकार महाभारत मे लिखा है कि हनुमान जी ने भीम से कहा कि मैं त्रेतायुग के अन्त मे उत्पन्न हुआ था, अब कलियुग आने वाला है ।

उक्त घटनाओं से इसी गत त्रेतायुग मे रामावतार का होना सिद्ध होता है । साथ मे यह भी सिद्ध होता है कि युगो के वर्ष दिव्य वर्ष न होकर मानव वर्ष ही है । जैसे—जाम्बवान का जन्म वामनावतार के समय से पूर्व हुआ था, क्योकि रावण के युद्ध मे जाम्ववान ने कहा कि मैं वामनावतार के समय युवा था जाम्बवान द्वापर युग के अन्त तक जीवित रहा । अतः यदि युगो का मान दिव्य वर्षो के अनुसार माना जाये तो जाम्ववान की आयु कम से कम १४००००० वर्ष की होनी चाहिये अन्य द्विविदादि द्वापर के अन्त तक जीवित रहने वाले वानरो की आयु ९०००००

वर्षों की होनी चाहिये ।

इसी प्रकार भगवान रामचन्द्र जी का ११००० वर्ष तक राज्य करना लिखा है। सम्भव है त्रेतायुग का अन्त और द्वापर का आरम्भ रामचन्द्र जी के वनवास के दिन से माना गया हो। उस समय उनकी अवस्था २७ वर्ष की थी। १४ वर्ष के पश्चात् ४२ वर्ष की अवस्था में वे राजगद्दी पर बैठे थे और ७१ वर्ष की अवस्था में पूर्व तीन अश्वमेध यज्ञ भी कर चुके थे। तत्पश्चात् ११००० वर्ष तक उन्होंने कौन-कौन कार्य किये इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

एक ब्राह्मण ने ५००० वर्ष की आयु वाले अपने बालक पुत्र की मृत्यु पर भगवान रामचन्द्र जी से प्रार्थना करके उसे जीवित करवाया था, किन्तु भगवान रामचन्द्र जी को १५ वर्ष की अवस्था में धनुष यज्ञ में बालक कहा गया था। तत्पश्चात २७ वर्ष में उनको युवराज बनाया जा रहा था। उसके पश्चात् सभी स्थानों में युवा शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि ५००० वर्ष की अवस्था बालक अवस्था म कही जाये तो ११००० वर्ष की अवस्था को वृद्ध नही कहा जा सकता। अत ऐसी कितनी ही घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि उक्त वर्ष नहीं दिन है। ११००० वर्षों को ३६० से विभाजित करने पर ३० वर्ष ६ मास और २० दिन होते हैं।

खंडेलवाल जी ने अपनी पुस्तक के ऋतु प्रकरण में लिखा है कि २१५६ वर्ष में ऋतु का एक मास पीछे हटता है। रामायण और महाभारत समय की ऋतुओं म एक मास का अन्तर है। जैसे रामचन्द्र जी के समय में भाद्रपद और कृष्ण चन्द्र जी के समय में श्रावण मास से वर्षा ऋतु का आरम्भ होता है, अत कृष्णावतार से २१५६ वर्ष पूर्व के लगभग रामावतार होना चाहिये।

परिशिष्ट-४

डा० कामिल बुल्के और रामायण

डा० बुल्के ईसाई पादरी हैं। पैंतीस वर्ष की आयु में ये भारत आये। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी विषय लेकर एम० ए० करने के बाद 'रामकथा उत्पत्ति और विकास, प्रबंध' लिखकर पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। वर्तमान मे आप रांची विश्वविद्यालय मे हिंदी विभाग के अध्यक्ष हैं। मेरे पठन के अनुसार अवतारवाद की अमान्यता के अतिरिक्त इन्होंने राम, सीता वाल्मीकि की किंचित भी निंदा नही की, अपितु प्रशसा ही की है। वे तुलसी के भी बडे भक्त है। हो सकता है रामकथा के अध्ययन का ही यह प्रभाव हो। डा० बुल्के ने बौद्ध जातक कथाओ को तथा जैन रामायण को स्पष्ट शब्दो मे विकृती कहा है। (पृष्ठ ७२६) उनके सक्षिप्त विचार निम्न हैं।

"जिस दिन वाल्मीकि जी ने इस प्राचीन कथा को आदि रामायण 'काव्य' के रूप मे ग्रंथित किया, उसी दिन से रामकथा की दिग्विजय प्रारभ हुई। जब वाल्मीकि रामायण के कारण रामकथा की लोकप्रियता बढने लगी तो बौद्ध जैनियो ने भी इसे अपनाना प्रारभ किया। ईसा के कई शताब्दी पूर्व बौद्धो ने राम को बोधिसत्व का अवतार माना तथा अपने साहित्य मे स्थान दिया। जैनियो ने रामकथा को बाद मे अपनाने पर भी जैनियो मे इसका प्रभाव अभी तक विद्यमान है। वे उन्हे केवल जैन ही नही मानते तो उनके त्रिपुष्टि महापुरषो मे राम का स्थान है अर्थात् तत्कालीन प्रचलित तीनों प्रमुख पथो मे रामकथा का अत्यधिक प्रभाव स्पष्ट रूप मे दिखाई देता है। वैष्णवो मे विष्णु, बौद्धो मे बुद्ध तथा जैनियो मे वे आठवें बलदेव (राम) माने जाते हैं।

"आधुनिक भाषा साहित्य मे रामकथा की व्यापकता अद्वितीय है। सभी भाषाओ के प्रथम महाकाव्य प्राय: कोई रामायण है तथा बाद की अनेक रचनाओ का सबध रामकथा मे ही है। इतना ही नही तो इन भाषाओ का सबसे लोकप्रिय काव्यग्रथ भी रामायण ही है। भारत की अपेक्षा विदेशो मे रामकथा की लोकप्रियता और भी अधिक आश्चर्यजनक है। संपूर्ण सिंहावलोकन से यह ज्ञात होता है कि रामकथा यह भारतीय ही नही, अपितु एशियाई सस्कृति का एक महत्वपूर्ण

तत्त्व बन गई है। इस लोकप्रियता तथा व्यापकता का श्रेय पूर्णतः वाल्मीकि रामायण को ही है। सारांश, विश्वसाहित्य के इतिहास में शायद ही ऐसे किसी ग्रंथ का प्रादुर्भाव हुआ हो जिसने भारत के आदि कवि के ग्रंथ के समान इतने व्यापक रूप में परवर्ती साहित्य को प्रभावित किया हो। (पृष्ठ ७२५)

"अंतरंग परीक्षा के आधार पर रामायण के दो स्वतंत्र भाग मानने होंगे। प्रथम भाग ऐतिहासिक तथा दूसरा अलौकिक है। सीता विवाह, राम का निर्वासन, सीता हरण, सुग्रीव मित्रता, बालि वध, रावण वध आदि रामकथा की आधिकारिक वस्तु को ऐतिहासिक मानना होगा। अलौकिक भाग अस्वीकार करने के बाद भी मूल-स्रोत ऐतिहासिक घटना ही हो सकती है, जिस पर वाल्मीकि ने काव्य रचना की। अतिशयोक्ति अलंकार का तुलनात्मक अभाव, संतुलन, स्वाभाविकता ये वाल्मीकि के मूल ग्रंथ की विशेषता लगती है। नवीन अनुवर्ती साहित्य में कृत्रिमता, अद्भुत रस, अलौकिकता का बाहुल्य दीखता है। रामकथा का मूल दृष्टिकोण धार्मिक न होकर सांस्कृतिक लगता है, जो कि संस्कृत साहित्य के स्वर्ण काल में स्पष्ट अनुभव में आता है। शायद इसीलिए विदेशी साहित्य पर अवतारवाद का प्रभाव न हो पाया हो।

"जब रामकथा अनेक रूपों में भारतीय लोक जीवन में व्याप्त हो गयी, तब से इसकी लोकप्रियता अद्वितीय रूप से बढ़ती गयी। मानव हृदय को आकर्षित करने की शक्ति जो रामकथा में विद्यमान है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। साथ ही रामकथा में आदर्श तथा कथा का समन्वय किसी भी आदर्श प्रियजन को प्रभावित करने वाला है। इसी प्रकार लोक संग्रह का भाव रामकथा का सर्वस्व होने से भी समस्त कवि प्रभावित हुए हैं।

"सीता का पातिव्रत्य, राम का आज्ञापालन एवं कर्तव्यकठोरता, भरत एवं लक्ष्मण का चरम भ्रातृप्रेम तथा कर्तव्यपरायणता, दशरथ की सत्यसंधता या कौशल्या का वात्सल्य आदि रामायण में प्रकर्ष से प्रकट हुए हैं। जन साधारण पर इन जीते जागते आदर्शों के कल्याणकारी प्रभाव की जितनी प्रशंसा की जावे उतनी थोड़ी होगी। इसलिये रामकथा केवल काव्य की कथावस्तु न रहकर आदर्श जीवन का दर्पण सिद्ध हुई है। इस प्रकार भारत की समस्त आदर्श भाव-भावनाएं मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं पतिव्रता सीता के चरित्र चित्रण में केंद्रीभूत हो गयी है। फलस्वरूप रामकथा भारतीय संस्कृति के आदर्शवाद का उज्ज्वल प्रतीक बन गयी है। यहां तक कि राम के पवित्रतम जीवन के संपर्क में रावण समेत विभिन्न पात्रों की उग्रता अथवा कुटिलता क्षीण बल होकर वे पतितपावन राम के प्रभाव से पवित्र हो जाते हैं।"

परिशिष्ट-५

एक विचार

मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में भारत राम को अवतार मानता है। अवतार के सम्बन्ध में प्रश्न हो सकते हैं लेकिन समाज के लिये जिन मर्यादाओं की श्रीराम ने प्रतिष्ठा की वह सब देश और सब काल के लिये मान्य होने योग्य हैं। समाज व्यक्तियों से नहीं बनता, बनता है परिवारों से। परिवार मूल घटक है समाज की सुव्यवस्था का। पारिवारिक संस्कृति के आदर्श का प्रतिरूप है—सम्पूर्ण राम-चरित्र।

पश्चिम के समाजवाद का विचार इसलिए चला कि परिवार की संस्था न्यस्त स्वार्थ का केन्द्र बन जाती हुई प्रतीत हुई। किन्तु रामचरित्र में से इस त्रुटि का परिपूर्ण समाधान हो जाता है। राम आदर्श पति थे किंतु राजा के रूप में वह और भी बड़े आदर्श के परिचायक हैं। सीता को उन्होंने वनवास दिया और अग्निपरीक्षा में डाला। क्या एक क्षण के लिये भी माना जा सकता है कि सीता के सम्बन्ध में किंचित मात्र भी संशय उन्हें हुआ होगा और क्या यह भी कल्पना की जा सकती है कि सीताजी के मन में राम के सम्बन्ध में तनिक भी शिकायत का भाव उपजा होगा? सीता जानती थी कि मुझसे अधिक दंड का भोग स्वयं राम पा रहे हैं। राम की मर्यादा पुरुषोत्तमता परिवार के संदर्भ की सीमा तक नहीं रहती। सार्वजनिक और राजनीतिक मर्यादा के उत्कर्ष को भी अंकित करती है। यही कारण था कि भारतीय स्वतंत्रता के युद्ध के परम नायक महात्मा गांधी को स्वराज्य की परिभाषा देने को जब विवश किया गया तब उन्होंने 'रामराज्य' का सूत्र दिया।

संसदीय प्रजातंत्र अथवा दूसरे प्रकार के राजतंत्रों के लिये भी स्थायी आदर्श रामराज्य है। वही सच्ची कसौटी है। राम के लिये राज भोग की वस्तु न थी वरन् तपश्चर्या थी। यही कसौटी होनी चाहिये आज के जनतांत्रिक युग में शासक के लिये। राज उनके लिये हकूमत की चीज न बन सकेगा। वह तो सेवा का साधन होगा। प्रजा की ओर से सौंपी हुई थाती है, राजपद। उसका सम्पूर्ण लाभ पहुंचाना चाहिये जन-जन को। यदि उसमें से यत्किंचित भी शासक अपने लिये मांगता है तो वह चोरी है।

– आज विश्व का संकट यही है कि शासन का पद जो कि भारी उत्तरदायित्व का होना चाहिये, परम अधिकार का बन गया है। फल यह हुआ कि कर्त्तव्य शब्द प्रजाजन के लिए छूट गये हैं और अधिकार समस्त सत्ता में केन्द्रित हो गये हैं। लोकतन्त्र की इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है?

रघुपति राघव राजाराम के सम्बन्ध में कह लीजिये कि दशरथ के पुत्र होने के कारण वे राजा बने। लेकिन उसके कहने से क्या हाथ आता है? तन्त्र के विचार पर आज का मानव बेहद जुट गया है। लेकिन हम जानते हैं कि सविधान का शब्द विशेष सहायता नहीं करता और साम्यवादी या लोकवादी दोनों ही प्रकार के राजतन्त्र आज युद्धाभिमुख होकर सबके लिए आशंका का कारण बने हुए हैं। विचार आज का बाह्योपकरणों पर इतना केन्द्रित हो गया दीखता है कि सारवस्तु उसमें छोटी रह जाती है। रामचरित्र वह उदाहरण प्रस्तुत करता है जो कि सब राजतन्त्रों के लिए आदर्श मर्यादा का काम दे सकता है।

रामचरित मानस से निरन्तर पाठ तो होता है। रामलीलायें भी होती हैं। वे हमारे नागरिक जीवन का अंग बन गई हैं। लेकिन राम के नाम के साथ उनके काम का भी ध्यान रखना है। राम वही न जो सबमें रम रहा है। ऐसे राम का स्मरण कर हम कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं कि भारत का एक भी आदमी दीन-हीन बना रहे। क्यों उसके हाथ काम से खाली हों और बसने के लिए सिर पर छप्पर तक न हो। राम का नाम लेते ही उनके काम का दायित्व हमारे सिर पर आ जाता है और उससे तभी उऋण हुआ जा सकता है जब कोई यहां न दीन हो, न मोहताज हो।

परिशिष्ट-६

महर्षि अरविंद द्वारा महाकाव्यो की तुलना

महर्षि अरविंद के सावित्री महाकाव्य का आ० श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह जी ने भावानुवाद किया है। इस ग्रंथ की प्रस्तावना मे उन्होंने महर्षि जी के रामायण काव्य सबंधी विचार सकलित कर लिखे है, वे विषय के लिए बहुत मूल्यवान हैं।

महाकाव्य एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो सतत विकासशील है। भारत मे व्यास ने उसका रूप हमारे सामने रखा, वाल्मीकि ने उसमे आत्मा डाली और कालिदास ने उसे सौन्दर्यमय बनाया। इसी प्रकार विदेशो में होमर ने उसका स्वरूप और कलात्मक आदर्श निश्चित किया, वर्जिल ने उसके स्वरूप को पूर्णता दी और मिल्टन ने उसके उद्देश्य मे पूर्णता लाई। वैसे महाकाव्यो को दो श्रेणियो मे बांटा गया है—प्रामाणिक महाकाव्य और साहित्यिक महाकाव्य। पहली श्रेणी मे वे काव्य आते हैं जो मनन चिनन तथा अनुकरण करने के लिए लिखे गए। और दूसरी मे वे हैं जो साहित्यिक सौन्दर्य प्रकट करने और पढने के लिए लिखे गए हैं। पहले प्रकार के काव्य कोई विशेष आदर्श लेकर चलते हैं और ऐसी आख्यायिका का आधार लेते है जो समाज मे प्रचलित हो। भारत मे 'रामायण' और 'महाभारत' इसी प्रकार के काव्य है। ये काव्य अधिकतर वीरता के युग मे लिखे गये हैं। इस लिए वीर पुरुष ही इनका चरितनायक है।

यूरोपियन काव्यो 'ईलियट' और 'औडेसी' मे एक युद्ध का वर्णन है जो समाज की स्मृति मे जमा हुआ था। दान्ते के 'डिवाइन कामेडी' मे इस प्रकार का कोई कथानक नही है। इसलिए आलोचक यह मानने लगे है कि काव्य के लिए किसी ऐतिहासिक घटना या कथानक की आवश्यता नही है। उसमे केवल काव्यात्मक सौन्दर्य के अश और कोई उद्देश्य अवश्य होना चाहिए और यह उद्देश्य ही जीवन मे सिद्धांतो या मूल्यो का निर्माण। आपत्तियो मे साहस तथा अपने उद्देश्यो के लिए वीरतापूर्वक सघर्ष करने से ही मूल्य प्राप्त होते है। वीरता के अतिरिक्त प्रेम, त्याग और पूर्णता की प्राप्ति भी आदर्श हो सकते हैं। इन्ही उद्देश्यो के अनुसार वीरकाव्यो, प्रेमकाव्यो और भक्तिकाव्यो की रचना होती है। इस कसौटी पर कसने पर सावित्री महाकाव्य एक विशेष उद्देश्य प्राप्त करने के लिए सघर्ष करने

,, चोथमलजी निमोरिया, जोरहाट	१०००
,, खीमचदजी गट्टानी, जोरहाट	१०००
,, मोकाकचुग वधृगण, नागालैड	१०००
,, श्यामजी झुझनूवाला, गुवाहाटी	१०००
,, केशवदेवजी बाकरी, गुवाहाटी	१०००
,, कन्हैयालालजी प्रकाशक, आगरा	१०००
,, के० सी० गुप्ता, उदयपुर	१०००
,, लक्ष्मी मित्तल, आगरा	१०००
,, ओमप्रकाश जी महाजन, आगरा	१०००
,, नारायणदासजी (जानव्हार्डट), आगरा	५००
,, कालीचरणजी, बनारस सिल्क	१०००
,, छेदीलालजी, आगरा	२०००
,, हरिशकरजी सराफ, हरीगढ	१०००
,, तुलसीदासप्रसादजी, अतरौली	१०००
,, पुरुषोत्तमजी, मथूरा	१०००
,, मनमोहनजी गाजियाबाद	१५००
,, आनदजी अरोड़ा, देहरादून	१०००
,, हिंद लैम्प्स, शिकोहाबाद	१०००
,, व्हीलर चैरिटेबल ट्रस्ट, प्रयाग	१०००
,, कृपाणीजी, लखनऊ	१०००
,, रामेश्वरदयाल पुरग, मैनपुरी	१०००
,, प्रेममनोहरजी कानपुर	१०००
,, सुरेशजी गुप्त, मुरादाबाद	१०००
श्रीमती लताजी खन्ना, लखनऊ	१०००
श्री लक्ष्मीनारायणजी शर्मा, जयपुर	१०००
,, गोविंदप्रसादजी शर्मा	१०००
,, जौहरीलालजी, अजमेर	१०००
,, शिवशकरजी ,,	१०००
,, राधेश्याम जी ,,	१०००
,, शिवप्रसादजी ,,	१०००
,, श्रीनारायणजी ,,	१०००
,, छगनलालजी यादव ,,	१०००
,, मदनबाबू अग्रवाल, धनबाद	१०००
,, ब्रजकिशोरजी अवर, राँची	१०००
,, अनामिक, गोंदिया	१०००
,, रमेश गोयल, बम्बई	१०००
द्वारकादास जी अग्रवाल अजमेर	